

नमो नमो निम्मलदंसणरस



# आगमसूत्र

हिन्दी अनुवाद

अनुवादकर्ता  
मुनि दीपरत्नसागर



बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नमः  
नमो नमो निम्मलदंसणस्स  
श्री आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागरगुरूभ्यो नमः

# आगमसूत्र

[हिन्दी अनुवाद]

भाग : १२-दशवैकालिक, उत्तराध्ययन,  
नदी, अनुयोगद्वार

: अनुवादकर्ता :

-: मुनि दीपरत्नसागर :-

आगमसूत्र-हिन्दी अनुवाद (संपूर्ण)

मूल्य - ₹. २७००/-

ता. २१/११/२००९

बुधवार

२०५८ - कार्तिक-सुद-६

卐 श्री श्रुतप्रकाशन निधि 卐

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद (१२)

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथाय नमः

: मुद्रक :

श्री नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस  
घीकांटा रोड, अहमदाबाद

: कम्पोझ :

श्री ग्राफिक्स, २१ सुभाषनगर,  
गिरधरनगर, शाहीबाग, अहमदाबाद

संपर्क स्थल

“आगम आराधना केन्द्र” शीतलनाथ सोसायटी विभाग-१,  
फ्लेट नं-१३, ४-थी मंझिल, व्हाई सेन्टर, खानपुर,  
अहमदाबाद (गुजरात)

अनुदान-दाता

- प. पू. गच्छाधिपति आचार्यदेवश्री जयघोषसूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणा से- “श्री सीमंधर स्वामीजी जैन देरासरजी-अंधेरी पूर्व, मुंबई” —ज्ञानरासी में से
- प.पू. संयममूर्ति गच्छाधिपति आ.देवश्री देवेन्द्रसागर सूरीश्वरजी म.सा. के पट्ट प्रभावक व्याकरण विशारद पू.आ.श्री नरदेवसागर सूरीजी म.सा. तथा उनके शिष्य पू. तपस्वी गणीवर्य श्री चंद्रीकीर्तिसागरजी म.सा. के प्रेरणा से-“श्री वेपरी श्वे० मूर्ति० संघ—चैत्राई” की तरफ से ।
- प.पू. क्रियारुचिवंत आचार्यदेव श्रीमद् विजय ऋचक-चन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. की ज्ञानभक्तिरूप प्रेरणासे श्री तालध्वज जैन श्वे. तीर्थ कमिटी - तलाजा, (सौराष्ट्र) की तरफ से ।
- प.पू. आदेयनामकर्मधर पंन्यासप्रवर श्री अभयसागरजी म.सा. के पट्टप्रभावक अवसरज्ञ पूज्य आचार्यदेवश्री अशोक-सागरसूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणा से श्री साबरमती, रामनगर जैन श्वे. मूर्ति. संघ, अमदावाद की तरफसे ।
- प.पू. श्रुतानुरागी आचार्यदेवश्री विजय मुनिचन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. की प्रेरणासे - वांकडीया वडगाम जैन संघ की तरफ से ।
- पूज्य श्रमणीवर्या श्री भव्यानंदश्रीजी म.सा. के पट्टधरा शिष्या मृदुभाषी साध्वीश्री पूर्णप्रज्ञाश्रीजी म.सा. की शुभप्रेरणासे - श्री सुमेरटावर जैन संघ, मुंबाई की तरफ से ।



अनुदान-दाता

- प.पू. आगमोद्धारक आचार्य देव श्रीमद् आनन्दसागर-सूरीश्वरजी म.सा. के समुदायवर्तिनी तपस्वीरत्ना श्रमणीवर्या श्री कल्पप्रज्ञाश्रीजी म.सा. की शुभ प्रेरणा से कार्टर रोड जैन श्वे. मू.पू. संघ, बोरीवली ईष्ट, मुंबाई की तरफ से ।
- पंडितवर्य श्री वीरविजयजी जैन उपाश्रय, भट्टी की बारी, अमदावाद ।
- श्री खानपुर जैन संघ, खानपुर, अमदावाद ।

आगमसूत्र हिन्दीअनुवाद - हेतु  
शेष सर्वद्रव्यराशी

(१) श्री आगमश्रुतप्रकाशन  
एवं

(२) श्री श्रुतप्रकाशन निधि

की तरफ से प्राप्त हुई है ।  
जो हमारे पूर्व प्रकाशित आगम साहित्य के  
बदले में उपलब्ध हुई थी



## आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद (१२)

: अमारा प्रकाशनो :

- [१] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - १ - सप्ताङ्ग विवरणम्
- [२] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - २ - सप्ताङ्ग विवरणम्
- [३] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - ३ - सप्ताङ्ग विवरणम्
- [४] अभिनव हेम लघुप्रक्रिया - ४ - सप्ताङ्ग विवरणम्
- [५] कृदन्तमाला
- [६] चैत्यवन्दन पर्वमाला
- [७] चैत्यवन्दन सङ्ग्रह - तीर्थजिनविशेष
- [८] चैत्यवन्दन चोविशी
- [९] शत्रुञ्जयभक्ति [आवृत्ति-दो]
- [१०] अभिनव जैन पञ्चाङ्ग - २०४६
- [११] अभिनव उपदेश प्रासाद - १ - श्रावक कर्तव्य - १ थी ११
- [१२] अभिनव उपदेश प्रासाद - २ - श्रावक कर्तव्य - १२ थी १५
- [१३] अभिनव उपदेश प्रासाद - ३ - श्रावक कर्तव्य - १६ थी ३६
- [१४] नवपद - श्रीपाल (शाश्वती ओणीना व्याख्यान रूपे)
- [१५] समाधि मरणा [विधि - सूत्र - पद्य - आराधना - मरणाभेद - संग्रह]
- [१६] चैत्यवन्दन भाषा [७७८ चैत्यवन्दनोन्नो संग्रह]
- [१७] तत्त्वार्थ सूत्र प्रबोधटीका [अध्याय-१]
- [१८] तत्त्वार्थ सूत्रना आगम आधार स्थानो
- [१९] सिद्धायलनो साथी [आवृत्ति - बे]
- [२०] चैत्य परिपाटी
- [२१] अमदावाद जिनमंदिर उपाश्रय आदि डिरेक्टरी
- [२२] शत्रुञ्जय भक्ति [आवृत्ति - बे]
- [२३] श्री नवकारमंत्र नवलाभ ज्ञाप नोंधपोथी
- [२४] श्री चारित्र पद अेक करोड ज्ञाप नोंधपोथी
- [२५] श्री बाखत पुस्तिका तथा अन्य नियमो - [आवृत्ति - चार]
- [२६] अभिनव जैन पंचांग - २०४२ [सर्वप्रथम १३ विभागोमां]
- [२७] श्री ज्ञानपद पूजा
- [२८] अंतिम आराधना तथा साधु साध्वी काणधर्म विधि
- [२९] श्रावक अंतिम आराधना [आवृत्ति त्रण]
- [३०] वीतराग स्तुति संयय [११५१ भाववाही स्तुतिओ]
- [३१] (पूज्य आगमोद्धारक श्री ना समुदायना) कायमी संपर्क स्थणो



## आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद (१२)

- [३२] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-१  
 [३३] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-२  
 [३४] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-३  
 [३५] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-४  
 [३६] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-५  
 [३७] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-६  
 [३८] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-७  
 [३९] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-८  
 [४०] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-९  
 [४१] तत्त्वार्थाधिगम सूत्र अभिनव टीका - अध्याय-१०

**प्रकाशन १ थी ४१ अभिनवश्रुत प्रकाशने प्रगट करेख छे.**

|                        |                  |                     |
|------------------------|------------------|---------------------|
| [४२] आयारो             | [आगमसुत्ताणि-१]  | पढमं अंगसुत्तं      |
| [४३] सूयगडो            | [आगमसुत्ताणि-२]  | बीअं अंगसुत्तं      |
| [४४] ठाणं              | [आगमसुत्ताणि-३]  | तइयं अंगसुत्तं      |
| [४५] समवाओ             | [आगमसुत्ताणि-४]  | चउत्थं अंगसुत्तं    |
| [४६] विवाहपन्नति       | [आगमसुत्ताणि-५]  | पंचमं अंगसुत्तं     |
| [४७] नायाधम्मकहाओ      | [आगमसुत्ताणि-६]  | छठ्ठं अंगसुत्तं     |
| [४८] उवासगदसाओ         | [आगमसुत्ताणि-७]  | सत्तमं अंगसुत्तं    |
| [४९] अंतगडदसाओ         | [आगमसुत्ताणि-८]  | अठ्ठमं अंगसुत्तं    |
| [५०] अनुत्तरोववाइयदसाओ | [आगमसुत्ताणि-९]  | नवमं अंगसुत्तं      |
| [५१] पण्हावागरणं       | [आगमसुत्ताणि-१०] | दसमं अंगसुत्तं      |
| [५२] विवागसूयं         | [आगमसुत्ताणि-११] | एक्कारसमं अंगसुत्तं |
| [५३] उववाइयं           | [आगमसुत्ताणि-१२] | पढमं उवंगसुत्तं     |
| [५४] रायप्पसेणियं      | [आगमसुत्ताणि-१३] | बीअं उवंगसुत्तं     |
| [५५] जीवाजीवाभिगमं     | [आगमसुत्ताणि-१४] | तइयं उवंगसुत्तं     |
| [५६] पन्नवणासुत्तं     | [आगमसुत्ताणि-१५] | चउत्थं उवंगसुत्तं   |
| [५७] सूरपन्नति         | [आगमसुत्ताणि-१६] | पंचमं उवंगसुत्तं    |
| [५८] चंदपन्नति         | [आगमसुत्ताणि-१७] | छठ्ठं उवंगसुत्तं    |
| [५९] जंबूद्दीवपन्नति   | [आगमसुत्ताणि-१८] | सत्तमं उवंगसुत्तं   |
| [६०] निरयावलियाणं      | [आगमसुत्ताणि-१९] | अठ्ठमं उवंगसुत्तं   |
| [६१] कप्पवडिसियाणं     | [आगमसुत्ताणि-२०] | नवमं उवंगसुत्तं     |
| [६२] पुप्फियाणं        | [आगमसुत्ताणि-२१] | दसमं उवंगसुत्तं     |



## आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद (१२)

|                     |                    |                    |
|---------------------|--------------------|--------------------|
| [६३] पुष्फचूलियाणं  | [आगमसुत्ताणि-२२]   | एकारसमं उवंगसुत्तं |
| [६४] वण्हिदसाणं     | [आगमसुत्ताणि-२३]   | बारसमं उवंगसुत्तं  |
| [६५] चउसरणं         | [आगमसुत्ताणि-२४]   | पढमं पईण्णगं       |
| [६६] आउरपच्चक्खाणं  | [आगमसुत्ताणि-२५]   | बीअं पईण्णगं       |
| [६७] महापच्चक्खाणं  | [आगमसुत्ताणि-२६]   | तीइयं पईण्णगं      |
| [६८] भत्तपरिण्णा    | [आगमसुत्ताणि-२७]   | चउत्थं पईण्णगं     |
| [६९] तंदुलवेयालियं  | [आगमसुत्ताणि-२८]   | पंचमं पईण्णगं      |
| [७०] संथागं         | [आगमसुत्ताणि-२९]   | छट्ठं पईण्णगं      |
| [७१] गच्छायार       | [आगमसुत्ताणि-३०/१] | सत्तमं पईण्णगं-१   |
| [७२] चंदावेज्झयं    | [आगमसुत्ताणि-३०/२] | सत्तमं पईण्णगं-२   |
| [७३] गणिविज्जा      | [आगमसुत्ताणि-३१]   | अट्ठमं पईण्णगं     |
| [७४] देविंदत्थओ     | [आगमसुत्ताणि-३२]   | नवमं पईण्णगं       |
| [७५] मरणसमाहि       | [आगमसुत्ताणि-३३/१] | दसमं पईण्णगं-१     |
| [७६] वीरत्थव        | [आगमसुत्ताणि-३३/२] | दसमं पईण्णगं-२     |
| [७७] निसीहं         | [आगमसुत्ताणि-३४]   | पढमं छेयसुत्तं     |
| [७८] बुहत्कप्पो     | [आगमसुत्ताणि-३५]   | बीअं छेयसुत्तं     |
| [७९] ववहार          | [आगमसुत्ताणि-३६]   | तइयं छेयसुत्तं     |
| [८०] दसासुयक्खंधं   | [आगमसुत्ताणि-३७]   | चउत्थं छेयसुत्तं   |
| [८१] जीयकप्पो       | [आगमसुत्ताणि-३८/१] | पंचमं छेयसुत्तं-१  |
| [८२] पंचकप्पभास     | [आगमसुत्ताणि-३८/२] | पंचमं छेयसुत्तं-२  |
| [८३] महानिसीहं      | [आगमसुत्ताणि-३९]   | छट्ठं छेयसुत्तं    |
| [८४] आवस्सयं        | [आगमसुत्ताणि-४०]   | पढमं मूलसुत्तं     |
| [८५] ओहनिज्जुत्ति   | [आगमसुत्ताणि-४१/१] | बीअं मूलसुत्तं-१   |
| [८६] पिंडनिज्जुत्ति | [आगमसुत्ताणि-४१/२] | बीअं मूलसुत्तं-२   |
| [८७] दसवेयालियं     | [आगमसुत्ताणि-४२]   | तइयं मूलसुत्तं     |
| [८८] उत्तरज्झयणं    | [आगमसुत्ताणि-४३]   | चउत्थं मूलसुत्तं   |
| [८९] नंदीसूयं       | [आगमसुत्ताणि-४४]   | पढमा चूलिया        |
| [९०] अनुओगदारं      | [आगमसुत्ताणि-४५]   | बितिया चूलिया      |

प्रकाशन ४२ थी ८० अभिनवश्रुत प्रकाशने प्रगट करेख छे.

## આગમસૂત્ર હિન્દી અનુવાદ (૧૨)

|       |                  |                |            |                      |
|-------|------------------|----------------|------------|----------------------|
| [૯૧]  | આચાર-            | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૧] | પહેલું અંગસૂત્ર      |
| [૯૨]  | સૂચક-            | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૧] | બીજું અંગસૂત્ર       |
| [૯૩]  | ઠાણ-             | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૧] | ત્રીજું અંગસૂત્ર     |
| [૯૪]  | સમવાય-           | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૧] | ચોથું અંગસૂત્ર       |
| [૯૫]  | વિવાહપત્રિ-      | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૨] | પાંચમું અંગસૂત્ર     |
| [૯૬]  | નાયાધમ્મકહા-     | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] | છઠ્ઠું અંગસૂત્ર      |
| [૯૭]  | ઉવાસગદસા-        | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] | સાતમું અંગસૂત્ર      |
| [૯૮]  | અંતગદસા-         | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] | આઠમું અંગસૂત્ર       |
| [૯૯]  | અનુતરોપપાતિકદસા- | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] | નવમું અંગસૂત્ર       |
| [૧૦૦] | પણવાગરણ-         | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] | દસમું અંગસૂત્ર       |
| [૧૦૧] | વિવાગસૂચ-        | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૩] | અગિયારમું અંગસૂત્ર   |
| [૧૦૨] | ઉવવાઈય           | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૪] | પહેલું ઉપાંગસૂત્ર    |
| [૧૦૩] | ચાપ્પસેણિય-      | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૪] | બીજું ઉપાંગસૂત્ર     |
| [૧૦૪] | જીવાજીવાભિગમ-    | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૪] | ત્રીજું ઉપાંગસૂત્ર   |
| [૧૦૫] | પત્રવણાસુત-      | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૪] | ચોથું ઉપાંગસૂત્ર     |
| [૧૦૬] | સૂરપત્રિ-        | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] | પાંચમું ઉપાંગસૂત્ર   |
| [૧૦૭] | ચંદ્રપત્રિ-      | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] | છઠ્ઠું ઉપાંગસૂત્ર    |
| [૧૦૮] | જંબુદીવપત્રિ-    | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] | સાતમું ઉપાંગસૂત્ર    |
| [૧૦૯] | નિરયાવલિયા-      | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] | આઠમું ઉપાંગસૂત્ર     |
| [૧૧૦] | કપ્પવડિસિયા-     | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] | નવમું ઉપાંગસૂત્ર     |
| [૧૧૧] | પુષ્કિયા-        | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] | દશમું ઉપાંગસૂત્ર     |
| [૧૧૨] | પુષ્કયૂલિયા-     | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] | અગિયારમું ઉપાંગસૂત્ર |
| [૧૧૩] | વણિહદસા-         | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૫] | બારમું ઉપાંગસૂત્ર    |
| [૧૧૪] | ચઉસરણ-           | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | પહેલો પયત્રો         |
| [૧૧૫] | આઉરપચ્ચકખાણ-     | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | બીજો પયત્રો          |
| [૧૧૬] | મહાપચ્ચકખાણ-     | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | ત્રીજો પયત્રો        |
| [૧૧૭] | ભત્તપરિણા-       | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | ચોથો પયત્રો          |
| [૧૧૮] | તંદુલવેચાલિય-    | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | પાંચમો પયત્રો        |
| [૧૧૯] | સંધારગ-          | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | છઠ્ઠો પયત્રો         |
| [૧૨૦] | ગચ્છાચાર-        | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | સાતમો પયત્રો-૧       |
| [૧૨૧] | ચંદાવેજઝય-       | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | સાતમો પયત્રો-૨       |
| [૧૨૨] | ગણિવિજ્ઞ-        | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | આઠમો પયત્રો          |
| [૧૨૩] | દેવિંદત્થઓ-      | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | નવમો પયત્રો          |
| [૧૨૪] | વીસ્થવ-          | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | દશમો પયત્રો          |



## આગમસૂત્ર હિન્દી અનુવાદ (૧૨)

|                      |                |            |                  |
|----------------------|----------------|------------|------------------|
| [૧૨૫] નિસીહ-         | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | છેદસૂત્ર પહેલું  |
| [૧૨૬] બુહત્કપ્પ-     | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | છેદસૂત્ર બીજું   |
| [૧૨૭] વવહાર-         | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | છેદસૂત્ર ત્રીજું |
| [૧૨૮] દસાસુયકખંધ-    | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | છેદસૂત્ર ચોથું   |
| [૧૨૯] જીયકપ્પો-      | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | છેદસૂત્ર પાંચમું |
| [૧૩૦] મહાનિસીહ-      | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૬] | છેદસૂત્ર છઠ્ઠું  |
| [૧૩૧] આવસ્સય-        | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] | પહેલું મૂલસુત્ર  |
| [૧૩૨] ઓહનિજજુત્તિ-   | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] | બીજું મૂલસુત્ર-૧ |
| [૧૩૩] પિંડનિજજુત્તિ- | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] | બીજું મૂલસુત્ર-૨ |
| [૧૩૪] દસવેયાલિય-     | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] | ત્રીજું મૂલસુત્ર |
| [૧૩૫] ઉત્તરજ્ઞયણ-    | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] | ચોથું મૂલસુત્ર   |
| [૧૩૬] નંદીસુત્તં-    | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] | પહેલી ચૂલિકા     |
| [૧૩૭] અનુઓગદાર-      | ગુજરાતી અનુવાદ | [આગમદીપ-૭] | બીજી ચૂલિકા      |

પ્રકાશન ૯૧ થી ૧૩૭ આગમદીપ પ્રકાશને પ્રગટ કરેલ છે.

|   |             |             |
|---|-------------|-------------|
| [૧૩૮] દીક્ષા યોગાદિ વિધિ                |             |             |
| [૧૩૯] ૪૫ આગમ મહાપૂજન વિધિ               |             |             |
| [૧૪૦] આચારાન્ગસૂત્રં સટીકં              | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧     |
| [૧૪૧] સૂત્રકૃતાન્ગસૂત્રં સટીકં          | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૨     |
| [૧૪૨] સ્થાનાન્ગસૂત્રં સટીકં             | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૩     |
| [૧૪૩] સમવાયાન્ગસૂત્રં સટીકં             | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૪     |
| [૧૪૪] ભગવતીઅન્ગસૂત્રં સટીકં             | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૫/૬   |
| [૧૪૫] જ્ઞાતાધર્મકથાન્ગસૂત્રં સટીકં      | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૭     |
| [૧૪૬] ઉપાસકદશાન્ગસૂત્રં સટીકં           | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૭     |
| [૧૪૭] અન્તકૃદ્દશાન્ગસૂત્રં સટીકં        | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૭     |
| [૧૪૮] અનુત્તરોપપાતિકદશાન્ગસૂત્રં સટીકં  | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૭     |
| [૧૪૯] પ્રશ્નવ્યાકરણાન્ગસૂત્રં સટીકં     | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૭     |
| [૧૫૦] વિપાકશ્રુતાન્ગસૂત્રં સટીકં        | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૮     |
| [૧૫૧] ઔપપાતિકઉપાન્ગસૂત્રં સટીકં         | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૮     |
| [૧૫૨] રાજપ્રશ્નિયઉપાન્ગસૂત્રં સટીકં     | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૮     |
| [૧૫૩] જીવાજીવાભિગમઉપાન્ગસૂત્રં સટીકં    | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૯     |
| [૧૫૪] પ્રજ્ઞાપનાઉપાન્ગસૂત્રં સટીકં      | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૦/૧૧ |
| [૧૫૫] સૂર્યપ્રજ્ઞાતિઉપાન્ગસૂત્રં સટીકં  | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૨    |
| [૧૫૬] ચન્દ્રપ્રજ્ઞાતિઉપાન્ગસૂત્રં સટીકં | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૨    |

## આગમસૂત્ર હિન્દી અનુવાદ (૧૨)

|       |  |             |                |
|-------|--|-------------|----------------|
| [૧૫૭] | જમ્બૂદ્વીવપ્રજ્ઞાસિતિઉપાંગસૂત્રં સટીકં | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૩       |
| [૧૫૮] | નિસ્થાવલિકાઉપાંગસૂત્રં સટીકં           | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૫૯] | કલ્પવતંસિકાઉપાંગસૂત્રં સટીકં           | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૬૦] | પુષ્પિતાઉપાંગસૂત્રં સટીકં              | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૬૧] | પુષ્પચૂલિકાઉપાંગસૂત્રં સટીકં           | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૬૨] | વણ્હિદસાઉપાંગસૂત્રં સટીકં              | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૬૩] | ચતુઃશરણપ્રકીર્ણકસૂત્રં સટીકં           | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૬૪] | આતુરપ્રત્યાખ્યાનપ્રકીર્ણકસૂત્રં સટીકં  | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૬૫] | મહાપ્રત્યાખ્યાનપ્રકીર્ણસૂત્રં સચ્ચાયં  | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૬૬] | ભક્તપરિજ્ઞાપ્રકીર્ણકસૂત્રં સચ્ચાયં     | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૬૭] | તંદુલવૈચારિકપ્રકીર્ણકસૂત્રં સટીકં      | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૬૮] | સંસ્તારકપ્રકીર્ણકસૂત્રં સચ્ચાયં        | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૬૯] | ગચ્છાચારપ્રકીર્ણકસૂત્રં સટીકં          | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૭૦] | ગણિવિદ્યાપ્રકીર્ણકસૂત્રં સચ્ચાયં       | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૭૧] | દેવેન્દ્રસ્તવપ્રકીર્ણકસૂત્રં સચ્ચાયં   | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૭૨] | મરણસમાધિપ્રકીર્ણકસૂત્રં સચ્ચાયં        | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૪       |
| [૧૭૩] | નિશીથછેદસૂત્રં સટીકં                   | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૫-૧૬-૧૭ |
| [૧૭૪] | બૃહત્કલ્પછેદસૂત્રં સટીકં               | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૧૮-૧૯-૨૦ |
| [૧૭૫] | વ્યવહારછેદસૂત્રં સટીકં                 | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૨૧-૨૨    |
| [૧૭૬] | દશાશ્રુતસ્કન્ધછેદસૂત્રં સટીકં          | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૨૩       |
| [૧૭૭] | જીતકલ્પછેદસૂત્રં સટીકં                 | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૨૩       |
| [૧૭૮] | મહાનિશીથસૂત્રં [મૂલં]                  | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૨૩       |
| [૧૭૯] | આવશ્યકમૂલસૂત્રં સટીકં                  | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૨૪-૨૫    |
| [૧૮૦] | ઓઘનિર્યુક્તિમૂલસૂત્રં સટીકં            | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૨૬       |
| [૧૮૧] | પિણ્ડનિર્યુક્તિમૂલસૂત્રં સટીકં         | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૨૬       |
| [૧૮૨] | દશવૈકાલિકમૂલસૂત્રં સટીકં               | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૨૭       |
| [૧૮૩] | ઉત્તરાધ્યયનમૂલસૂત્રં સટીકં             | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૨૮-૨૯    |
| [૧૮૪] | નન્દી-ચૂલિકાસૂત્રં સટીકં               | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૩૦       |
| [૧૮૫] | અનુયોગદ્વારચૂલિકાસૂત્રં સટીકં          | આગમસુત્તાણિ | સટીકં-૩૦       |
| [૧૮૬] | આગમ-વિષય-દર્શન (આગમ બૃહદ્ વિષયાનુક્રમ) |             |                |

પ્રકાશન ૧૩૯ થી ૧૮૬ આગમશ્રુત પ્રકાશને પ્રગટ કરેલ છે.



## आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद (१२)

|       |                 |        |         |
|-------|-----------------|--------|---------|
| [१८७] | आगमसद्वकोसो - १ | अ....औ | पज्जंता |
| [१८८] | आगमसद्वकोसो - २ | क....ध | पज्जंता |
| [१८९] | आगमसद्वकोसो - ३ | न....य | पज्जंता |
| [१९०] | आगमसद्वकोसो - ४ | र....ह | पज्जंता |

प्रकाशन १८७ थी १९० आगमसूत्र पण्डित प्रगट करेह छे.

|       |                                      |                |  |
|-------|--------------------------------------|----------------|--|
| [१९१] | आचारसूत्र-हिन्दीअनुवाद               | आगमसूत्र-१     |  |
| [१९२] | सूत्रकृतसूत्र-हिन्दीअनुवाद-          | आगमसूत्र-१     |  |
| [१९३] | स्थानसूत्र-हिन्दीअनुवाद              | आगमसूत्र-२     |  |
| [१९४] | समवायसूत्र-हिन्दीअनुवाद              | आगमसूत्र-२     |  |
| [१९५] | भगवतीसूत्र-हिन्दीअनुवाद              | आगमसूत्र-३,४,५ |  |
| [१९६] | ज्ञाताधर्मकथासूत्र-हिन्दीअनुवाद      | आगमसूत्र-५     |  |
| [१९७] | उपासकदशासूत्र-हिन्दीअनुवाद           | आगमसूत्र-५     |  |
| [१९८] | अन्तकृद्दशासूत्र-हिन्दीअनुवाद        | आगमसूत्र-६     |  |
| [१९९] | अनुत्तरोपपातिकदशासूत्र-हिन्दीअनुवाद  | आगमसूत्र-६     |  |
| [२००] | प्रश्नव्याकरणसूत्र-हिन्दीअनुवाद      | आगमसूत्र-६     |  |
| [२०१] | विपाकश्रुतसूत्र-हिन्दीअनुवाद         | आगमसूत्र-६     |  |
| [२०२] | औपपातिकसूत्र-हिन्दीअनुवाद            | आगमसूत्र-६     |  |
| [२०३] | राजप्रश्रियसूत्र-हिन्दीअनुवाद        | आगमसूत्र-६     |  |
| [२०४] | जीवाजीवाभिगमसूत्र-हिन्दीअनुवाद       | आगमसूत्र-७     |  |
| [२०५] | प्रज्ञापनासूत्र-हिन्दीअनुवाद         | आगमसूत्र-७,८   |  |
| [२०६] | सूर्यप्रज्ञातिसूत्र-हिन्दीअनुवाद     | आगमसूत्र-८     |  |
| [२०७] | चंद्रप्रज्ञातिसूत्र-हिन्दीअनुवाद     | आगमसूत्र-८     |  |
| [२०८] | जंबूद्वीपप्रज्ञातिसूत्र-हिन्दीअनुवाद | आगमसूत्र-९     |  |
| [२०९] | निर्यावलिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद        | आगमसूत्र-९     |  |
| [२१०] | कल्पवतंसिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद        | आगमसूत्र-९     |  |
| [२११] | पुष्पितासूत्र-हिन्दीअनुवाद           | आगमसूत्र-९     |  |
| [२१२] | पुष्पिचूलिकासूत्र-हिन्दीअनुवाद       | आगमसूत्र-९     |  |
| [२१३] | वण्हदशासूत्र-हिन्दीअनुवाद            | आगमसूत्र-९     |  |
| [२१४] | चतुःशरणसूत्र-हिन्दीअनुवाद            | आगमसूत्र-९     |  |
| [२१५] | आतुरप्रत्याख्यानसूत्र-हिन्दीअनुवाद   | आगमसूत्र-९     |  |
| [२१६] | महाप्रत्याख्यानसूत्र-हिन्दीअनुवाद    | आगमसूत्र-९     |  |
| [२१७] | भक्तपरिज्ञासूत्र-हिन्दीअनुवाद        | आगमसूत्र-९     |  |

## આગમસૂત્ર હિન્દી અનુવાદ (૧૨)

|  |                 |
|--|-----------------|
| [૨૧૮] તંદુલવૈચારિકસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ   | આગમસૂત્ર-૯      |
| [૨૧૯] સંસ્તારકસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ       | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૨૦] ગચ્છાચારસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ       | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૨૧] ચન્દ્રવેદ્યકસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ   | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૨૨] ગણિવિદ્યાસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ      | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૨૩] દેવેન્દ્રસ્તવસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ  | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૨૪] વીરસ્તવસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ        | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૨૫] નિશીથસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ          | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૨૬] બૃહત્કલ્પસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ      | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૨૭] વ્યવહારસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ        | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૨૮] દશાશ્રુતસ્કન્ધસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૨૯] જીતકલ્પસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ        | આગમસૂત્ર-૧૦     |
| [૨૩૦] મહાનિશીથસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ       | આગમસૂત્ર-૧૦, ૧૧ |
| [૨૩૧] આવશ્યકસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ         | આગમસૂત્ર-૧૧     |
| [૨૩૨] ઓઘનિર્યુક્તિ હિન્દીઅનુવાદ        | આગમસૂત્ર-૧૧     |
| [૨૩૩] પિણ્ડનિર્યુક્તિ હિન્દીઅનુવાદ     | આગમસૂત્ર-૧૧     |
| [૨૩૪] દશવૈકાલિકસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ      | આગમસૂત્ર-૧૨     |
| [૨૩૫] ઉત્તરાઘ્યયનસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ    | આગમસૂત્ર-૧૨     |
| [૨૩૬] નન્દીસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ          | આગમસૂત્ર-૧૨     |
| [૨૩૭] અનુયોગદ્વારસૂત્ર-હિન્દીઅનુવાદ    | આગમસૂત્ર-૧૨     |

પ્રકાશન-૧૯૧ થી ૨૩૭ - શ્રી શ્રુત પ્રકાશન નિધિએ પ્રગટ કરેલ છે.



आगमसूत्र-हिन्दी अनुवाद-भाग-१२-अनुक्रम

४२

दशवैकालिकसूत्र-हिन्दीअनुवाद अनुक्रम

| क्रम         | अध्ययन          | अनुक्रम | पृष्ठांक |
|--------------|-----------------|---------|----------|
| १            | द्रुमपुष्पिका   | १-५     | १७- —    |
| २            | श्रामण्यपूर्व   | ६-१६    | १७-१८    |
| ३            | क्षुल्लकाचारकथा | १७-३१   | १८-१९    |
| ४            | छहजीवनिकाय      | ३२-७५   | १९-२३    |
| ५            | पिंडेषणा        | ७६-२२५  | २४-३०    |
| ६            | महाचारकथा       | २२६-२९३ | ३१-३४    |
| ७            | वाक्यशुद्धि     | २९४-३५० | ३४-३७    |
| ८            | आचारप्रणिधि     | ३५१-४१४ | ३७-४०    |
| ९            | विनयसमाधि       | ४१५-४८४ | ४१-४५    |
| १०           | ते (वह) भिक्षु  | ४८५-५०५ | ४५-४७    |
| —: चूलिका :— |                 |         |          |
| १            | रतिवाक्या       | ५०६-५२४ | ४७-४९    |
| २            | विविक्तचर्या    | ५२५-५५० | ४९-५०    |

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद (१२)

४३ उत्तराध्ययनसूत्र-हिन्दीअनुवाद अनुक्रम

| क्रम | अध्ययन                 | अनुक्रम | पृष्ठांक |
|------|------------------------|---------|----------|
| १    | विनयश्रुत              | १-४८    | ५१-५४    |
| २    | परिषहविभक्ति           | ४९-९५   | ५४-५७    |
| ३    | चातुरंगीय              | ९६-११५  | ५७-५८    |
| ४    | असंख्य                 | ११६-१२८ | ५८-५९    |
| ५    | अकाममरण                | १२९-१६० | ५९-६१    |
| ६    | क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीय   | १६१-१७८ | ६१-६२    |
| ७    | उरभिज्र                | १७९-२०८ | ६२-६४    |
| ८    | कापिलिय                | २०९-२२८ | ६४-६५    |
| ९    | नमिप्रव्रज्या          | २२९-२९० | ६५-६८    |
| १०   | द्रुमपत्रक             | २९१-३२७ | ६८-६९    |
| ११   | बहुश्रुतपूजा           | ३२८-३५९ | ७०-७१    |
| १२   | हरिकेशी                | ३६०-४०६ | ७१-७४    |
| १३   | चित्रसम्भूती           | ४०७-४४१ | ७४-७६    |
| १४   | इषुकारीय               | ४४२-४९४ | ७६-८०    |
| १५   | ते (वह) भिक्षु         | ४९५-५१० | ८०-८१    |
| १६   | ब्रह्मचर्य समाधि स्थान | ५११-५३८ | ८१-८३    |
| १७   | पापश्रमण               | ५३९-५५९ | ८४-८५    |
| १८   | संयत                   | ५६०-६१३ | ८५-८८    |



उत्तराध्ययनसूत्र-हिन्दीअनुवाद अनुक्रम (पीछे से चालु)

| क्रम | अध्ययन            | अनुक्रम   | पृष्ठांक |
|------|-------------------|-----------|----------|
| १९   | मृगापूत्र         | ६१४-७१२   | ८८-९३    |
| २०   | महानिर्ग्रन्थ     | ७१३-७७२   | ९३-९६    |
| २१   | समुद्रपालित       | ७७३-७९६   | ९६-९७    |
| २२   | स्थनेमि           | ७९७-८४६   | ९८-१००   |
| २३   | केसिगौतम          | ८४७-९३५   | १००-१०४  |
| २४   | प्रवचनमाता        | ९३६-९६२   | १०४-१०५  |
| २५   | यज्ञीय            | ९६३-१००६  | १०५-१०८  |
| २६   | सामाचारी          | १००७-१०५८ | १०८-११०  |
| २७   | खलुंकीय           | १०५९-१०७५ | १११- —   |
| २८   | मोक्षमार्गगति     | १०७६-११११ | ११२-११३  |
| २९   | सम्यक्त्व पराक्रम | १११२-११८८ | ११३-१२१  |
| ३०   | तपमार्गगति        | ११८९-१२२५ | १२१-१२३  |
| ३१   | चरणविधि           | १२२६-१२४६ | १२३-१२४  |
| ३२   | प्रमादस्थान       | १२४७-१३५७ | १२४-१३२  |
| ३३   | कर्मप्रकृति       | १३५८-१३८२ | १३२-१३३  |
| ३४   | लेश्याअध्ययन      | १३८३-१४४३ | १३३-१३६  |
| ३५   | अणगारमार्गगति     | १४४४-१४६४ | १३६-१३७  |
| ३६   | जीकजीवविभक्ति     | १४६५-१४७१ | १३७-१४७  |

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद (१२)

४४ नंदीसूत्र-हिन्दीअनुवाद अनुक्रम

| क्रम | अधिकार                             | अनुक्रम | पृष्ठांक |
|------|------------------------------------|---------|----------|
| १    | अर्हत्-संघ आदि स्तुति              | १-५२    | १४८-१५१  |
| २    | ज्ञान के विविध भेद                 | ५३-१३८  | १५१-१६२  |
| ३    | बारह अंगसूत्रों का परीचय           | १३९-१५६ | १६२-१६८  |
| ४    | द्वादशांगी की आराधना विराधना का फल | १५७-१५९ | १६८- —   |
| ५    | बुद्धि के आठ गुण - श्रुतग्रहण      | १६०-१६३ | १६८-१६९  |
| ६    | अनुज्ञानंदी                        | १-४     | १६९-१७०  |
| ७    | जोगनंदी                            | १- —    | १७०- —   |

४५ अनुयोगद्वारसूत्र-हिन्दीअनुवाद अनुक्रम

| क्रम | अधिकार                      | अनुक्रम | पृष्ठांक |
|------|-----------------------------|---------|----------|
| १    | ज्ञान एवं आवश्यक            | १-६९    | १७१-१७७  |
| २    | आनुपूर्वी                   | ७०-१४५  | १७७-१९०  |
| ३    | नाम-एक से दश भेद एवं प्रमाण | १४६-२४७ | १९०-२०३  |
| ४    | सामासिक भाव प्रमाण          | २४८-२५१ | २०३-२०४  |
| ५    | प्रमाण का स्वरूप            | २५२-३१७ | २०४-२३३  |
| ६    | वक्तव्यता एवं अर्थाधिकार    | ३१८-३५२ | २३३-२४०  |



नमो नमो निम्मलदंसणस्स

## ४२ दशवैकालिक

मूलसूत्र-३-हिन्दी अनुवाद

### अध्ययन-१-द्रुमपुष्पिका

[१] धर्म उत्कृष्ट मंगल है । उस धर्म का लक्षण है—अहिंसा, संयम और तप । जिसका मन सदा धर्म में लीन रहता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं ।

[२] जिस प्रकार भ्रमर, वृक्षों के पुष्पों में से थोड़ा-थोड़ा रस पीता है तथा पुष्प को पीड़ा नहीं पहुँचाता और वह अपने आपको तृप्त कर लेता है ।

[३] उसी प्रकार लोक में जो मुक्त, श्रमण साधु हैं, वे दान-भक्त की एषणा में रत रहते हैं; जैसे भौरे फूलों में ।

[४] हम इस ढंग से वृत्ति भिक्षा प्राप्त करेंगे, (जिससे) किसी जीव का उपहनन न हो, जिस प्रकार भ्रमर अनायास प्राप्त, फूलों पर चले जाते हैं, (उसी प्रकार) श्रमण भी गृहस्थों के द्वारा अपने लिए सहजभाव से बनाए हुए, आहार के लिए, उन घरों में भिक्षा के लिए जाते हैं ।

[५] जो बुद्ध पुरुष मधुकर के समान अनिश्रित हैं, नाना [विध अभिग्रह से युक्त होकर] पिण्डों में रत हैं और दान्त हैं, वे अपने इन्हीं गुणों के कारण साधु कहलाते हैं । — ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-२-श्रामण्यपूर्वक

[६] जो व्यक्ति काम (-भोगों) का निवारण नहीं कर पाता, वह संकल्प के वशीभूत होकर पद-पद पर विषाद पाता हुआ श्रामण्य का कैसे पालन कर सकता है ?

[७] जो (व्यक्ति) परवश होने के कारण वस्त्र, गंध, अलंकार, स्त्रियों, शय्याओं और आसनादि का उपभोग नहीं करते, (वास्तव में) वे त्यागी नहीं कहलाते ।

[८] त्यागी वही कहलाता है, जो कान्त और प्रिय भोग उपलब्ध होने पर भी (उनकी ओर से) पीठ फेर लेता है और स्वाधीन रूप से प्राप्त भोगों का (स्वेच्छा से) त्याग करता है ।

[९] समभाव की प्रेक्षा से विचरते हुए (साधु का) मन कदाचित् (संयम से) बाहर निकल जाए, तो 'वह (स्त्री या कोई काम्य वस्तु) मेरी नहीं है, और न मैं ही उसका हूँ' इस प्रकार का विचार करके उस पर से राग को हटा ले ।

[१०] 'आतापना ले, सुकुमारता का त्याग कर । कामभोगों का अतिक्रम कर । (इससे) दुःख स्वतः अतिक्रान्त होगा । द्वेषभाग का छेदन कर, रागभाव को दूर कर । ऐसा करने से तू संसार में सुखी हो जाएगा ।

[११] “अगन्धनकुल में उत्पन्न सर्प प्रज्वलित दुःसह अग्नि में कूद जाते हैं, किन्तु वमन किये हुए विष को वापिस चूसने की इच्छा नहीं करते ।

[१२] हे अपयश के कामी ! तुझे धिक्कार है ! जो तू असंयमी जीवन के लिए वमन किये हुए को पीना चाहता है । इस से तो तेरा मर जाना ही श्रेयस्कर है ।

[१३] मैं भोजराजा की पुत्री हूँ, और तू अन्धकवृष्णि का पुत्र है । उत्तम कुल में उत्पन्न हम दोनों गन्धन कुलोत्पन्न सर्प के समान न हों । (अतः) तू स्थिरचित्त हो कर संयम का पालन कर ।

[१४] तू जिन-जिन नारियों को देखेगा, उनके प्रति यदि इस प्रकार रागभाव करेगा तो वायु से आहत हृड वनस्पति की तरह अस्थिरात्मा हो जाएगा ।

[१५] उस संयती के सुभाषित वचनों को सुन कर वह धर्म में उसी प्रकार स्थिर हो गया जिस प्रकार अंकुश से हाथी स्थिर हो जाता है ।

[१६] सम्बुद्ध, प्रविचक्षण और पण्डित ऐसा ही करते हैं । वे भोगों से उसी प्रकार निवृत्त हो जाते हैं, जिस प्रकार वह पुरुषोत्तम स्थनेमि हुए ।

अध्ययन-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-३-क्षुल्लकाचार कथा

[१७] जिनकी आत्मा संयम से सुस्थित है; जो बाह्य-आभ्यन्तर-परिग्रह से विमुक्त हैं; जो त्राता हैं; उन निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिए ये अनाचीर्ण या अग्राह्य हैं—

[१८] औद्देशिक (निर्ग्रन्थ के निमित्त से बनाया गया), क्रीत-साधु के निमित्त खरीदा हुआ, नित्याग्र-निमंत्रित करके दिया जानेवाला), अभिहृत-सम्मुख लाया गया, रात्रिभोजन, स्नान, गन्ध, माल्य, वीजनपंखा झेलना ।

[१९] सन्निधि—(खाद्य पदार्थों का संयच), गृहि-अमत्र गृहस्थ के बर्तन में भोजन, राजपिण्ड, किमिच्छक—‘क्या चाहते हो ?’ ऐसा पूछ कर दिया जानेवाला, सम्बाधन-अंगमर्दन, दंतधावन, सम्पृच्छना-गृहस्थों से कुशल आदि पूछना, देहप्रलोकन (दर्पण आदि में शरीर को देखना)

[२०] अष्टापद (शतरंज खेलना), नालिका-पासा का जुआ खेलना, छत्रधारण-करना, चिकित्सा कर्म-चिकित्सा करना-कराना, उपानह-जूते आदि पहनना, ज्योति-समारम्भ—(अग्नि प्रज्वलित करना) ।

[२१] शय्यातरपिण्ड-स्थानदाता से आहार लेना, आसन्दी-कुर्सी या खाट पर बैठना, पर्यक पलंग, ढोलया आदि पर बैठना, गृहान्तरनिषद्या-गृहस्थ के घर में बैठना और गात्रउद्धर्तन-शरीर पर उबटन, लगाना ।

[२२] गृहि-वैयावृत्य-गृहस्थ की सेवा-शुश्रूषा करना, आजीववृत्तित्ता-शिल्प, जाति, कुल का अवलम्बन लेकर आजीविका करना, तप्ताऽनिर्वृतभोजित्व-अर्धपक्व आहारपानी का उपभोग करना, आतुरस्मरण-आतुरदशा में पूर्वभुक्त भोगों का स्मरण करना) ।

[२३] अनिर्वृतमूलक-अपक्व सचित्त मूली, शृङ्गबेर-अदरख, इक्षुखण्ड-सजीव ईख के टुकड़े, सचित्त कन्द, मूल, आमक फल-कच्चा फल, बीज (अपक्व बीज लेना व खाना) ।

[२४] आमक सौवर्चल—अपक्व सेवलनमक, सैन्धव-लवण, रुमा लवण, अपक्व समुद्री नमक, पांशु-क्षार, काल-लवण लेना व खाना ।

[२५] धूपन—धूप देना, वमन, बस्तिकर्म, विस्चन, अंजन, दंतधावन, गात्राभ्यंग मालिश करना और विभूषण-विभूषा करना ।

[२६] 'जो संयम (और तप) में तल्लीन हैं, वायु की तरह लघुभूत होकर विहार करते हैं, तथा जो निर्ग्रन्थ महर्षि हैं, उनके लिए ये सब अनाचीर्ण-अनाचरणीय हैं ।'

[२७] वे निर्ग्रन्थ पांच आश्रवों को परित्याग करने वाले, तीन गुप्तियों से गुप्त, षड्जीवनिकाय के प्रति संयमशील, पांच इन्द्रियों का निग्रह करने वाले, धीर और ऋजुदर्शी होते हैं ।

[२८] (वे) सुसमाहित संयमी ग्रीष्मऋतु में आतापना लेते हैं; हेमन्त ऋतु में अपावृत हो जाते हैं, ओर वर्षाऋतु में प्रतिसंलीन हो जाते हैं ।

[२९] (वे) महर्षि परीषहरूपी रिपुओं का दमन करते हैं; मोह को प्रकम्पित कर देते हैं और जितेन्द्रिय (होकर) समस्त दुःखों को नष्ट करने के लिए पराक्रम करते हैं ।

[३०] दुष्कर क्रियाओं का आचरण करके तथा दुःसह को सहन कर, उन में से कई देवलोक में जाते हैं और कई नीरज होकर सिद्ध हो जाते हैं ।

[३१] सिद्धिमार्ग को प्राप्त, त्राता (वे निर्ग्रन्थ) संयम और तप के द्वारा पूर्व-कर्मों का क्षय करके परिनिर्वृत्त हो जाते हैं । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-४-छह जीवनिकाय

[३२] हे आयुष्मन् ! मैंने सुना हैं, उन भगवान् ने कहा—इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन में निश्चित ही षड्जीवनिकाय नामक अध्ययन प्रवेदित, सुआख्यात और सुप्रज्ञप्त है । (इस) धर्मप्रज्ञप्ति (जिसमें धर्म की प्ररूपणा है) अध्ययन का पठन मेरे लिए श्रेयस्कर है । वह षड्जीवनिकाय नामक अध्ययन कौन-सा है, जो काश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान् द्वारा प्रवेदित है, सु-आख्यात और सुप्रज्ञप्त है; जिस धर्मप्रज्ञप्ति-अध्ययन का पठन मेरे लिए श्रेयस्कर है ? वह 'षड्जीवनिकाय' है, पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीव ।

शस्त्र-परिणत के सिवाय पृथ्वी सचित्त है, वह अनेक जीवों और पृथक् सत्त्वों वाली है । इसी तरह शस्त्र-परिणत को छोड़ कर अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पति सजीव है । वह अनेक जीवों और पृथक् सत्त्वों वाली है । उसके प्रकार ये हैं—अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज, स्कन्धबीज, बीजरुह, सम्मूर्च्छिम तृण और लता । शस्त्र-परिणत के सिवाय (ये) वनस्पतिकायिक जीव बीज-पर्यन्त सचेतन कहे गए हैं । वे अनेक जीव हैं और पृथक् सत्त्वों वाले हैं ।

(स्थावरकाय के) अनन्तर ये जो अनेक प्रकार के त्रस प्राणी हैं, वे इस प्रकार हैं—अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छिम, उद्भिज्ज (और) औपपातिक । जिन किन्हीं प्राणियों में अभिक्रमण, प्रतिक्रमण, संकुचित होना, प्रसारित होना, शब्द करना, भ्रमण



करना, त्रस्त होना, भागना आदि क्रियाएँ हों तथा जो आगति और गति के विज्ञाता हों, (वे सब त्रस हैं ।) जो कीट और पतंगे हैं, तथा जो कुन्थु और पिपीलिका हैं, वे सब द्वीन्द्रिय, सब त्रीन्द्रिय, समस्त चतुरिन्द्रिय तथा समस्त पंचेन्द्रिय जीव तथा—समस्त तिर्यञ्चयोनिक, समस्त नास्क, समस्त मनुष्य, समस्त देव और समस्त प्राणी परम सुख-स्वभाव वाले हैं । यह छठा जीवनिकाय त्रसकाय कहलाता है ।

[३३] —इन छह जीवनिकायों के प्रति स्वयं दण्ड-समारम्भ न करे, दूसरों से दण्ड-समारम्भ न करावे और दण्डसमारम्भ करनेवाले अन्य का अनुमोदन भी न करे । भंते ! मैं यावज्जीवन के लिए तीन करण एवं तीन योग से आरंभ न करूँगा, न कराऊँगा और करनेवाले का अनुमोदन करूँगा । भंते ! मैं उस (अतीत में किये हुए) दण्डसमारम्भ से प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और व्युत्सर्ग करता हूँ । भंते ! मैं प्रथम महाव्रत (-पालन) के लिए उपस्थित हुआ हूँ । जिसमें सर्वप्रकार के प्राणातिपात से विरत होना होता है ।

[३४] भंते ! पहले महाव्रत में प्राणातिपात से विरमण करना होता है । हे भदन्त ! मैं सर्व प्रकार के प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ । सूक्ष्म बादर त्रस स्थावर कीसी का भी अतिपात न करना, न करवाना, अनुमोदन करना । यह प्रतिज्ञा यावज्जीवन के लिए मैं तीन योग-तीन करण से करता हूँ ।

[३५] भंते ! द्वितीय महाव्रत में मृषावाद के विरमण होता है । भंते ! मैं सब प्रकार के मृषावाद का प्रत्याख्यान करता हूँ । क्रोध से, लोभ से, भय से या हास्य से, स्वयं असत्य न बोलना, दूसरों से नहीं बुलवाना और दूसरे वालों का अनुमोदन न करना; इस प्रकार की प्रतिज्ञा मैं यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से करता हूँ । (अर्थात्) मैं मन से, वचन से, काया से मृषावाद स्वयं नहीं करूँगा, न कराऊँगा और न करने वाले का अनुमोदन करूँगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ; निन्दा करता हूँ; गर्हा करता हूँ और (मृषावाद से युक्त) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ । भंते ! मैं द्वितीय महाव्रत के लिए उपस्थित हुआ हूँ, (जिसमें) सर्व-मृषावाद से विरत होना होता है ।

[३६] भंते ! तृतीय महाव्रत में अदत्तादान से विरति होती है । भंते ! मैं सब प्रकार के अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूँ । जैसे कि—गाँव में, नगर में या अरण्य में, अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त हो या अचित्त, अदत्त वस्तु का स्वयं ग्रहण न करना, दूसरों से ग्रहण न कराना और ग्रहण करने वाले किसी का अनुमोदन न करना; यावज्जीवन के लिए तीन करण, तीन योग से; मैं मन से, वचन से, काया से स्वयं (अदत्त वस्तु को ग्रहण) नहीं करूँगा, न ही दूसरों से कराऊँगा और ग्रहण करने वाले अन्य किसी का अनुमोदन भी नहीं करूँगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ । निन्दा करता हूँ; गर्हा करता हूँ और अदत्तादान युक्त आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ । भंते ! मैं तृतीय महाव्रत के लिए उपस्थित हुआ हूँ, (जिसमें) सर्व-अदत्तादान से विरत होना होता है ।

[३७] चतुर्थ महाव्रत में मैथुन से निवृत्त होना होता है । मैं सब प्रकार के मैथुन का प्रत्याख्यान करता हूँ । जैसे कि देव-सम्बन्धी, मनुष्य-सम्बन्धी, अथवा तिर्यञ्च-सम्बन्धी मैथुन का स्वयं सेवन न करना, दूसरों से न कराना और करनेवालों का अनुमोदन न करना; यावज्जीवन

के लिए, तीन करण तीन योग से मैं मन से, वचन से, काया से स्वयं मैथुन-सेवन न करूंगा, नहीं कराऊंगा और नहीं करनेवाले का अनुमोदन करूंगा । भंते ! मैं इससे निवृत्त होता हूँ । निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और मैथुनसेवनयुक्त आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ । भंते ! मैं चतुर्थ महाव्रत के लिए उपस्थित हुआ हूँ, जिसमें सब प्रकार के मैथुन-सेवन से विरत होना होता है ।

[३८] पंचम महाव्रत में परिग्रह से विरत होना होता है । “भंते ! मैं सब प्रकार के परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ । जैसे कि—गाँव में, नगर में या अरण्य में, अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त परिग्रह का परिग्रहण स्वयं न करे, दूसरों से नहीं कराए और न ही करनेवाले का अनुमोदन करे; यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से मैं मन से, वचन से, काया से परिग्रह-ग्रहण नहीं करूंगा, न कराऊँगा और न करने वाले का अनुमोदन करूंगा । भंते ! मैं उससे से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और परिग्रह-युक्त आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ । भंते ! मैं पंचम-महाव्रत के लिए उपस्थित हूँ, (जिसमें) सब प्रकार के परिग्रह से विरत होना होता है ।

[३९] भंते ! छठे व्रत में रात्रिभोजन से निवृत्त होना होता है । भंते ! मैं सब प्रकार के रात्रिभोजन का प्रत्याख्यान करता हूँ । जैसे कि—अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का रात्रि में स्वयं उपभोग न करे, दूसरों को न कराए और न करनेवाले का अनुमोदन करे, यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से मैं मन से, वचन से काया से, स्वयं रात्रिभोजन नहीं करूंगा; न कराऊँगा और न अनुमोदन करूंगा । भंते ! मैं उससे निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और रात्रिभोजनयुक्त आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ । भंते ! मैं छठे व्रत के लिए उपस्थित हुआ हूँ, जिसमें सब प्रकार के रात्रि-भोजन से विरत होना होता है ।

[४०] इस प्रकार मैं इन पांच महाव्रतों और रात्रिभोजन-विरमण रूप छठे व्रत को आत्महित के लिए अंगीकार करके विचरण करता हूँ ।

[४१] भिक्षु अथवा भिक्षुणी, जो कि संयत है, विरत है, जो पापकर्मों का निरोध और प्रत्याख्यान कर चुका है, दिन में या रात में, एकाकी हो या परिषद् में, सोते अथवा जागते; पृथ्वी, भित्ति, शिला, ढेले को, सचित्त रज से संसृष्ट काय, या वस्त्र को, हाथ, पैर, काष्ठ अथवा काष्ठ खण्ड से, अंगुलि, लोहे की सलाई, शलाकासमूह से, आलेखन, विलेखन, घट्टन और भेदन न करे; दूसरे से न कराए; तथा करने वाले अन्य किसी का अनुमोदन न करे; भंते ! मैं यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से स्वयं पृथ्वीकाय-विराधना नहीं करूंगा, न कराऊँगा और न करने वाले अन्य किसी का अनुमोदन करूँगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ; उसकी निन्दा करता हूँ; गर्हा करता हूँ, (उक्त) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

[४२] वह भिक्षु अथवा भिक्षुणी, जो कि संयत है, विरत है, तथा जिसने पापकर्मों का निरोध और प्रत्याख्यान किया है; दिन में अथवा रात में, एकाकी या परिषद् में, सोते या जागते; उदक, ओस, हिम, धुंअर, ओले, जलकण, शुद्ध उदक, अथवा जल से भीगे हुए शरीर या वस्त्र को, जल से स्निग्ध शरीर अथवा वस्त्र को थोड़ा-सा अथवा अधिक संस्पर्श करे, आपीडन करे या प्रपीडन, आस्फोटन और प्रस्फोटन, आतापन और प्रतापन स्वयं न करे; दूसरों से न कराए और करने वाले अन्य किसी का अनुमोदन न करे । भंते ! यावज्जीवन के लिए,

तीन करण-तीन योग से, मैं मन से, वचन से, काया से; अप्काय की पूर्वोक्त विराधना स्वयं नहीं करूंगा, नहीं कराऊंगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूंगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

[४३] संयत, विरत, प्रतिहत और प्रत्याख्यात-पापकर्मा वह भिक्षु या भिक्षुणी, दिन में या रात में, अकेले या परिषद् में, सोते या जागते; अग्नि, अंगारे, मुर्मु, अर्चि, ज्वाला, अलात, शुद्ध अग्नि या उल्का को, उत्सिंचन, घट्टन, उज्ज्वालन, प्रज्वालन या स्वयं न करे, न दूसरों कराए और न करने वाले का अनुमोदन करे; भंते ! यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से मैं मन से, वचन से और काया से अग्निसमारम्भ नहीं करूंगा, न कराऊंगा और न करने वाले का अनुमोदन करूंगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और उस आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

[४४] संयत, विरत, प्रतिहत और प्रत्याख्यातपापकर्मा, वह भिक्षु अथवा भिक्षुणी; दिन में या रात में, अकेले या परिषद् में, सोते या जागते, चामर, पंखे, ताड़ के पत्तों से बने हुए पंखे, पत्र, शाखा, शाखा के टूटे हुए खण्ड, मोरपिच्छी वस्त्र वस्त्र के पल्ले से, अपने हाथ से या मुँह से, अपने शरीर को अथवा किसी बाह्य पुद्गल को (स्वयं) फूंक न दे, हवा न करे, दूसरों से न ही कराए तथा हवा करने वाले का अनुमोदन न करे । भंते ! यावज्जीवन के लिए तीन करण, तीन योग से पूर्वोक्त वायुकाय-विराधना मन से, वचन से और काया से, स्वयं नहीं करूंगा, न दूसरों से कराऊंगा और करने वाले अन्य किसी का भी अनुमोदन नहीं करूंगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और उस आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

[४५] संयत, विरत, प्रतिहत और प्रत्याख्यातपापकर्मा, वह भिक्षु या भिक्षुणी; दिन में अथवा रात में, अकेले या परिषद् में हो, सोया हो या जागता हो; बीजों, बीजों पर रखे पदार्थों, फूटे हुए अंकुरों, अंकुरों पर रखे हुए पदार्थों पर, पत्रसंयुक्त अंकुरित वनस्पतियों, पत्रयुक्त अंकुरित वनस्पति पर रखे हुए पदार्थों, हरित वनस्पतियों, हरित वनस्पति पर रखे हुए पदार्थों, छिन्न वनस्पतियों, छिन्न-वनस्पति पर रखे पदार्थों, सचित्त कोल तथा संसर्ग से युक्त काष्ठ आदि पर, न चले, न खड़ा रहे, न बैठे और न कस्वट बदले; दूसरों को न चलाए, न खड़ा करे, न बिठाए और न कस्वट बदलाए, न उन चलने वाले आदि किसी का भी अनुमोदन करे । भंते ! यावज्जीवन के लिए मैं तीन करण, तीन योग से, मन से, वचन से और काया से वनस्पतिकाय की विराधना नहीं करूंगा; न कराऊंगा और न ही करने वाले अन्य किसी का भी अनुमोदन करूंगा । भंते ! मैं उस से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और उस आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

[४६] जो संयत है, विरत है, जिसने पाप-कर्मों का निरोध और प्रत्याख्यान कर दिया है, वह भिक्षु या भिक्षुणी, दिन में या रात में, अकेले या परिषद् में हो, सोते या जागते; कीट, पतंगे, कुंथु अथवा पिपीलिका को हाथ, पैर, भुजा, उरु, उदर, सिर, वस्त्र, पात्र, रजोहरण, गुच्छक, उंडग, दण्डक, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक अथवा इसी प्रकार के अन्य किसी उपकरण पर चढ़ जाने के बाद यतना-पूर्वक प्रतिलेखन, प्रमार्जन कर एकान्त स्थान में ले जाकर रख दे उनको एकत्रित करके घात न पहुँचाए ।



[४७-५२] अयतनापूर्वक-१-गमन करनेवाला । अयतनापूर्वक-२-खड़ा होनेवाला-३-बैठनेवाला-४-सोनेवाला-५-भोजन करनेवाला-६-बोलनेवाला त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है । उससे पापकर्म का बन्ध होता है, जो उसके लिए कटु फल वाला होता है ।

[५३-५४] साधु या साध्वी कैसे चले ? कैसे खड़े हो ? कैसे बैठे ? कैसे सोए ? कैसे खाए और कैसे बोले ?, जिससे कि पापकर्म का बन्धन हो ? यतनापूर्वक चले, खड़ा हो, बैठे, सोए, खाए और बोले, (तो वह) पापकर्म का बन्ध नहीं करता ।

[५५] जो सर्वभूतात्मभूत है, सब जीवों को सम्यग्दृष्टि से देखता है, तथा आश्रव का निरोध कर चुका है और दान्त है, उसके पापकर्म का बन्ध नहीं होता ।

[५६] 'पहले ज्ञान और फिर दया है'—इस प्रकार से सभी संयमी (संयम में) स्थित होते हैं । अज्ञानी क्या करेगा ? वह श्रेय और पाप को क्या जानेगा ?

[५७] श्रवण करके ही कल्याण को जानता है, पाप को जानता है । कल्याण और पाप—दोनों को जानता है, उनमें जो श्रेय है, उसका आचरण करता है ।

[५८] जो जीवों को भी नहीं जानता, अजीवों को भी नहीं जानता, जीव और अजीव दोनों को नहीं जाननेवाला वह संयम को कैसे जानेगा ?

[५९-७१] जो जीवों को, अजीवों को और दोनों को विशेषरूप से जानने वाला हो तो संयम को जानेगा । समस्त जीवों की बहुविध गतियों को जानता है । तब पुण्य और पाप तथा बन्ध और मोक्ष को भी जानता है । तब दिव्य और मानवीय भोग से विरक्त होता है । विरक्त होकर आभ्यन्तर और बाह्य संयोग का परित्याग कर देता है । त्याग करता है तब वह मुण्ड हो कर अनगार्धर्म में प्रव्रजित होता है । प्रव्रजित हो जाता है, तब उत्कृष्ट-अनुत्तरधर्म का स्पर्श करता है । स्पर्श करता है, तब अबोधिरूप पाप द्वारा किये हुए कर्मरज को झाड़ देता है । कर्मरज को झाड़ता है, तब सर्वत्र व्यापी ज्ञान और दर्शन को प्राप्त करता है । तब वह जिन और केवली होकर लोक और अलोक को जानता है । लोक-अलोक को जान लेता है; तब योगों का निरोध करके शैलेशी अवस्था को प्राप्त कर लेता है । तब वह कर्मों का क्षय करके रज-मुक्त बन, सिद्धि को प्राप्त करता है । सिद्धि को प्राप्त कर लेता है, तब वह लोक के मस्तक पर स्थित होकर शाश्वत सिद्ध हो जाता है ।

[७२] जो श्रमण सुख का रसिक है, साता के लिए आकुल रहता है, अत्यन्त सोने वाला है, प्रचुर जल से बार-बार हाथ-पैर आदि को धोनेवाला है, ऐसे श्रमण को सुगति दुर्लभ है ।

[७३] जो श्रमण तपोगुण में प्रधान है, ऋजुमति है, क्षान्ति एवं संयम में रत है, तथा परीषहों को जीतने वाला है; ऐसे श्रमण को सुगति सुलभ है ।

[७४] भले ही वे पिछली वय में प्रव्रजित हुए हों किन्तु जिन्हें तप, संयम, क्षान्ति एवं ब्रह्मचर्य प्रिय हैं, वे शीघ्र ही देवभवनों में जाते हैं ।

[७५] इस प्रकार दुर्लभ श्रमणत्व को पाकर सम्यक् दृष्टि और सदा यतनाशील साधु या साध्वी इस षड्जीवनिका की मन, वचन और क्रिया से विराधना न करे—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

## अध्ययन-५-पिडिषणा

### उद्देशक-१

[७६] भिक्षा का काल प्राप्त होने पर असम्भ्रान्त और अमूर्च्छित होकर इस क्रम-योग से भक्त-पान की गवेषणा करे ।

[७७] ग्राम या नगर में गोचराग्र के लिए प्रस्थित मुनि अनुद्विग्र और अव्याक्षित चित्त से धीमे-धीमे चले ।

[७८] आगे युगप्रमाण पृथ्वी को देखता हुआ तथा बीज, हरियाली, प्राणी, सचित्त जल और सचित्त मिट्टी को टालता हुआ चले ।

[७९] अन्य मार्ग के होने पर गड्ढे आदि, ऊबडखाबड़ भूभाग, ठूठ और पंकिल मार्ग को छोड़ दे; तथा संक्रम के ऊपर से न जाए ।

[८०] उन गड्ढे आदि से गिरता हुआ या फिसलता हुआ त्रस या स्थावर जीवों की हिंसा कर सकता है ।

[८१] इसलिए सुसमाहित संयमी साधु अन्य मार्ग के होते हुए उस मार्ग से न जाए। यदि दूसरा मार्ग न हो तो यतनापूर्वक उस मार्ग से जाए ।

[८२] संयमी साधु अंगार, राख, भूसे और गोबर पर सचित्त रज से युक्त पैरों से उन्हें अतिक्रम कर न जाए ।

[८३] वर्षा बरस रही हो, कुहरा पड़ रहा हो, महावात चल रहा हो, और मार्ग में तिर्यञ्च संपातिम जीव उड़ रहे हों तो भिक्षाचरी के लिए न जाए ।

[८४] ब्रह्मचर्य का वशवर्ती श्रमण वेश्यावाड़े के निकट न जाए; क्योंकि दमितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी साधक के चित्त में भी असमाधि उत्पन्न हो सकती है ।

[८५] ऐसे कुस्थान में बार-बार जाने वाले मुनि को उन वातावरण के संसर्ग से व्रतों की क्षति और साधुता में सन्देह हो सकता है ।

[८६] इसलिए इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर एकान्त के आश्रव में रहने वाला मुनि वेश्यावाड़े के पास न जाए ।

[८७] मार्ग में कुत्ता, नवप्रसूता गाय, उन्मत्त बल, अश्व और गज तथा बालकों का क्रीड़ास्थान, कलह और युद्ध के स्थान को दूर से ही छोड़ कर गमन करे ।

[८८] मुनि उन्नत मुंह, अवनत हो कर, हर्षित या आकुल होकर न चले (किन्तु) इन्द्रियों के विषय को दमन करके चले ।

[८९] उच्च-नीच कुल में गोचरी के लिए मुनि सदैव जल्दी-जल्दी तथा हँसी-मजाक करता हुआ और बोलता हुआ न चले ।

[९०] गोचरी के लिए जाता हुआ झरोखा, थिंगल द्वार, संधि जलगृह, तथा शंका उत्पन्न करनेवाले अन्य स्थानों को भी छोड़ दे ।

[९१] राजा के, गृहपतियों के तथा आरक्षिकों के रहस्य के उस स्थान को दूर से ही छोड़ दे, जहाँ जाने से संक्लेश पैदा हो ।

[९२] साधु-साध्वी निन्दित कुल, मामक गृह और अप्रीतिकर कुल में प्रवेश न करे,

किन्तु प्रीतिकर कुल में प्रवेश करे ।

[९३] साधु-साध्वी, आज्ञा लिये बिना पर्दा तथा वस्त्रादि से ढँके हुए द्वार को स्वयं न खोले तथा कपाट को भी न उघाड़े ।

[९४] भिक्षा के लिए प्रविष्ट होने वाला साधु मल-मूत्र की बाधा न रखे । यदि बाधा हो जाए तो प्रासुक स्थान देख कर, गृहस्थ की अनुज्ञा लेकर मल-मूत्र का उत्सर्ग करे ।

[९५-९६] नीचे द्वार वाले घोर अन्धकारयुक्त कोठे, जिस कोठे में फूल, बीज आदि बिखरे हुए हों, तथा जो कोष्ठक तत्काल लीपा हुआ, एवं गीला देखे तो उस में प्रवेश न करे ।

[९७] संयमी मुनि, भेड़, बालक, कुत्ते या बछड़े को लांघ कर अथवा हटा कर कोठे में प्रवेश न करे ।

[९८-९९] गोचरी के लिए घर में प्रविष्ट भिक्षु आसक्तिपूर्वक न देखे; अतिदूर न देखे, उत्फुल्ल दृष्टि से न देखे; तथा भिक्षा प्राप्त न होने पर बिना कुछ बोले लौट जाए । अतिभूमि न जाए, कुल की मर्यादित भूमि को जान कर मित भूमि तक ही जाए ।

[१००] विचक्षण साधु वहाँ ही उचित भूभाग का प्रतिलेखन करे, स्नान और शौच के स्थान की ओर दृष्टिपात न करे ।

[१०१-१०२] सर्वेन्द्रिय-समाहित भिक्षु (सचित्त) पानी और मिट्टी लाने के मार्ग तथा बीजों और हरित (हरी) वनस्पतियों को वर्जित करके खड़ा रहे । वहाँ खड़े हुए उस साधु को देने के लिए कोई गृहस्थ पान और भोजन लाए तो उसमें से अकल्पनीय को ग्रहण न करे, कल्पनीय ही ग्रहण करे ।

[१०३] यदि साधु या साध्वी के पास भोजन लाते हुए कोई-उसे नीचे गिराए तो साधु उस आहार का निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए कल्पनीय नहीं है ।

[१०४] प्राणी, बीज और हरियाली को कुचलता हुए आहार लाने वाले को असंयमकारि जान कर उससे न ले ।

[१०५-१०६] इसी प्रकार एक बर्तन में से दूसरे बर्तन में डालकर, सचित्त वस्तु पर रखकर, सचित्त वस्तु का स्पर्श करके तथा सचित्त जल को हिला कर, अवगाहन कर, चलित कर, पान और भोजन लाए तो मुनि निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए ग्रहण करना कल्प्य नहीं है ।

[१०७] पुराकर्म-कृत (साधु को आहार देने से पूर्व ही सचित्त जल से धोये हुए) हाथ से, कड़छी से अथवा बर्तन से (मुनि को भिक्षा) देती हुई महिला को मुनि निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए कल्पनीय (ग्रहण करने योग्य) नहीं है । (अर्थात्-मैं ऐसा दोषयुक्त आहार नहीं ले सकता ।)

[१०८] यदि हाथ या कड़छी भीगे हुए हो, सचित्त जल से स्निग्ध हो, सचित्त रज, मिट्टी, खार, हस्ताल, हिंगलोक, मनःशील, अंजन, नमक तथा-

[१०९] गेरु, पीलीमट्टी, सफेद मट्टी, फटकड़ी, अनाज का भुसा तुरंत का पीसा हुआ आटा, फल का टुकड़ा इत्यादि से लिप्त हो तो मुनि को नहीं कल्पता ।

[११०] जहाँ पश्चात्कर्म की संभावना हो, वहाँ असंसृष्ट हाथ, कड़छी अथवा बर्तन से दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करने की इच्छा न करे ।



[१११] (किन्तु) संसृष्ट हाथ से, कड़छी से या बर्तन से दिया जाने वाला आहार यदि एषणीय हो तो मुनि लेवें ।

[११२-११३] —(जहाँ) दो स्वामी या उपभोक्ता हों और उनमें से एक निमंत्रित करे, तो मुनि उस दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करने की इच्छा न करे । वह दूसरे के अभिप्राय को देखे ! यदि उसे देना प्रिय लगता हो तो यदि वह एषणीय हो तो ग्रहण कर ले ।

[११४] —गर्भवती स्त्री के लिए तैयार किये गए विविध पान और भोजन यदि उसके उपभोग में आ रहे हों, तो मुनि ग्रहण न करे, किन्तु यदि उसके खाने से बचे हुए हों तो उन्हें ग्रहण कर ले ।

[११५-११८] —कदाचित् कालमासवती गर्भवती महिला खड़ी हो और श्रमण के लिए बैठे; अथवा बैठी हो और खड़ी हो जाए तो, स्तनपान कराती हुई महिला यदि बालक को रोता छोड़ कर भक्त-पान लाए तो वह भक्त-पान संयमियों के लिए अकल्पनीय होता है। अतः उसे निषेध करे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए ग्रहण करने योग्य नहीं है ।

[११९] —जिस भक्त-पान के कल्पनीय या अकल्पनीय होने में शंका हो, उसे देती हुई महिला को मुनि निषेध कर दे कि मेरे लिए यह आहार कल्पनीय नहीं है ।

[१२०-१२१] —पानी के घड़े, पत्थर की चक्री, पीठ, शिलापुत्र, मिट्टी आदि के लेप, लाख आदि श्लेषद्रव्यों या किसी अन्य द्रव्य से—पिहित बर्तन का श्रमण के लिए मुंह खोल कर आहार देती हुई महिला को मुनि निषेध कर दे कि मेरे लिए यह आहार ग्रहण करने योग्य नहीं है ।

[१२२-१२९] यदि मुनि यह जान जाए या सुन ले कि यह अशन, पान, खाद्य या स्वाद्य दानार्थ, पुण्यार्थ, वनीपकों के लिए या श्रमणों के निमित्त बनाया गया है तो वह भक्त-पान संयमियों के लिए अकल्पनीय होता है । (इसलिए) भिक्षु उस को निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए ग्राह्य नहीं है ।

[१३०-१३१] साधु या साध्वी औद्देशिक, क्रीतकृत, पूतिकर्म, आहत, अध्यवतर, प्रामित्य और मिश्रजात, आहार न ले । पूर्वोक्त आहारादि के विषय में शंका होने पर उस का उद्गम पूछे कि यह किसके लिए किसने बनाया है ? फिर निःशंकित और शुद्ध जान कर आहार ग्रहण करे ।

[१३२-१३७] यदि अशन, पानक, खाद्य और स्वाद्य, पुष्पों से और हरित दूर्वादिकों से उन्मिश्र हो, सचित्त पानी पर, अथवा उत्तिंग और पनक पर निक्षिप्त हो, अग्नि पर निक्षिप्त या स्पर्शित हो दे, तो वह भक्त-पान संयमियों के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए ग्रहण करने योग्य नहीं है ।

[१३८-१३९] चूले में से इंधन निकालकर अग्नि प्रज्वलित करके या तेज करके या अग्नि को ठंडा करके, अन्न का उभार देखकर उसमें से कुछ कम करके या जल डालके या अग्नि से नीचे उतारकर देवें तो वह भोजनपान संयमी के लिए अकल्पनीय है । तब भिक्षु कहता है कि यह भिक्षा मुझे कल्प्य नहीं है ।

[१४०-१४१] कभी काठ, शिला या ईंट संक्रमण के लिए रखे हों और वे चलाचल

हों, तो सर्वेन्द्रिय-समाहित भिक्षु उन पर से होकर न जाए । इसी प्रकार प्रकाशरहित और पोले मार्ग से भी न जाए । भगवान् ने उसमें असंयम देखा है ।

[१४२-१४४] यदि आहारदात्री श्रमण के लिए निसैनी, फलक, या पीठ को ऊँचा करके मंच, कीलक अथवा प्रासाद पर चढ़े और वहाँ से भक्त-पान लाए तो उसे ग्रहण न करे; क्योंकि निसैनी आदि द्वारा चढ़ती हुई वह गिर सकती है, उसके हाथ-पैर टूट सकते हैं । पृथ्वी के तथा पृथ्वी के आश्रित त्रस जीवों की हिंसा हो सकती है । अतः ऐसे महादोषों को जान कर संयमी महर्षि मालापहत भिक्षा नहीं ग्रहण करते ।

[१४५] (साधु-साध्वी) अपक कन्द, मूल, प्रलम्ब, छिला हुआ पत्ती का शाक, घीया आदि अदरक ग्रहण न करे ।

[१४६-१४७] इसी प्रकार जौ आदि सत्तु का चूर्ण, बेर का चूर्ण, तिलपपड़ी, गीला गुड़, पूआ तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ, जो बहुत समय से खुली हुई हों और रज से चारों ओर स्पृष्ट हों, तो साधु निषेध कर दे कि मैं इस प्रकार का आहार ग्रहण नहीं करता ।

[१४८-१४९] बहुत अस्थियों वाला फल, बहुत-से कांटों वाला फल, आस्थिक, तेन्दु, बेल, गन्ने के टुकड़े और सेमली की फली, जिनमें खाद्य अंश कम हो और त्याज्य अंश बहुत अधिक हो, उन सब को निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मेरे लिए ग्रहण करना योग्य नहीं है ।

[१५०] इसी प्रकार उद्यावच पानी अथवा गुड़ के घड़े का, आटे का, चावल का धोवन, इनमें से यदि कोई तत्काल का धोया हुआ हो, तो मुनि उसे ग्रहण न करे ।

[१५१-१५६] यदि अपनी मति और दृष्टि से, पूछ कर अथवा सुन कर जान ले कि यह बहुत देर का धोया हुआ है तथा निःशक्ति हो जाए तो जीवरहित और परिणत जान कर संयमी मुनि उसे ग्रहण करे । यदि यह जल मेरे लिए उपयोगी होगा या नहीं ? इस प्रकार की शंका हो जाए, तो फिर उसे चख कर निश्चय करे । 'चखने के लिए थोड़ा-सा यह पानी मेरे हाथ में दो ।' यह पानी बहुत ही खट्टा, दुर्गन्धयुक्त है और मेरी तृषा बुझाने में असमर्थ होने से मेरे लिए उपयोगी न हो तो मुझे ग्राह्य नहीं । यदि वह धोवन-पानी अपनी अनिच्छा से अथवा अन्यमनस्कता से ग्रहण कर लिया गया हो तो, न स्वयं पीए और न ही किसी अन्य साधु को पीने को दे । वह एकान्त में जाए, वहाँ अचित्त भूमि को देख करके यतनापूर्वक उसे प्रतिष्ठापित कर दे पश्चात् स्थान में आकर वह प्रतिक्रमण करे ।

[१५७-१६१] गोचराग्र के लिए गया हुआ भिक्षु कदाचित् आहार करना चाहे तो वह मेधावी मुनि प्रासुक कोष्ठक या भित्तिमूल का अवलोकन कर, अनुज्ञा लेकर किसी आच्छादित एवं चारों ओर से संवृत स्थल में अपने हाथ को भलीभाँति साफ करके वहाँ भोजन करे । उस स्थान में भोजन करते हुए आहार में गुठली, कांटा, तिनका, लकड़ी का टुकड़ा, कंकड़ या अन्य कोई वैसी वस्तु निकले तो उसे निकाल कर न फेंके, न ही मुंह से थूक कर गिराए; किन्तु हाथ में लेकर एकान्त में चला जाए । और एकान्त में जाकर अचित्त भूमि देख - कर यतनापूर्वक उसे परिष्ठापित कर दे । परिष्ठापन करने के बाद (अपने स्थान में आकर) प्रतिक्रमण करे ।

[१६२-१६९] कदाचित् भिक्षु बसति में आकर भोजन करना चाहे तो पिण्डपात

सहित आकर भोजन भूमि प्रतिलेखन कर ले । विनयपूर्वक गुरुदेव के समीप आए और ईर्यापथिक प्रतिक्रमण करे । जाने-आने में और भक्तपान लेने में (लगे) समस्त अतिचारों का क्रमशः उपयोगपूर्वक चिन्तन कर ऋजुप्रज्ञ और अनुद्विग्र संयमी अव्याक्षित चित्त से गुरु के पास आलोचना करे और जिस प्रकार से भिक्षा ली हो, उसी प्रकार से गुरु से निवेदन करे । यदि आलोचना सम्यक् प्रकार से न हुई हो, अथवा जो पहले-पीछे की हो, तो उसका पुनः प्रतिक्रमण करे, कायोत्सर्गस्थ होकर यह चिन्तन करे—अहो ! जिनेन्द्र भगवन्तों ने साधुओं को मोक्षसाधना के हेतुभूत संयमी शरीर-धारण करने के लिए निखद्य वृत्ति का उपदेश दिया है । नमस्कार-मन्त्र के द्वारा पूर्ण करके जिनसंस्तव करे, फिर स्वाध्याय का प्रारम्भ करे, क्षणभर विश्राम ले, कर्म-निर्जरा के लाभ का अभिलाषी मुनि इस हितकर अर्थ का चिन्तन करे—“यदि कोई भी साधु मुझ पर अनुग्रह करें तो मैं संसार-समुद्र से पार हो जाऊँ ।

[१७०-१७४] वह प्रीतिभाव से साधुओं को यथाक्रम से निमंत्रण करे, यदि उन में से कोई भोजन करना चाहें तो उनके साथ भोजन करे । यदि कोई आहार लेना न चाहे, तो वह अकेला ही प्रकाशयुक्त पात्र में, नीचे न गिराता हुआ यतनापूर्वक भोजन करे । अन्य के लिए बना हुआ, विधि से उपलब्ध जो तिक्त, कडुआ, कसैला, अम्ल, मधुर या लवण हो, संयमी साधु उसे मधु-घृत की तरह सन्तोष के साथ खाए । मुधाजीवी भिक्षु प्राप्त किया हुआ आहार अरस हो या सरस, व्यञ्जनादि युक्त हो अथवा रहित, आर्द्र हो, या शुष्क, बेर के चून का भोजन हो अथवा कुलथ या उड़द के बाकले का, उसकी अवहेलना न करे, किन्तु मुधाजीवी साधु, मुधालब्ध एवं प्रासुक आहार का, चाहे वह अल्प हो या बहुत; दोषों को छोड़ कर समभावपूर्वक सेवन करे ।

[१७५] मुधादायी दुर्लभ हैं और मुधाजीवी भी दुर्लभ हैं । मुधादायी और मुधाजीवी, दोनों सुगति को प्राप्त होते हैं । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-५-उद्देशक-२

[१७६] सम्यक् यत्नवान् साधु लेपमात्र-पर्यन्त पात्र को अंगुलि से पोंछ कर सुगन्धयुक्त हो या दुर्गन्धयुक्त, सब खा ले ।

[१७७-१७८] उपाश्रय में या स्वाध्यायभूमि में बैठा हुआ, अथवा गौचरी के लिए गया हुआ मुनि अपर्याप्त खाद्य-पदार्थ खाकर यदि उस से निर्वाह न हो सके तो कारण उत्पन्न होने पर पूर्वोक्त विधि से और इस उत्तर विधि से भक्त-पान की गवेषणा करे ।

[१७९-१८१] भिक्षु भिक्षा काल में निकले और समय पर ही वापस लौटे अकाल को वर्ज कर जो कार्य जिस समय उचित हो, उसे उसी समय करे । हे मुनि ! तुम अकाल में जाते हो, काल का प्रतिलेख नहीं करते । भिक्षा न मिलने पर तुम अपने को क्षुब्ध करते हो और सन्निवेश की निन्दा करते हो । भिक्षु समय होने पर भिक्षाटन और पुरुषार्थ करे । भिक्षा प्राप्त नहीं हुई, इसका शोक न करे किन्तु तप हो गया, ऐसा विचार कर क्षुधा परिषह सहन करे ।

[१८२] इसी प्रकार भोजनार्थ एकत्रित हुए नाना प्रकार के प्राणी दीखें तो वह उनके सम्मुख न जाए, किन्तु यतनापूर्वक गमन करे ।



[१८३-१८८] गोचरी के लिये गया हुआ संयमी कहीं भी न बैठे और न खड़ा रह कर भी धर्म- कथा का प्रबन्ध करे, अर्गला, परिघ, द्वार एवं कपाट का सहारा लेकर खड़ा न रहे, भोजन अथवा पानी के लिए आते हुए या गये हुए श्रमण, ब्राह्मण, कृपण अथवा वनीपक को लांघ कर प्रवेश न करे और न आँखों के सामने खड़ा रहे । किन्तु एकान्त में जा कर वहाँ खड़ा हो जाए । उन भिक्षाचारों को लांघ कर घर में प्रवेश करने पर उस वनीपक, दाता अथवा दोनों को अप्रीति उत्पन्न हो सकती है, अथवा प्रवचन की लघुता होती है । किन्तु गृहस्वामी द्वारा उन भिक्षाचारों को देने का निषेध कर देने पर अथवा दे देने पर तथा वहाँ से उन याचकों के हट जाने पर संयमी साधु उस घर में प्रवेश करे ।

[१८९-१९२] उत्पल, पद्म, कुमुद या मालती अथवा अन्य किसी सचित्त पुष्प का छेदन करके, सम्मर्दन कर भिक्षा देने लगे तो वह भक्त-पान संयमी साधु के लिए अकल्पनीय है । इसलिए मुनि निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मैं लिए अग्राह्य है ।

[१९३-१९४] अनिर्वृत कमलकन्द, पलाशकन्द, कुमुदनाल, उत्पलनाल, कमल के तन्तु, सरसों की माल, अपक्व इक्षुखण्ड, वृक्ष, तृण और दूसरी हरी वनस्पति का कच्चा नया प्रवाल—

[१९५] जिसके बीज न पके हों, ऐसी नई अथवा एक बार भुनी हुई कच्ची फली को साधु निषेध कर दे कि इस प्रकार का आहार मैं ग्रहण नहीं करता ।

[१९६-१९९] इसी प्रकार बिना उबाला हुआ बेर, वंश-शरीर, काश्यपनालिका तथा अपक्व तिलपपड़ी और कदम्ब का फल चाहिए । चावलों का पिष्ट, विकृत धोवन, निर्वृत जल, तिलपिष्ट, पोइ-साग और सरसों की खली, कपित्थ, बिजौरा, मूला और मूले के कन्द के टुकड़े, मन से भी इच्छा न करे । फलों का चूर्ण, बीजों का चूर्ण, विभीतक तथा प्रियालफल, इन्हें अपक्व जान कर छोड़ दे ।

[२००] भिक्षु समुदान भिक्षाचर्या करे । (वह) उच्च और नीच सभी कुलों में जाए, नीचकुल को छोड़ कर उच्चकुल में न जाए ।

[२०१] पण्डित साधु दीनता से रहित होकर भिक्षा की एषणा करे । भिक्षा न मिले तो विषाद न करे । सरस भोजन में अमूर्च्छित रहे । मात्रा को जानने वाला मुनि एषणा में रत रहे ।

[२०२] गृहस्थ (पर) के घर में अनेक प्रकार का प्रचुर खाद्य तथा स्वाद्य आहार होता है; किन्तु न देने पर पण्डित मुनि कोप न करे; परन्तु ऐसा विचार करे कि यह गृहस्थ है, दे या न दे, इसकी इच्छा ।

[२०३] संयमी साधु प्रत्यक्ष (सामने) दीखते हुए भी शयन, आसन, वस्त्र, भक्त और पान, न देने वाले पर क्रोध न करे ।

[२०४] स्त्री या पुरुष, बालक या वृद्ध वन्दना कर रहा हो, तो उससे किसी प्रकार की याचना न करे तथा आहार न दे तो उसे कठोर वचन भी न कहे ।

[२०५] जो वन्दना न करे, उस पर कोप न करे, वन्दना करे तो उत्कर्ष न लाए— इस प्रकार भगवदाज्ञा का अन्वेषण करने वाले मुनि का श्रामण्य अखण्ड रहता है ।

[२०६-२०७] कदाचित् कोई साधु सरस आहार प्राप्त करके इस लोभ से छिपा लेता

है कि मुझे मिला हुआ यह आहार गुरु को दिखाया गया तो वे देख कर स्वयं ले लें, मुझे न दें; ऐसा अपने स्वार्थ को ही बड़ा मानने वाला स्वादलोलुप बहुत पाप करता है और वह सन्तोषभाव रहित हो जाता है । निर्वाण को नहीं प्राप्त कर पाता ।

[२०८-२१०] कदाचित् विविध प्रकार के पान और भोजन प्राप्त कर अच्छा-अच्छा खा जाता है और विवर्ण एवं नीरस को ले आता है । (इस विचार से कि) ये श्रमण जानें कि यह मुनि बड़ा मोक्षार्थी है, सन्तुष्ट है, प्रान्त आहार सेवन करता है, रूक्षवृत्ति एवं जैसे-तैसे आहार से सन्तोष करने वाला है । ऐसा पूजार्थी, यश-कीर्ति पाने का अभिलाषी तथा मान-सम्मान की कामना करने वाला साधु बहुत पापकर्मों का उपार्जन करता है और मायाशल्य का आचरण करता है ।

[२११] अपने संयम की सुरक्षा करता हुआ भिक्षु सुरा, मेरक या अन्य किसी भी प्रकार का मादक रस आत्मसाक्षी से न पीए ।

[२१२-२१६] मुझे कोई जानता देखता नहीं है—यों विचार कर एकान्त में अकेला मद्य पीता है, उसके दोषों को देखो और मायाचार को मुझ से सुनो । उस भिक्षु की आसक्ति, माया-मृषा, अपयश, अतृप्ति और सतत असाधुता बढ़ जाती है । जैसे चोर सदा उद्विग्न रहता है, वैसे ही वह दुर्मति साधु अपने दुष्कर्मों से सदा उद्विग्न रहता है । ऐसा मद्यपायी मुनि मरणान्त समय में भी संवर की आराधना नहीं कर पाता । न तो वह आचार्य की आराधना कर पाता है और न श्रमणों की । गृहस्थ भी उसे वैसा दुश्चरित्र जानते हैं, इसलिए उसकी निन्दा करते हैं । इस प्रकार अगुणों को ही अहर्निश प्रेक्षण करने वाला और गुणों का त्याग करनेवाला उस प्रकार का साधु मरणान्तकाल में भी संवर की आराधना नहीं कर पाता ।

[२१७-२२०] जो मेधावी और तपस्वी साधु तपश्चरण करता है, प्रणीत रस से युक्त पदार्थों का त्याग करता है, जो मद्य और प्रमाद से विरत है, अहंकारातीत है उसके अनेक साधुओं द्वारा पूजित विपुल एवं अर्थसंयुक्त कल्याण को स्वयं देखो और मैं उसके गुणों का कीर्तन (गुणानुवाद) करूंगा, उसे मुझ से सुनो । इस प्रकार गुणों की प्रेक्षा करने वाला और अगुणों का त्यागी शुद्धाचारी साधु मरणान्त काल में भी संवर की आराधना करता है । वह आचार्य की आराधना करता है और श्रमणों की भी । गृहस्थ भी उसे उस प्रकार का शुद्धाचारी जानते हैं, इसलिए उसकी पूजा करते हैं ।

[२२१-२२४] (किन्तु) जो तप का, वचन का, रूप का, आचार तथा भाव का चोर है, वह किल्बिषिक देवत्व के योग्य कर्म करता है । देवत्व प्राप्त करके भी किल्बिषिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ वह वहाँ यह नहीं जानता कि यह मेरे किस कर्म का फल है ? वहाँ से च्युत हो कर मनुष्यभव में एडमूकता अथवा नरक या तिर्यञ्चयोनि को प्राप्त करेगा जहाँ उसे बोधि अत्यन्त दुर्लभ है । इस दोष को जान-देख कर ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने कहा कि मेधावी मुनि अणुमात्र भी मायामृषा का सेवन न करे ।

[२२५] इस प्रकार संयमी एवं प्रबुद्ध गुरुओं के पास भिक्षासम्बन्धी एषणा की विशुद्धि सीख कर इन्द्रियों को सुप्रणिहित रखने वाला, तीव्रसंयमी एवं गुणवान् होकर भिक्षु संयम में विचरण करे । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-६-महाचारकथा

[२२६-२२७] ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न, संयम और तप में रत, आगम-सम्पदा से युक्त गणिवर्य-आचार्य को उद्यान में समवसृत देखकर राजा और राजमंत्री, ब्राह्मण और क्षत्रिय निश्चलात्मा होकर पूछते हैं—हे भगवन् ! आप का आचार-गोचर कैसा है ?

[२२८-२२९] तब वे शान्त, दान्त, सर्वप्राणियों के लिए सुखावह, ग्रहण और आसेवन, शिक्षाओं से समायुक्त और परम विचक्षण गणी उन्हें कहते हैं—कि धर्म के प्रयोजनभूत मोक्ष की कामना वाले निर्ग्रन्थों के भीम, दुरधिष्ठित और सकल आचार-गोचर मुझसे सुनो ।

[२३०-२३२] जो निर्ग्रन्थाचार लोक में अत्यन्त दुश्चर है, इस प्रकार के श्रेष्ठ आचार का अन्य कहीं नहीं है । सर्वोच्च स्थान के भागी साधुओं का ऐसा आचार अन्य मत में न अतीत में था, न ही भविष्य में होगा । बालक हो या वृद्ध, अस्वस्थ हो या स्वस्थ, को जिन गुणों का पालन अखण्ड और अस्फुटित रूप से करना चाहिए, वे गुण जिस प्रकार हैं, उसी प्रकार मुझ से सुनो । उसके अठारह स्थान हैं । जो अज्ञ साधु इन अठारह स्थानों में से किसी एक का भी विराधन करता है, वह निर्ग्रन्थता से भ्रष्ट हो जाता है ।

[२३३-२३५] प्रथम स्थान अहिंसा का है, अहिंसा को सूक्ष्मरूप से देखी है । सर्वजीवों के प्रति संयम रखना अहिंसा है । लोक में जितने भी त्रस अथवा स्थावर प्राणी हैं; साधु या साध्वी, जानते या अजानते, उनका हनन न करे और न ही कराए; अनुमोदना भी न करे । सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना नहीं । इसलिए निर्ग्रन्थ साधु प्राणिवध को घोर जानकर परित्याग करते हैं ।

[२३६-२३७] अपने लिए या दूसरों के लिए, क्रोध से या भय से हिंसाकारक और असत्य न बोले, न ही बुलवाए और न अनुमोदन करे । लोक में समस्त साधुओं द्वारा मृषावाद गर्हित है और वह प्राणियों के लिए अविश्वसनीय है । अतः निर्ग्रन्थ मृषावाद का पूर्णरूप से परित्याग कर दे ।

[२३८-२३९] संयमी साधु-साध्वी, पदार्थ सचेतन हो या अचेतन, अल्प हो या बहुत, यहाँ तक कि दन्तशोधन मात्र भी हो, जिस गृहस्थ के अवग्रह में हो; उससे याचना किये बिना स्वयं ग्रहण नहीं करते, दूसरों से ग्रहण नहीं कराते और न ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करते हैं ।

[२४०-२४१] अब्रह्मचर्य लोक में घोर, प्रमादजनक और दुराचरित है । संयम का भंग करनेवाले स्थानों से दूर रहनेवाले मुनि उसका आचरण नहीं करते । यह अधर्म का मूल है । महादोषों का पुंज है । इसीलिए निर्ग्रन्थ मैथुन के संसर्ग का त्याग करते हैं ।

[२४२-२४६] जो ज्ञातपुत्र के वचनों में रत हैं, वे बिडलवण, सामुद्रिक लवण, तैल, घृत, द्रव गुड़ आदि पदार्थों का संग्रह करना नहीं चाहते । यह संग्रह लोभ का ही विघ्नकारी अनुस्पर्श है, ऐसा मैं मानता हूँ । जो साधु कदाचित् यत्किंचित् पदार्थ की सन्निधि की कामना करता है, वह गृहस्थ है, प्रव्रजित नहीं है । जो भी वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण रखते हैं, उन्हें भी वे संयम और लज्जा की रक्षा के लिए ही रखते हैं और उनका उपयोग करते हैं । समस्त जीवों के त्राता ज्ञातपुत्र ने इस (वस्त्रादि उपकरण समुदाय) को परिग्रह नहीं कहा है ।



‘मूर्च्छा परिग्रह है’,—ऐसा महर्षि ने कहा है । यथावद्वस्तुतत्त्वज्ञ साधु सर्व उपधि का संरक्षण करने और उन्हें ग्रहण करने में ममत्वभाव का आचरण नहीं करते, इतना ही नहीं, वे अपने शरीर पर भी ममत्व नहीं करते ।

[२४७-२५०] अहो ! समस्त तीर्थंकरों ने संयम के अनुकूल वृत्ति और एक बार भोजन इस नित्य तपःकर्म का उपदेश दिया है । ये जो त्रस और स्थावर अतिसूक्ष्म प्राणी हैं, जिन्हें रात्रि में नहीं देख पाता, तब आहार की एषणा कैसे कर सकता है ? उदक से आर्द्र, बीजों से संसक्त आहार को तथा पृथ्वी पर पड़े हुए प्राणियों को दिन में बचाया जा सकता है, तब फिर रात्रि में निर्ग्रन्थ भिक्षाचर्या कैसे कर सकता है ? ज्ञातपुत्र ने इसी दोष को देख कर कहा—निर्ग्रन्थ साधु रात्रिभोजन नहीं करते । वे रात्रि में चारों प्रकार के आहार का सेवन नहीं करते ।

[२५१-२५३] श्रेष्ठ समाधि वाले संयमी मन, वचन और काय-योग से और कृत, कारित एवं अनुमोदन-करण से पृथ्वीकाय की हिंसा नहीं करते । पृथ्वीकाय की हिंसा करता हुआ साधक उसके आश्रित रहे हुए विविध प्रकार के चाक्षुष और अचाक्षुष त्रस और स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है । इसलिए इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर यावज्जीवन पृथ्वीकाय के समारम्भ का त्याग करे ।

[२५४-२५६] सुसमाधिमान् संयमी मन, वचन और काय—त्रिविध करण से अप्काय की हिंसा नहीं करते । अप्कायिक जीवों की हिंसा करता हुआ साधक उनके आश्रित रहे हुए विविध चाक्षुष और अचाक्षुष त्रस और स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है । इसलिए इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर यावज्जीवन अप्काय के समारम्भ का त्याग करे ।

[२५७] साधु-साध्वी—अग्नि को जलाने की इच्छा नहीं करते; क्योंकि वह दूसरे शस्त्रों की अपेक्षा तीक्ष्ण शस्त्र तथा सब ओर से दुराश्रय है । वह चारो दिशा, उर्ध्व तथा अधोदिशा और विदिशाओं में सभी जीवों का दहन करती है । निःसन्देह यह अग्नि प्राणियों के लिए आघातजनक है । अतः संयमी प्रकाश और ताप के लिए उस का किंचिन्मात्र भी आरम्भ न करे । इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर (साधुवर्ग) जीवन-पर्यन्त अग्निकाय के समारम्भ का त्याग करे ।

[२६१-२६४] तीर्थंकरदेव वायु के समारम्भ को अग्निसमारम्भ के सदृश ही मानते हैं । यह सावद्य-बहुल है । अतः यह षट्काय के त्राता साधुओं के द्वारा आसेवित नहीं है । ताड़ के पंखे से, पत्र से, वृक्ष की शाखा से, स्वयं हवा करना तथा दूसरों से करवाना नहीं चाहते और अनुमोदन भी नहीं करते हैं । जो भी वस्त्र, पात्र, कम्बल या रजोहरण हैं, उनके द्वारा (भी) वे वायु की उदीरणा नहीं करते, किन्तु यतनापूर्वक वस्त्र-पात्रादि उपकरण को धारण करते हैं । इस दुर्गतिवर्द्धक दोष को जान कर (साधुवर्ग) जीवनपर्यन्त वायुकाय-समारम्भ का त्याग करे ।

[२६५-२६७] सुसमाहित संयमी मन, वचन और काय तथा त्रिविध करण से वनस्पतिकाय की हिंसा नहीं करते । वनस्पतिकाय की हिंसा करता हुआ साधु उसके आश्रित विविध चाक्षुष और अचाक्षुष त्रस और स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है । इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर (साधुवर्ग) जीवन भर वनस्पतिकाय के समारम्भ का त्याग करे ।

[२६८-२७०] सुसमाधियुक्त संयमी मन, वचन, काया तथा त्रिविध करण से त्रसकायिक जीवों की हिंसा नहीं करते । त्रसकाय की हिंसा करता हुआ उसके आश्रित अनेक प्रकार के चाक्षुष और अचाक्षुष प्राणियों की हिंसा करता है । इसे दुर्गतिवर्द्धक दोष जान कर जीवनपर्यन्त त्रसकाय के समारम्भ काय त्याग करे ।

[२७१-२७४] जो आहार आदि चार पदार्थ ऋषियों के लिए अकल्पनीय हैं, उनका विवर्जन करता हुआ (साधु) संयम का पालन करे । अकल्पनीय पिण्ड, शय्या, वस्त्र और पात्र को ग्रहण करने की इच्छा न करे, ये कल्पनीय हों तो ग्रहण करे । जो साधु-साध्वी नित्य निमंत्रित कर दिया जाने वाला, क्रीत, औद्देशिक और आहत आहार ग्रहण करते हैं, वे प्राणियों के वध का अनुमोदन करते हैं, ऐसा महर्षि महावीर ने कहा है । इसलिए धर्मजीवी, स्थितात्मा, निर्ग्रन्थ, क्रीत, औद्देशिक एवं आहत अशन-पान आदि का वर्जन करते हैं ।

[२७५-२७७] गृहस्थ के कांसे के कटोरे में या बर्तन में जो साधु अशन, पान आदि खाता-पीता है, वह श्रमणाचार से परिभ्रष्ट हो जाता है । (गृहस्थ के द्वारा) उन बर्तनों को सचित्त जल से धोने में और बर्तनों के धोए हुए पानी को डालने में जो प्राणी निहत होते हैं, उसमें तीर्थकरों ने असंयम देखा है । कदाचित् पश्चात्कर्म और पुरःकर्म दोष संभव है । इसी कारण वे गृहस्थ के पात्र में भोजन नहीं करते ।

[२७८-२८०] आर्य के लिए आसन्दी और पलंग पर, मंच और आसालक पर बैठना या सोना अनाचरित है । तीर्थकरदेवों द्वारा कथित आचार का पालन करनेवाले निर्ग्रन्थ में बैठना भी पड़े तो बिना प्रतिलेखन किये, आसन्दी, पलंग आदि बैठते उठते या सोते नहीं है । ये सब शयनासन गम्भीर छिद्र वाले होते हैं, इनमें सूक्ष्म प्राणियों का प्रतिलेखन करना दुःशक्य होता है; इसलिए आसन्दी आदि पर बैठना या सोना वर्जित है ।

[२८१-२८४] भिक्षा के लिए प्रविष्ट जिस (साधु) को गृहस्थ के घर में बैठना अच्छा लगता है, वह इस प्रकार के अनाचार को तथा उसके अबोधि रूप फल को प्राप्त होता है । वहां बैठने से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन न करने में विपत्ति, प्राणियों का वध होने से संयम का घात, भिक्षाचरों को अन्तराय और घर वालों को क्रोध, उत्पन्न होता है, (गृहस्थ के घर में बैठने से) ब्रह्मचर्य की असुरक्षा होती है; स्त्रियों के प्रति भी शंका उत्पन्न होती है । अतः यह गृहस्थगृहनिषद्या कुशीलता बढ़ाने वाला स्थान है, साधु इसका दूर से ही परिवर्जन कर दे । जरा ग्रस्त, व्याधि पीड़ित और तपस्वी के लिए गृहस्थ के घर में बैठना कल्पनीय है ।

[२८५-२८७] रोगी हो या नीरोगी, जो साधु स्नान करने की इच्छा करता है, उसके आचार का अतिक्रमण होता है; उसका संयम भी त्यक्त होता है । पोली भूमि में और भूमि को दरारों में सूक्ष्म प्राणी होते हैं । प्रासुक जल से भी स्नान करता हुआ भिक्षु उन्हें प्लावित कर देता है । इसलिए वे शीतल या उष्ण जल से स्नान नहीं करते । वे जीवन भर घोर अस्नानव्रत पर दृढ़ता से टिके रहते हैं ।

[२८८-२९१] संयमी साधु स्नान अथवा अपने शरीर का उबटन करने के लिए कल्क, लोघ्न, या पद्मराग का कदापि उपयोग नहीं करते । नग्न, मुण्डित, दीर्घ रोम और नखों वाले तथा वैशुनकर्म से उपशान्त साधु को विभूषा से क्या प्रयोजन है ? विभूषा के निमित्त से साधु चिकने कर्म बाँधता है, जिसके कारण वह दुस्तर संसार-सागर में जा पड़ता है ।

तीर्थकर देव विभूषा में संलग्न चित्त को कर्मबन्ध का हेतु मानते हैं । ऐसा चित्त सावध-बहुल है । यह षट्काय के त्राता के द्वारा आसेवित नहीं है ।

[२९२] व्यामोह-रहित तत्त्वदर्शी तथा तप, संयम और आर्जव गुण में रत रहने वाले वे साधु अपने शरीर को क्षीण कर देते हैं । वे पूर्वकृत पापों का क्षय कर डालते हैं और नये पाप नहीं करते ।

[२९३] सदा उपशान्त, ममत्व-रहित, अकिंचन अपनी अध्यात्म-विद्या के अनुगामी तथा जगत् के जीवों के त्राता और यशस्वी हैं, शरद्ऋतु के निर्मल चन्द्रमा के समान सर्वथा विमल साधु सिद्धि को अथवा सौधर्मावतंसक आदि) विमानों को प्राप्त करते हैं । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-७-वाक्यशुद्धि

[२९४] प्रज्ञावान् साधु चारों ही भाषाओं को जान कर दो उत्तम भाषाओं का शुद्ध प्रयोग करना सीखे और दो (अधम) भाषाओं को सर्वथा न बोले ।

[२९५-२९८] तथा जो भाषा सत्य है, किन्तु अवक्तव्य है, जो सत्या-मृषा है, तथा मृषा है एवं जो असत्यामृषा है, (किन्तु) तीर्थकरदेवों के द्वारा अनाचीर्ण है, उसे भी प्रज्ञावान् साधु न बोले । जो असत्याऽमृषा और सत्यभाषा अनवद्य, अकर्कश और असंदिग्ध हो, उसे सम्यक् प्रकार से विचार कर बोले । सत्यामृषा भी न बोले, जिसका यह अर्थ है, या दूसरा है ? (इस प्रकार से) अपने आशय को संदिग्ध बना देती हो । जो मनुष्य सत्य दीखनेवाली असत्य वस्तु का आश्रय लेकर बोलता है, उससे भी वह पाप से स्पृष्ट होता है, तो फिर जो मृषा बोलता है, उसके पाप का तो क्या कहना ?

[२९९-३०३] हम जाएँगे, हम कह देंगे, हमारा अमुक (कार्य) अवश्य हो जाएगा, या मैं अमुक कार्य करूँगा, अथवा यह (व्यक्ति) यह (कार्य) अवश्य करेगा; यह और इसी प्रकार की दूसरी भाषाएँ, जो भविष्य, वर्तमान अथवा अतीतकाल-सम्बन्धी अर्थ के सम्बन्ध में शंकित हों; धैर्यवान् साधु न बोले । अतीत, वर्तमान और अनागत काल सम्बन्धी जिस अर्थ को न जानता हो अथवा जिसके विषय में शंका हो उसके विषय में 'यह इसी प्रकार है,' ऐसा नहीं बोलना । अतीत, वर्तमान और अनागत काल सम्बन्धी जो अर्थ निःशंकित हो, उसके विषय में 'यह इस प्रकार है', ऐसा निर्देश करे ।

[३०४-३०६] इसी प्रकार जो भाषा कठोर हो तथा बहुत प्राणियों का उपघात करने वाली हो, वह सत्य होने पर भी बोलने योग्य नहीं है; क्योंकि ऐसी भाषा से पापकर्म का बन्ध (या आस्रव) होता है । इसी प्रकार काने को काना, नपुंसक को नपुंसक तथा रोगी को रोगी और चोर को चोर न कहे । इस उक्त अर्थ से अथवा अन्य ऐसे जिस अर्थ से कोई प्राणी पीड़ित होता है, उस अर्थ को आचार सम्बन्धी भावदोष को जाननेवाला प्रज्ञावान् साधु न बोले ।

[३०७-३१३] इसी प्रकार प्रज्ञावान् साधु, 'रे होल !, रे गोल !, ओ कुत्ते !, ऐ वृषल (शूद्र) !, हे द्रमक !, ओ दुर्भग !' इस प्रकार न बोले । स्त्री को—हे दादी ! हे परदादी !, हे



मां !, हे मौसी !, हे बुआ !, ऐ भानजी !, अरी पुत्री !, हे नातिन, हे हला !, हे अन्ने !, हे भट्टे ! हे स्वामिनि !, हे गोमिनि ! – इस प्रकार आमंत्रित न करे । किन्तु यथायोग्य गुण-दोष, वय आदि का विचार कर एक बार या बार-बार उन्हें उनके नाम या गोत्र से आमंत्रित करे । पुरुष को—हे दादा ! हे परदादा !, हे पिता !, हे चाचा !, हे मामा !, हे भानजा !, हे पुत्र !, हे पोते !, हे हल !, हे अन्न !, हे भट्ट !, हे स्वामिन् !, हे वृषल !’ इस प्रकार आमंत्रित न करे । किन्तु यथायोग्य गुण-दोष वय आदि का विचार कर एक बार या बार-बार उन्हें उनके नाम या गोत्र से आमंत्रित करे ।

[३१४-३१६] पंचेन्द्रिय प्राणियों को जब तक ‘यह मादा अथवा नर है’ यह निश्चयपूर्वक न जान ले, तब तक यह मनुष्य की जाति है, यह गाय की जाति है, इस प्रकार बोले । इसी प्रकार मनुष्य, पशु-पक्षी अथवा सर्प (सरीसृप) को देख कर कहा स्थूल है, प्रमेदुर है, वध्य है, या पाक्य है, इस प्रकार न कहे । प्रयोजनवश बोलना ही पड़े तो उसे परिवृद्ध, उपचित, संजात, प्रीणित या (यह) महाकाय है, इस प्रकार बोले ।

[३१७-३१८] इसी प्रकार प्रज्ञावान् मुनि—‘ये गायें दुहने योग्य हैं, ये बछड़े दमन योग्य हैं, वहन करने योग्य हैं, स्थ योग्य हैं; इस प्रकार न बोले । प्रयोजनवश बोलना ही पड़े तो यह युवा बैल है, यह दूध देने वाली है तथा छोटा बैल, बड़ा बैल अथवा संवहन है, इस प्रकार बोले ।

[३१९-३२१] इसी प्रकार उद्यान में, पर्वतों पर अथवा वनों में जाकर बड़े-बड़े वृक्षों को देख कर प्रज्ञावान् साधु इस प्रकार न बोले—‘ये वृक्ष प्रासाद, स्तम्भ, तोरण, घर, परिधि, अर्गला एवं नौका तथा जल की कुंडी, पीठ, काष्ठपात्र, हल, मयिक, यंत्रयष्टि, गाड़ी के पहिये की नाभि अथवा अहरन, आसन, शयन, यान और उपाश्रय के (लिए) उपयुक्त कुछ (काष्ठ) हैं—इस प्रकार की भूतोपघातिनी भाषा प्रज्ञासम्पन्न साधु न बोले ।

[३२३-३२४] (कारणवश) उद्यान में, पर्वतों पर या वनों में जा कर रहा हुआ प्रज्ञावान् साधु वहां बड़े-बड़े वृक्षों को देख इस प्रकार कहे—‘ये वृक्ष उत्तम जाति वाले हैं, दीर्घ, गोल, महालय, शाखाओं एवं प्रशाखाओं वाले तथा दर्शनीय हैं, इस प्रकार बोले ।

[३२५-३२६] तथा ये फल परिपक्व हो गए हैं, पका कर खाने के योग्य हैं, ये फल कालोचित हैं, इनमें गुठली नहीं पड़ी, ये दो टुकड़े करने योग्य हैं—इस प्रकार भी न बोले । प्रयोजनवश बोलना पड़े तो ‘ये आम्रवृक्ष फलों का भार सहने में असमर्थ हैं, बहुनिर्वर्तित फल वाले हैं, बहु-संभूत हैं अथवा भूतरूप हैं; इस प्रकार बोले ।

[३२७-३२८] इसी प्रकार—‘ये धान्य-ओषधियाँ पक गई हैं, नीली छाल वाली हैं, काटने योग्य हैं, ये भूनने योग्य हैं, अग्नि में सेक कर खाने योग्य हैं; इस प्रकार न कहे । यदि प्रयोजनवश कुछ कहना हो तो ये ओषधियाँ अंकुरित, प्रायः निष्पन्न, स्थिरीभूत, उपघात से पार हो गई हैं । अभी कण गर्भ में हैं या कण गर्भ से बाहर निकल आये हैं, या सिद्धे परिपक्व बीज वाले हो गये हैं, इस प्रकार बोले ।

[३२९-३३२] इसी प्रकार साधु को जीमणवार (संखडी) और कृत्य (मृतकभोज) जान कर ये करणीय हैं, यह चोर मारने योग्य हैं, ये नदियाँ अच्छी तरह से तैरने योग्य हैं, इस प्रकार न बोले—(प्रयोजनवश कहना पड़े तो) संखडी को (यह) संखडी है, चोर को ‘अपने

प्राणों को कष्ट में डाल कर स्वार्थ सिद्ध करने वाला' कहे । और नदियों के तीर्थ बहुत सम हैं, इस प्रकार बोले । तथा ये नदियाँ जल से पूर्ण भरी हुई हैं; शरीर से तैरने योग्य हैं, इस प्रकार न कहे । तथा ये नौकाओं द्वारा पार की जा सकती हैं, एवं प्राणी इनका जल पी सकते हैं, ऐसा भी न बोले । (प्रयोजनवश कहना पड़े तो) प्रायः जल से भरी हुई हैं; अगाध हैं, ये बहुत विस्तृत जल वाली हैं,—प्रज्ञावान् भिक्षु इस प्रकार कहे ।

[३३३-३३५] इसी प्रकार सावध व्यापार दूसरे के लिए किया गया हो, किया जा रहा हो अथवा किया जाएगा ऐसा जान कर सावध वचन मुनि न बोले । कोई सावधकार्य हो रहा हो तो उसे देखकर बहुत अच्छा किया, यह भोजन बहुत अच्छा पकाया है; अच्छा काटा है; अच्छा हुआ इस कृपण का धन हरण हुआ, (अच्छा हुआ, वह दुष्ट) मर गया, बहुत अच्छा निष्पन्न हुआ है; (यह कन्या) अतीव सुन्दर है; इस प्रकार के सावध वचनों का मुनि प्रयोग न करे । (प्रयोजनवश कभी बोलना पड़े तो) 'यह प्रयत्न से पकाया गया है', 'प्रयत्न से काटा गया है' प्रयत्नपूर्वक लालन-पालन किया गया है, तथा यह प्रहार गाढ है, ऐसा (निर्दोष वचन) बोले ।

[३३६] यह वस्तु सर्वोत्कृष्ट, बहुमूल्य, अतुल है, इसके समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है, यह वस्तु अवर्णनीय या अप्रीतिकर है; इत्यादि व्यापारविषयक वचन न कहे ।

[३३७] कोई गृहस्थ किसी को संदेश कहने को कहे तब 'मैं तुम्हारी सब बातें उससे अवश्य कह दूंगा' (अथवा किसी को सन्देश कहलाते हुए) 'यह सब उससे कह देना'; इस प्रकार न बोले; किन्तु पूर्वापर विचार करके बोले ।

[३३८] अच्छा किया यह खरीद लिया अथवा बेच दिया, यह पदार्थ खराब है, खरीदने योग्य नहीं है अथवा अच्छा है, खरीदने योग्य है; इस माल को ले लो अथवा बेच डालो (इस प्रकार) व्यवसाय-सम्बन्धी (वचन), साधु न कहे ।

[३३९] कदाचित् कोई अल्पमूल्य अथवा बहुमूल्य माल खरीदने या बेचने के विषय में (पूछे तो) व्यावसायिक प्रयोजन का प्रसंग उपस्थित होने पर साधु या साध्वी निरवध वचन बोले ।

[३४०] इसी प्रकार धीर और प्रज्ञावान् साधु असंयमी को—यहाँ बैठ, इधर आ, यह कार्य कर, सो जा, खड़ा हो जा या चला जा, इस प्रकार न कहे ।

[३४१-३४२] ये बहुत से असाधु लोक में साधु कहलाते हैं; किन्तु निर्ग्रन्थ साधु असाधु को—'यह साधु है', इस प्रकार न कहे, साधु को ही—'यह साधु है;' ऐसा कहे । ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न तथा संयम और तप में रत—ऐसे सद्गुणों से समायुक्त संयमी को ही साधु कहे ।

[३४३] देवों, मनुष्यों अथवा तिर्यञ्चों का परस्पर संग्राम होने पर अमुक की विजय हो, अथवा न हो,—इस प्रकार न कहे ।

[३४४] वायु, वृष्टि, सर्दी, गर्मी, क्षेम, सुभिक्ष अथवा शिव, ये कब होंगे ? अथवा ये न हों इस प्रकार न कहे ।

[३४५] मेघ को, आकाश को अथवा मानव को—'यह देव है, यह देव है', इस प्रकार की भाषा न बोले । किन्तु—'यह मेघ' उमड़ रहा है, यह मेघमाला बस्स पड़ी है, इस प्रकार बोले ।

[३४६] साधु, नभ और मेघको—अन्तरिक्ष तथा गुह्यानुचरित कहे तथा ऋद्धिमान् मनुष्य को 'यह ऋद्धिशाली है', ऐसा कहे ।

[३४७] जो भाषा सावद्य का अनुमोदन करनेवाली हो, जो निश्चयकारिणी एवं पर-उपघातकारिणी हो, उसे क्रोध, लोभ, भय या हास्यवश भी न बोले ।

[३४८] जो मुनि श्रेष्ठ वचनशुद्धि का सम्यक् सम्प्रेक्षण करके दोषयुक्त भाषा को सर्वदा सर्वथा छोड़ देता है तथा परिमित और दोषरहित वचन पूर्वापर विचार करके बोलता है, वह सत्पुरुषों के मध्य में प्रशंसा प्राप्त करता है ।

[३४९] षड्जीवनिकाय के प्रति संयत तथा श्रामण्यभाव में सदा यत्नशील रहने वाला प्रबुद्ध साधु भाषा के दोषों और गुणों को जान कर एवं उसमें से दोषयुक्त भाषा को सदा के लिए छोड़ दे और हितकारी तथा आनुलोमिक वचन बोले ।

[३५०] जो साधु गुण-दोषों की परीक्षा करके बोलने वाला है, जिसकी इन्द्रियाँ सुसमाहित हैं, चार कषायों से रहित है, अनिश्रित है, वह पूर्वकृत पाप-मल को नष्ट करके इस लोक तथा परलोक का आराधक होता है ।—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-७-का मुनि दीपरत्नसागर कृत अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-८-आचारप्रणिधि

[३५१] आचार-प्रणिधि को पाकर, भिक्षु को जिस प्रकार (जो) करना चाहिए, वह मैं तुम्हें कहूँगा, जिसे तुम अनुक्रम से मुझसे सुनो ।

[३५२-३५३] पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय तथा वनस्पतिकाय तथा त्रस प्राणी; ये जीव हैं, ऐसा महर्षि ने कहा है । उन के प्रति मन, वचन और काया से सदा अहिंसामय व्यापारपूर्वक ही रहना चाहिए । इस प्रकार (अहिंसकवृत्ति से रहने वाला) संयत होता है ।

[३५४-३५५] सुसमाहित संयमी तीन करण तीन योग से पृथ्वी, भित्ति, शिला अथवा मिट्टी का, ढेले का स्वयं भेदन न करे और न उसे कुरेदे, सचित्त पृथ्वी और सचित्त रज से संसृष्ट आसन पर न बैठे । (यदि बैठना हो तो) जिसकी वह भूमि हो, उससे आज्ञा मांग कर तथा प्रमार्जन करके बैठे ।

[३५६-३५७] संयमी साधु शीत उदक, ओले, वर्षा के जल और हिम का सेवन न करे । तपा हुआ गर्म जल तथा प्रासुक जल ही ग्रहण करे । सचित्त जल से भीगे हुए अपने शरीर को न तो पोँछे और न ही मले । तथाभूत शरीर को देखकर, उसका स्पर्श न करे ।

[३५८] मुनि जलते हुए अंगारे, अग्नि, त्रुटित अग्नि की ज्वाला, जलती हुई लकड़ी को न प्रदीप्त करे, न हिलाए और न उसे बुझाए ।

[३५९] साधु ताड़ के पंखे से, पत्ते से, वृक्ष की शाखा से अथवा सामान्य पंखे से अपने शरीर को अथवा बाह्य पुद्गल को भी हवा न करे ।

[३६०-३६१] मुनि तृण, वृक्ष, फल, तथा मूल का छेदन न करे, विविध प्रकार के सचित्त बीजों की मन से भी इच्छा न करे । वनकुंजों में, बीजों, हरित तथा उदक, उत्तिंग और पनक पर खड़ा न रहे ।



[३६२] मुनि वचन अथवा कर्म से त्रस प्राणियों की हिंसा न करे । समस्त जीवों की हिंसा से उपरत साधु विविध स्वरूप वाले जगत् को (विवेकपूर्वक) देखे ।

[३६३-३६६] संयमी साधु जिन्हें जान कर समस्त जीवों के प्रति दया का अधिकारी बनता है, उन आठ प्रकार के सूक्ष्मों को भलीभांति देखकर ही बैठे, खड़ा हो अथवा सोए । वे आठ सूक्ष्म कौन-कौन से हैं ? तब मेधावी और विचक्षण कहे कि वे ये हैं—स्नेहसूक्ष्म, पुष्पसूक्ष्म, प्राणिसूक्ष्म, उत्तिंग सूक्ष्म, पनकसूक्ष्म, बीजसूक्ष्म, हरितसूक्ष्म और आठवाँ अण्डसूक्ष्म । सभी इन्द्रियों के विषय में राग-द्वेष रहित संयमी साधु इसी प्रकार इन सूक्ष्म जीवों को सर्व प्रकार से जान कर सदा अप्रमत्त रहता हुआ यतना करे ।

[३६७-३६८] संयमी साधु सदैव यथासमय उपयोगपूर्वक पात्र, कम्बल, शय्या, उच्चारभूमि, संस्तारक अथवा आसन का प्रतिलेखन करे । उच्चार, प्रस्रवण, कफ, नाक का मैल और पसीना आदि डालने के लिए प्रासुक भूमि का प्रतिलेखन करके उनका (यतनापूर्वक) परिष्ठापन करे ।

[३६९] पानी या भोजन के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करके साधु यतना से खड़ा रहे, परिमित बोले और (वहाँ के) रूप में मन को डांवाडोल न करे ।

[३७०-३७१] भिक्षु कानों से बहुत कुछ सुनता है तथा आँखों से बहुत-से रूप (या दृश्य) देखता है किन्तु सब देखे हुए और सुने हुए को कह देना उचित नहीं । यदि सुनी या देखी हुई (घटना औपघातिक हो तो नहीं कहनी तथा किसी भी उपाय से गृहस्थोचित आचरण नहीं करना ।

[३७२] पूछने पर अथवा बिना पूछे भी यह सरस (भोजन) है और यह नीरस है, यह (ग्राम आदि) अच्छा है और यह बुरा है, अथवा मिला या न मिला; यह भी न कहे ।

[३७३-३७६] भोजन में गृद्ध न हो, व्यर्थ न बोलता हुआ उज्ज भिक्षा ले । (वह) अप्रासुक, क्रीत, औद्देशिक और आहत आहार का भी उपभोग न करे । अणुमात्र भी सन्निधि न करे, सदैव मुधाजीवी असम्बद्ध और जनपद के निश्चित रहे, रूक्षवृत्ति, सुसन्तुष्ट, अल्प इच्छाबाला और थोड़े से आहार से तृप्त होने वाला हो । वह जिनप्रवचन को सुन कर आसुरत्व को प्राप्त न हो । कानों के लिए सुखकर शब्दों में रागभाव स्थापन न करे, दारुण और कर्कश स्पर्श को शरीर से (समभावपूर्वक) सहन करे ।

[३७७] क्षुधा, पिपासा, दुःशय्या, शीत, उष्ण, अरति और भय को (मुनि) अव्यथित होकर सहन करे; (क्योंकि) देह में उत्पन्न दुःख को समभाव से सहना महाफलरूप होता है ।

[३७८] सूर्य के अस्त हो जाने पर और सूर्य उदय न हो जाए तब तक सब प्रकार के आहारादि पदार्थों की मन से भी इच्छा न करे ।

[३७९-३८२] साधु तनतनाहट न करे, चपलता न करे, अल्पभाषी, मितभोजी और उदर का दमन करने वाला हो । थोड़ा पाकर निन्दा न करे । किसी जीव का तिरस्कार न करे । उत्कर्ष भी प्रकट न करे । श्रुत, लाभ, जाति, तपस्विता और बुद्धि से मद न करे । जानते हुए या अनजाने अधार्मिक कृत्य हो जाए तो तुरन्त उससे अपने आपको रोक ले तथा दूसरी बार वह कार्य न करे । अनाचार का सेवन करके उसे गुरु के समक्ष न छिपाए और न ही सर्वथा अपलाप करे; किन्तु सदा पवित्र प्रकट भाव धारण करनेवाला, असंसक्त एवं

जितेन्द्रिय रहे ।

[३८३] मुनि महान् आत्मा आचार्य के वचन को सफल करे । वह उनके कथन को भलीभाँति ग्रहण करके कार्य द्वारा सम्पन्न करे ।

[३८४] जीवन को अध्रुव और आयुष्य को परिमित जान तथा सिद्धिमार्ग का विशेषरूप से ज्ञान प्राप्त करके भोगों से निवृत्त हो जाए ।

[३८५] अपने बल, शारीरिक शक्ति, श्रद्धा और आरोग्य को देख कर तथा क्षेत्र और काल को जान कर, अपनी आत्मा को धर्मकार्य में नियोजित करे ।

[३८६] जब तक वृद्धावस्था पीड़ित न करे, व्याधि न बढ़े और इन्द्रियाँ क्षीण न हों, तब तक धर्म का सम्यक् आचरण कर लो ।

[३८७] क्रोध, मान, माया और लोभ, पाप को बढ़ाने वाले हैं । आत्मा का हित चाहनेवाला इन चारों का अवश्यमेव वमन कर दे ।

[३८८] क्रोध प्रीति का, मान विनय का, माया मित्रता का और लोभ तो सब का नाश करनेवाला है ।

[३८९] क्रोध का 'उपशम' से, मान को मृदुता से, माया को सरलता से और लोभ पर संतोष के द्वारा विजय प्राप्त करे ।

[३९०] अनिगृहीत क्रोध और मान प्रवर्द्धमान माया और लोभ, ये चोरों संक्लिष्ट कषाय पुनर्जन्म की जड़ें सींचते हैं ।

[३९१] (साधु) रत्नाधिकों के प्रति विनयी बने, ध्रुवशीलता को न त्यागे । कछुए की तरह आलीनगुप्त और प्रलीनगुप्त होकर तप-संयम में पराक्रम करे ।

[३९२] साधु निद्रा को बहुमान न दे । अत्यन्त हास्य को वर्जित करे, पारस्परिक विकथाओं में रमण न करे, सदा स्वाध्याय में रत रहे ।

[३९३] साधु आलस्यरहित होकर श्रमणधर्म में योगों को सदैव नियुक्त करे; क्योंकि श्रमणधर्म में संलग्न साधु अनुत्तर अर्थ को प्राप्त करता है ।

[३९४] जिस के द्वारा इहलोक और परलोक में हित होता है, सुगति होती है । वह बहुश्रुत (मुनि) की पर्युपासना करे और अर्थ के विनिश्चय के लिए पृच्छा करे ।

[३९५] जितेन्द्रिय मुनि (अपने) हाथ, पैर और शरीर को संयमित करके आलीन और गुप्त होकर गुरु के समीप बैठे ।

[३९६] आचार्य आदि के पार्श्वभाग में, आगे और पृष्ठभाग में न बैठे तथा गुरु के समीप ऊरु सटा कर (भी) न बैठे ।

[३९७] विनीत साधु बिना पूछे न बोलें, (वे) बात कर रहे हों तो बीच में न बोलें । चुगली न खाए और मायामृषा का वर्जन करे ।

[३९८] जिससे अप्रीति उत्पन्न हो अथवा दूसरा शीघ्र ही कुपित होता हो, ऐसी अहितकर भाषा सर्वथा न बोलें ।

[३९९] आत्मवान् साधु दृष्ट, परिमित, असंदिग्ध, परिपूर्ण, व्यक्त, परिचित, अजल्पित और अनुद्विग्न भाषा बोलें ।

[४००] आचारांग और व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र के धारक एवं दृष्टिवाद के अध्येता साधु

वचन से खलित हो जाएँ तो मुनि उनका उपहास न करे ।

[४०१] नक्षत्र, स्वप्नफल, वशीकरणादि योग, निमित्त, मन्त्र, भेषज आदि अयोग्य बातें गृहस्थों को न कहे; क्योंकि ये प्राणियों के अधिकरण स्थान हैं ।

[४०२] दूसरों के लिए बने हुए, उच्चारभूमि से युक्त तथा स्त्री और पशु से रहित स्थान, शय्या और आसन का सेवन करे ।

[४०३] यदि उपाश्रय विविक्त हो तो केवल स्त्रियों के बीच धर्मकथा न कहे; गृहस्थों के साथ संस्तव न करे, साधुओं के साथ ही परिचय करे ।

[४०४] जिस प्रकार मुर्गे के बच्चे को बिल्ली से सदैव भय रहता है, इसी प्रकार ब्रह्मचारी को स्त्री के शरीर से भय होता है ।

[४०५] चित्रभित्ति अथवा विभूषित नारी को टकटकी लगा कर न देखे । कदाचित् सहसा उस पर दृष्टि पड़ जाए तो दृष्टि तुरंत उसी तरह वापस हटा ले, जिस तरह सूर्य पर पड़ी हुई दृष्टि हटा ली जाती है ।

[४०६] जिसके हाथ-पैर कटे हुए हों, जो कान और नाक से विकल हो, वैसी सौ वर्ष की नारी (के संसर्ग) का भी ब्रह्मचारी परित्याग कर दे ।

[४०७] आत्मगवेषी पुरुष के लिए विभूषा, स्त्रीसंसर्ग और स्निग्ध रस-युक्त भोजन तालपुट विष के समान है ।

[४०८] स्त्रियों के अंग, प्रत्यंग, संस्थान, चारु-भाषण और कटाक्ष के प्रति (साधु) ध्यान न दे, क्योंकि ये कामराग को बढ़ाने वाले हैं ।

[४०९] शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, इन पुद्गलों के परिणमन को अनित्य जान कर मनोज्ञ विषयों में रागभाव स्थापित न करे ।

[४१०] उन (इन्द्रियों के विषयभूत) पुद्गलों के परिणमन को जैसा है, वैसा जान कर अपनी प्रशान्त आत्मा से तृष्णारहित होकर विचर्ण करे ।

[४११] जिस (वैराग्यभावपूर्ण) श्रद्धा संघर से निकला और प्रव्रज्या को स्वीकार किया, उसी श्रद्धा से मूल-गुणों का अनुपालन करे ।

[४१२] (जो मुनि) इस तप, संयमयोग और स्वाध्याययोग में सदा निष्ठापूर्वक प्रवृत्त रहता है, वह अपनी और दूसरों की रक्षा करने में उसी प्रकार समर्थ होता है, जिस प्रकार सेना से घिर जाने पर समग्र साधुओं से सुसज्जित शूवीर ।

[४१३] स्वाध्याय और सद्ध्यान में रत, त्राता, निष्पापभाव वाले (तथा) तपश्चरण में रत मुनि का पूर्वकृत कर्म उसी प्रकार विशुद्ध होता है, जिस प्रकार अग्नि द्वारा तपाए हुए रूप्य का मल ।

[४१४] जो (पूर्वोक्त) गुणों से युक्त है, दुःखों को सहन करने वाला है, जितेन्द्रिय है, श्रुत युक्त है, ममत्वरहित और अकिंचन है; वह कर्मरूपी मेघों के दूर होने पर, उसी प्रकार सुशोभित होता है, जिस प्रकार सम्पूर्ण अभ्रपटल से विमुक्त चन्द्रमा ।—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-८-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण



## अध्ययन-९-विनयसमाधि

### उद्देशक-१

[४१५] (जो साधक) गर्व, क्रोध, माया और प्रमादवश गुरुदेव के समीप विनय नहीं सीखता, (उसके) वे (अहंकारादि दुर्गुण) ही वस्तुतः उस के ज्ञानादि वैभव वांस के फल के समान विनाश के लिए होता है ।

[४१६-४१७] जो गुरु की 'ये मन्द, अल्पवयस्क तथा अल्पश्रुत हैं' ऐसा जान कर हीलना करते हैं, वे मिथ्यात्व को प्राप्त करके गुरुओं की आशातना करते हैं । कई स्वभाव से ही मन्द होते हैं और कोई अल्पवयस्क भी श्रुत और बुद्धि से सम्पन्न होते हैं । वे आचारवान् और गुणों में सुस्थितात्मा आचार्य की अवज्ञा किये जाने पर (गुणराशि को उसी प्रकार) भस्म कर डालते हैं, जिस प्रकार इन्धनराशि को अग्नि ।

[४१८-४१९] जो कोई सर्प को 'छोटा बच्चा है' यह जान कर उसकी आशातना करता है, वह (सर्प) उसके अहित के लिए होता है, इसी प्रकार आचार्य की भी अवहेलना करने वाला मन्दबुद्धि भी संसार में जन्म-मरण के पथ पर गमन करता है । अत्यन्त क्रुद्ध हुआ भी आशीविष सर्प जीवन-नाश से अधिक और क्या कर सकता है ? परन्तु अप्रसन्न हुए पूज्यपाद आचार्य तो अबोधि के कारण बनते हैं, जिससे मोक्ष नहीं मिलता ।

[४२०-४२१] जो प्रज्वलित अग्नि को मसलता है, आशीविष सर्प को कुपित करता है, या जीवितार्थी होकर विषभक्षण करता है, ये सब उपमाएँ गुरुओं की आशातना के साथ (घटित होती हैं) कदाचित् वह अग्नि न जलाए, कुपित हुआ सर्प भी न डसे, वह हलाहल विष भी न मारे; किन्तु गुरु की अवहेलना से (कदापि) मोक्ष सम्भव नहीं है ।

[४२२-४२३] जो पर्वत को सिर से फोड़ना चाहता है, सोये हुए सिंह को जगाता है, या जो शक्ति की नोक पर प्रहार करता है, गुरुओं की आशातना करने वाला भी इनके तुल्य है । सम्भव है, कोई अपने सिर से पर्वत का भी भेदन कर दे, कुपित हुआ सिंह भी न खाए अथवा भाले की नोंक भी उसे भेदन न करे; किन्तु गुरु की अवहेलना से मोक्ष (कदापि) सम्भव नहीं है ।

[४२४] आचार्यप्रवर के अप्रसन्न होने पर बोधिलाभ नहीं होता तथा (उनकी) आशातना से मोक्ष नहीं मिलता । इसलिए निराबाध सुख चाहनेवाला साधु गुरु की प्रसन्नता के अभिमुख होकर प्रयत्नशील रहे ।

[४२५] जिस प्रकार आहिताग्नि ब्राह्मण नाना प्रकार की आहुतियों और मंत्रपदों से अभिषिक्त की हुई अग्नि को नमस्कार करता है, उसी प्रकार शिष्य अनन्तज्ञान-सम्पन्न हो जाने पर भी आचार्य की विनयपूर्वक सेवा-भक्ति करे ।

[४२६] जिसके पास धर्म-पदों का शिक्षण ले, हे शिष्य ! उसके प्रति विनय का प्रयोग करो । सिर से नमन करके, हाथों को जोड़ कर तथा काया, वाणी और मन से सदैव सत्कार करो ।

[४२७] कल्याणभागी (साधु) के लिए लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य; ये विशोधि के स्थान हैं । अतः जो गुरु मुझे निरन्तर शिक्षा देते हैं, उनकी मैं सतत पूजा करूँ ।

[४२८-४२९] जैसे रात्रि के अन्त में प्रदीप्त होता हुआ सूर्य सम्पूर्ण भारत को प्रकाशित करता है, वैसे ही आचार्य श्रुत, शील और प्रज्ञा से भावों को प्रकाशित करते हैं तथा जिस प्रकार देवों के बीच इन्द्र सुशोभित होता है, सुशोभित होते हैं । जैसे मेघों से मुक्त अत्यन्त निर्मल आकाश में कौमुदी के योग से युक्त, नक्षत्र और तारागण से परिवृत चन्द्रमा सुशोभित होता है, उसी प्रकार गणी (आचार्य) भी भिक्षुओं के बीच सुशोभित होते हैं ।

[४३०] अनुत्तर ज्ञानादि की सम्प्राप्ति का इच्छुक तथा धर्मकामी साधु (ज्ञानादि रत्नों के) महान् आकर, समाधियोग तथा श्रुत, शील, और प्रज्ञा से सम्पन्न महर्षि आचार्यों की आराधना करे तथा उनको विनयभक्ति से सदा प्रसन्न रखे ।

[४३१] मेधावी साधु (पूर्वोक्त) सुभाषित वचनों को सुनकर अप्रमत्त रहता हुआ आचार्य की शुश्रूषा करे । इस प्रकार वह अनेक गुणों की आराधना करके अनुत्तर सिद्धि प्राप्त करता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-९-उद्देशक-२

[४३२-४३३] वृक्ष के मूल से स्कन्ध उत्पन्न होता है, स्कन्ध से शाखाएँ शाखाओं से प्रशाखाएँ निकलती हैं । तदनन्तर पत्र, पुष्प, फल और रस उत्पन्न होता है । इसी प्रकार धर्म (-रूप वृक्ष) का मूल विनय है और उस का परम रसयुक्त फल मोक्ष है । उस (विनय) के द्वारा श्रमण कीर्ति, श्रुत और निःश्रेयस् प्राप्त करता है ।

[४३४] जो क्रोधी है, मृग-पशुसम अज्ञ, अहंकारी, दुर्वादी, कपटी और शठ है; वह अविनीतात्मा संसारस्रोत में वैसे ही प्रवाहित होता रहता है, जैसे जल के स्रोत में पड़ा हुआ काष्ठ ।

[४३५] (किसी भी) उपाय से विनय (-धर्म) में प्रेरित किया हुआ जो मनुष्य कुपित हो जाता है, वह आती हुई दिव्यलक्ष्मी को डंडे से रोकता (हटाता) है ।

[४३६-४४२] जो औपबाह्य हाथी और घोड़े अविनीत होते हैं, वे (सेवाकाल में) दुःख भोगते हुए तथा भार-वहन आदि निम्न कार्यों में जुटाये जाते हैं और जो हाथी और घोड़े सुविनीत होते हैं, वे सुख का अनुभव करते हुए महान् यश और ऋद्धि को प्राप्त करते हैं । इसी तरह इस लोक में जो नर-नारी अविनीत होते हैं, वे क्षत-विक्षत, इन्द्रियविकल, दण्ड और शस्त्र से जर्जरित, असभ्य वचनों से ताड़ित, करुण, पराधीन, भूख और प्यास से पीड़ित होकर दुःख का अनुभव करते हैं । और जो नर-नारी सुविनीत होते हैं, वे ऋद्धि को प्राप्त कर महायशस्वी बने हुए सुख का अनुभव करते हैं । इसी प्रकार जो देव, यक्ष और गुह्यक अविनीत होते हैं, वे पराधीनता-दासता को प्राप्त होकर दुःख भोगते हैं । और जो देव, यक्ष और गुह्यक सुविनीत होते हैं, वे ऋद्धि और महान् यश को प्राप्त कर सुख का अनुभव करते हैं ।

[४४३] जो साधक आचार्य और उपाध्याय की सेवा-शुश्रूषा करते हैं, उनके वचनों का पालन करते हैं, उनकी शिक्षा उसी प्रकार बढ़ती है, जिस प्रकार जल से सींचे हुए वृक्ष बढ़ते हैं ।

[४४४-४४७] जो गृहस्थ लोग इस लोक के निमित्त, सुखोपभोग के लिए, अपने या

दूसरों के लिए; शिल्पकलाएँ या नैपुण्यकलाएँ सीखते हैं । ललितेन्द्रिय व्यक्ति भी कला सीखते समय (शिक्षक द्वारा) घोर बन्ध, वध और दारुण परिताप को प्राप्त होते हैं । फिर भी वे गुरु के निर्देश के अनुसार चलने वाले उस शिल्प के लिए प्रसन्नतापूर्वक उस शिक्षकगुरु की पूजा, सत्कार व नमस्कार करते हैं । तब फिर जो साधु आगमज्ञान को पाने के लिए उद्यत है और अनन्त-हित का इच्छुक है, उसका तो कहना ही क्या ? इसलिए आचार्य जो भी कहें, भिक्षु उसका उल्लंघन न करे ।

[४४८-४४९] (साधु आचार्य से) नीची शय्या करे, नीची गति करे, नीचे स्थान में खड़ा रहे, नीचा आसन करे तथा नीचा होकर आचार्यश्री के चरणों में वन्दन और अंजलि करे। कदाचित् आचार्य के शरीर का अथवा उपकरणों का भी स्पर्श हो जाए तो कहे—मेरा अपराध क्षमा करें, फिर ऐसा नहीं होगा ।’

[४५०] जिस प्रकार दुष्ट बैल चाबुक से प्रेरित किये जाने पर (ही) रथ को वहन करता है, उसी प्रकार दुर्बुद्धि शिष्य (भी) आचार्यों के बार-बार कहने पर (कार्य) करता है ।

[४५१] गुरु के एक बार या बार-बार बुलाने पर बुद्धिमान् शिष्य आसन पर से ही उत्तर न दे, किन्तु आसन छोड़ कर शुश्रूषा के साथ उनकी बात सुन कर स्वीकार करे ।

[४५२] काल, गुरु के अभिप्राय, उपचारों तथा देश आदि को हेतुओं से भलीभांति जानकर तदनुकूल उपाय से उस-उस योग्य कार्य का सम्पादित करे ।

[४५३] अविनीत को विपत्ति और विनीत को सम्पत्ति (प्राप्त) होती है, जिसको ये दोनों प्रकार से ज्ञात है, वही शिक्षा को प्राप्त होता है ।

[४५४] जो मनुष्य चण्ड, अपनी बुद्धि और ऋद्धिका गर्वी, पिशुन, अयोग्यकार्य में साहसिक, गुरु-आज्ञा-पालन से हीन, श्रमण-धर्म से अदृष्ट, विनय में अनिपुण और असंविभागी है, उसे (कदापि) मोक्ष (प्राप्त) नहीं होता ।

[४५५] किन्तु जो गुरुओं की आज्ञा के अनुसार प्रवृत्ति करते हैं, जो गीतार्थ हैं तथा विनय में कोविद हैं; वे इस दुस्तर संसार-सागर को तैर कर कर्मों का क्षय करके सर्वोत्कृष्ट गति में गए हैं । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-९-उद्देशक-३

[४५६] जिस प्रकार आहिताग्नि अग्नि की शुश्रूषा करता हुआ जाग्रत रहता है; उसी प्रकार जो आचार्य की शुश्रूषा करता हुआ जाग्रत रहता है तथा जो आचार्य के आलोकित एवं इंगित को जान कर उनके अभिप्राय की आराधना करता है, वही पूज्य होता है ।

[४५७] जो (शिष्य) आचार के लिए विनय करता है, जो सुनने की इच्छा रखता हुआ (उनके) वचन को ग्रहण करके, उपदेश के अनुसार कार्य करना चाहता है और जो गुरु की आशातना नहीं करता, वह पूज्य होता है ।

[४५८] अल्पवयस्क होते हुए भी पर्याय में जो ज्येष्ठ हैं, उन स्नाथिकों के प्रति जो विनय करता है, नम्र रहता है, सत्यवादी है, गुरु सेवा में रहता है और गुरु के वचनों का पालन करता है, वह पूज्य होता है ।

[४५९] जो संयमयात्रा के निर्वाह के लिए सदा विशुद्ध, सामुदायिक, अज्ञात उज्ज



चर्या करता है, जो न मिलने पर विषाद नहीं करता और मिलने पर श्लाघा नहीं करता, वह पूजनीय है ।

[४६०] जो (साधु) संस्तारक, शय्या, आसन, भक्त और पानी का अतिलाभ होने पर भी अल्प इच्छा रखनेवाला है, इस प्रकार जो अपने को सन्तुष्ट रखता है तथा जो सन्तोष-प्रधान जीवन में रत है, वह पूज्य है ।

[४६१] मनुष्य लाभ की आशा से लोहे के कांटों को उत्साहपूर्वक सहता है किन्तु जो किसी लाभ की आशा के बिना कानों में प्रविष्ट होने वाले तीक्ष्ण वचनमय कांटों को सहन करता है, वही पूज्य होता है ।

[४६२] लोहमय कांटे केवल मुहूर्तभर दुःखदायी होते हैं; फिर वे भी से सुखपूर्वक निकाले जा सकते हैं । किन्तु वाणी से निकले हुए दुर्वचनरूपी कांटे कठिनता से निकाले जा सकनेवाले, वैर परम्परा बढ़ानेवाले और महाभयकारी होते हैं ।

[४६३] आते हुए कटुवचनों के आघात कानों में पहुँचते ही दौर्मनस्य उत्पन्न करते हैं; (परन्तु) जो वीर-पुरुषों का परम अग्रणी जितेन्द्रिय पुरुष 'यह मेरा धर्म है' ऐसा मान कर सहन कर लेता है, वही पूज्य होता है ।

[४६४] जो मुनि पीठ पीछे कदापि किसी का अवर्णवाद नहीं बोलता तथा प्रत्यक्ष में विरोधी भाषा एवं निश्चयकारिणी और अप्रियकारिणी भाषा नहीं बोलता, वह पूज्य होता है ।

[४६५] जो लोलुप नहीं होता, इन्द्रजालिक चमत्कार-प्रदर्शन नहीं करता, माया का सेवन नहीं करता, चुगली नहीं खाता, दीनवृत्ति नहीं करता, दूसरों से अपनी प्रशंसा नहीं करवाता और न स्वयं अपनी प्रशंसा करता है तथा जो कुतूहल नहीं करता, वह पूज्य है ।

[४६६] व्यक्ति गुणों से साधु होता है, अगुणों से असाधु । इसलिए साधु के योग्य गुणों को ग्रहण कर और असाधु-गुणों को छोड़ । आत्मा को आत्मा से जान कर जो राग-द्वेष में सम रहता है, वही पूज्य होता है ।

[४६७] इसी प्रकार अल्पवयस्क या वृद्ध को, स्त्री या पुरुष को, अथवा प्रव्रजित अथवा गृहस्थ को उसके दुश्चरित की याद दिला कर जो साधक न तो उसकी हीलना करता है और न ही झिड़कता है तथा जो अहंकार और क्रोध का त्याग करता है, वही पूज्य होता है ।

[४६८] (अभ्युत्थान आदि द्वारा) सम्मानित किये गए आचार्य उन साधकों को सतत सम्मानित करते हैं, जैसे—(पिता अपनी कन्याओं को) यत्नपूर्वक योग्य कुल में स्थापित करते हैं, वैसे ही (आचार्य अपने शिष्यों को सुपथ में) स्थापित करते हैं; उन सम्मानार्ह, तपस्वी, जितेन्द्रिय और सत्यपरायण आचार्यों का जो सम्मान करता है, वह पूज्य होता है ।

[४६९] जो मेधावी मुनि उन गुण-सागर गुरुओं के सुभाषित सुनकर, तदनुसार आचरण करता है; जो पंच महाव्रतों में रत, तीन गुणियों से गुप्त, चारों कषायों से रहित हो जाता है, वह पूज्य होता है ।

[४७०] जिन-(प्ररूपित) सिद्धान्त में निपुण, अभिगम में कुशल मुनि इस लोक में सतत गुरु की परिचर्या करके पूर्वकृत कर्म को क्षय कर भास्वर अतुल सिद्धि गति को प्राप्त करता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-९-उद्देशक-४**

[४७१-४७२] आयुष्मन् ! मैंने सुना है, उन भगवान् ने कहा है—स्थविर भगवन्तों ने विनयसमाधि के चार स्थानों बताये हैं—विनयसमाधि, श्रुतसमाधि, तपःसमाधि और आचारसमाधि । जो जितेन्द्रिय होते हैं, वे पण्डित अपनी आत्मा को इन चार स्थानों में निरत रखते हैं ।

[४७३-४७५] विनयसमाधि चार प्रकार की होती है । जैसे—अनुशासित किया हुआ (शिष्य) आचार्य के अनुशासन-वचनों को सुनना चाहता है; अनुशासन को सम्यक् प्रकार से स्वीकारता है; शास्त्र की आराधना करता है; और वह आत्म-प्रशंसक नहीं होता । इस (विषय) में श्लोक भी है—आत्मार्थी मुनि हितानुशासन सुनने की इच्छा करता है; शुश्रूषा करता है, उस के अनुकूल आचरण करता है; विनयसमाधि में (प्रवीण हूँ) ऐसे उन्माद से उन्मत्त नहीं होता ।

[४७६-४७८] श्रुतसमाधि चार प्रकार की होती है; जैसे कि—‘मुझे श्रुत प्राप्त होगा,’ ‘मैं एकाग्रचित्त हो जाऊँगा,’ मैं अपनी आत्मा को स्व-भाव में स्थापित करूँगा, एवं मैं दूसरों को (उसमें) स्थापित करूँगा, इन चारों कारणों से अध्ययन करना चाहिए । इस में एक श्लोक है—प्रतिदिन शास्त्राध्ययन के द्वारा ज्ञान होता है, चित्त एकाग्र हो जाता है, स्थिति होती है और दूसरों को स्थिर करता है तथा अनेक प्रकार के श्रुत का अध्ययन कर श्रुतसमाधि में रत हो जाता है ।

[४७९-४८०] तपःसमाधि चार प्रकार की होती है । यथा—इहलोक के, परलोक के, कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक के लिए, निर्जरा के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्देश्य से, चारों कारणों से तप नहीं करना चाहिए, सदैव विविध गुणों वाले तप में (जो साधक) रत रहता है, पौद्गलिक प्रतिफल की आशा नहीं रखता; कर्मनिर्जरार्थी होता है; वह तप के द्वारा पूर्वकृत कर्मों का क्षय कर डालता है और सदैव तपःसमाधि से युक्त रहता है ।

[४८१-४८२] आचारसमाधि चार प्रकार की है; इहलोक, परलोक, कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक, आर्हत हेतुओं के सिवाय अन्य किसी भी हेतु इन चारों को लेकर आचार का पालन नहीं करना चाहिए, यहाँ आचारसमाधि के विषय में एक श्लोक है—‘जो जिनवचन में रत होता है, जो क्रोध से नहीं भ्रान्नाता, जो ज्ञान से परिपूर्ण है और जो अतिशय मोक्षार्थी है, वह मन और इन्द्रियों का दमन करने वाला मुनि आचारसमाधि द्वारा संवृत होकर मोक्ष के अत्यन्त निकट करने वाला होता है ।

[४८३-४८४] परम-विशुद्धि और (संयम में) अपने को भलीभाँति सुसमाहित रखने वाला जो साधु है, वह चारों समाधियों को जान कर अपने लिए विपुल हितकर, सुखावह एवं कल्याण कर मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है । जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है, नरक आदि सब पर्यायों को सर्वथा त्याग देता है । या तो शाश्वत सिद्ध हो जाता है, अथवा महर्द्धिक देव होता है ।

**अध्ययन-९-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

**अध्ययन-१०-स भिक्षु**

[४८५] जो तीर्थकर भगवान् की आज्ञा से प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन में सदा

समाहितचित्त रहता है, स्त्रियों के वशीभूत नहीं होता, वमन किये हुए (विषयभोगों) को पुनः नहीं सेवन करता; वह भिक्षु होता है ।

[४८६] जो पृथ्वी को नहीं खोदता, नहीं खुदवाता, सचित्त जल नहीं पीता और न पिलाता है, अग्नि को न जलाता है और न जलवाता है, वह भिक्षु है ।

[४८७] जो वायुव्यंजक से हवा नहीं करता और न करवाता है, हरित का छेदन नहीं करता और न कराता है, बीजों का सदा विवर्जन करता हुआ सचित्त का आहार नहीं करता, वह भिक्षु है ।

[४८८] (भोजन बनाने में) पृथ्वी, तृण और काष्ठ में आश्रित रहे हुए त्रस और स्थावर जीवों का वध होता है । इसलिए जो औद्देशिक का उपभोग नहीं करता तथा जो स्वयं नहीं पकाता और न पकवाता है, वह भिक्षु है ।

[४८९] जो ज्ञातपुत्र (श्रमण भगवान् महावीर) के वचनों में रुचि (श्रद्धा) रख कर षट्कायिक जीवों (सर्वजीवों) को आत्मवत् मानता है, जो पांच महाव्रतों का पालन करता है, जो पांच (हिंसादि) आस्रवों का संवरण (निरोध) करता है, वह भिक्षु है ।

[४९०] जो चार कषायों का वमन करता है, तीर्थकरों के प्रवचनों में सदा ध्रुवयोगी रहता है, अधन है तथा सोने और चाँदी से स्वयं मुक्त है, गृहस्थों का योग नहीं करता, वही भिक्षु है ।

[४९१] जिसकी दृष्टि सम्यक् है, जो सदा अमूढ है, ज्ञान, तप और संयम में आस्थावान् है तथा तपस्या से पुराने पाप कर्मों को नष्ट करता है और मन-वचन-काया से सुसंवृत है, वही भिक्षु है ।

[४९२] पूर्वोक्त एषणाविधि से विविध अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को प्राप्त कर— 'यह कल या परसों काम आएगा,' इस विचार से जो संचित न करता है और न कराता है, वह भिक्षु है ।

[४९३] पूर्वोक्त प्रकार से विविध अशन आदि आहार को पाकर जो अपने साधर्मिक साधुओं को निमन्त्रित करके खाता है तथा भोजन करके स्वाध्याय में रत रहता है, वही भिक्षु है ।

[४९४] जो कलह उत्पन्न करने वाली कथा नहीं करता और न कोप करता है, जिसकी इन्द्रियां निभृत रहती हैं, प्रशान्त रहता है । संयम में ध्रुवयोगी है, उपशान्त रहता है और जो उचित कार्य का अनादर नहीं करता, वही भिक्षु है ।

[४९५] जो कांटे के समान चुभने वाले आक्रोश-वचनों, प्रहारों, तर्जनाओं और अतीव भयोत्पादक अट्टहासों को तथा सुख-दुःख को समभावपूर्वक सहन करता है; वही भिक्षु है ।

[४९६] जो श्मशान में प्रतिमा अंगीकार करके (वहाँ के) अतिभयोत्पादक दृश्यों को देख कर भयभीत नहीं होता, विविध गुणों एवं तप में रत रहता है, शरीर की भी आकांक्षा नहीं करता, वही भिक्षु है ।

[४९७] जो मुनि बार-बार देह का व्युत्सर्ग और (ममत्व) त्याग करता है, किसी के द्वारा आक्रोश किये जाने, पीटे जाने अथवा क्षत-विक्षत किये जाने पर भी पृथ्वी के समान



क्षमाशील रहता है, निदान नहीं करता तथा कौतुक नहीं करता, वही भिक्षु है ।

[४९८] जो अपने शरीर से परीषहों को जीत कर जातिपथ से अपना उद्धार कर लेता है, जन्ममरण को महाभय जान पर श्रमणवृत्ति के योग्य तपश्चर्या में रत रहता है, वही भिक्षु है ।

[४९९] जो हाथों, पैरों, वाणी और इन्द्रियों से संयत है, अध्यात्म में रत है, जिसकी आत्मा सम्यक् रूप से समाधिस्थ है और जो सूत्र तथा अर्थ को विशेष रूप से जानता है; वह भिक्षु है ।

[५००] जो उपधि में मूर्च्छित नहीं है, अगृद्ध है, अज्ञात कुलों से भिक्षा की एषणा करता है, संयम को निस्सार कर देने वाले दोषों से रहित है; क्रय-विक्रय और सन्निधि से रहित है तथा सब संगों से मुक्त है, वही भिक्षु है ।

[५०१] जो भिक्षु लोलुपता-रहित है, रसों में गृद्ध नहीं है, अज्ञात कुलों में भिक्षाचरी करता है, असंयमी जीवन की आकांक्षा नहीं करता, ऋद्धि, सत्कार और पूजा का त्याग करता है, जो स्थितात्मा है और छल से रहित है, वही भिक्षु है ।

[५०२] 'प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य-पाप पृथक्-पृथक् होते हैं,' ऐसा जानकर, जो दूसरों को (यह) नहीं कहता कि 'यह कुशील है ।' तथा दूसरा कुपित हो, ऐसी बात भी नहीं कहता और जो अपनी आत्मा को सर्वोत्कृष्ट मानकर अहंकार नहीं करता, वह भिक्षु है ।

[५०३] जो जाति, रूप, लाभ और श्रुत का मद नहीं करता है; उनको त्यागकर धर्मध्यान में रत रहता है, वही भिक्षु है ।

[५०४] जो महामुनि शुद्ध धर्म-का उपदेश करता है, स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरे को भी धर्म में स्थापित करता है, प्रव्रजित होकर कुशील को छोड़ता है तथा हास्योत्पादक कुतुहलपूर्ण चेष्टाएँ नहीं करता, वह भिक्षु है ।

[५०५] अपनी आत्मा को सदा शाश्वत हित में सुस्थित रखने वाला पूर्वोक्त भिक्षु इस अशुचि और अशाश्वत देहवास को सदा के लिए छोड़ देता है तथा जन्म-मरण के बन्धन को छेदन कर सिद्धगति को प्राप्त कर लेता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-१०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### चूलिका-१-रतिवाक्य

[५०६] इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन में जो प्रव्रजित हुआ है, किन्तु कदाचित् दुःख उत्पन्न हो जाने से संयम में उसका चित्त अरतियुक्त हो गया । अतः वह संयम का परित्याग कर जाना चाहता है, किन्तु संयम त्यागा नहीं है, उससे पूर्व इन अठारह स्थानों का सम्यक् प्रकार से आलोचन करना चाहिए । ये अठारह स्थान अश्व के लिए लगाम, हाथी के लिए अंकुश और पोत के लिए पताका समान हैं । जैसे—ओह ! दुष्पमा आरे में जीवन दुःखमय है । गृहस्थों के कामभोग असार एवं अल्पकालिक हैं । मनुष्य प्रायः कपटबहुल हैं । मेरा यह दुःख चिरकाल नहीं होगा । गृहवास में नीच जनों का पुरस्कार-सत्कार (करना पड़ेगा ।) पुनः गृहस्थवास में जाने का अर्थ है- वमन किए हुए का वापिस पीना । नीच गतियों में निवास को स्वीकार करना । अहो ! गृहवास में गृहस्थों के लिए शुद्ध धर्म निश्चय ही दुर्लभ है । वहाँ आतंक

उसके वध का कारण होता है । वहाँ संकल्प वध के लिए होता है । गृहवास क्लेश-युक्त है, मुनिपर्याय क्लेशरहित है । गृहवास बन्ध है, श्रमणपर्याय मोक्ष है । गृहवास सावध है, मुनिपर्याय अनवध है । गृहस्थों के कामभोग बहुजन-साधारण हैं । प्रत्येक के पुण्य और पाप अपने-अपने हैं । मनुष्यों का जीवन कुश के अग्र भाग पर स्थित जलबिन्दु के समान चंचल है, निश्चय ही अनित्य है । मैंने पूर्व बहुत ही पापकर्म किये हैं । दुष्ट भावों से आचरित तथा दुष्पराक्रम से अर्जित पूर्वकृत पापकर्मों का फल भोग लेने पर ही मोक्ष होता है, अथवा तप के द्वारा क्षय करने पर ही मोक्ष होता है ।

[५०७-५०८] इस विषय में कुछ श्लोक हैं—जब अनार्य (साधु) भोगों के लिए (चारित्र-) धर्म को छोड़ता है, तब वह भोगों में मूर्च्छित बना हुआ अज्ञ अपने भविष्य को सम्यक्तया नहीं समझता । वह सभी धर्मों में परिभ्रष्ट हो कर वैसे ही पश्चात्ताप करता है, जैसे आयु पूर्ण होने पर देवलोक के वैभव से च्युत हो कर पृथ्वी पर पड़ा हुआ इन्द्र ।

[५०९-५११] जब (साधु प्रव्रजित अवस्था में होता है, तब) वन्दनीय होता है, वही पश्चात् अवन्दनीय हो जाता है, तब वह उसी प्रकार पश्चात्ताप करता है, जिस प्रकार अपने स्थान से च्युत देवता । पहले पूज्य होता है, वही पश्चात् अपूज्य हो जाता है, तब वह वैसे ही परिताप करता है, जैसे राज्य से भ्रष्ट राजा । पहले माननीय होता है, वही पश्चात् अमाननीय हो जाता है, तब वह वैसे ही पश्चात्ताप करता है, जैसे कर्बट में अवरुद्ध सेठ ।

[५१२-५१४] उत्प्रव्रजित व्यक्ति यौवनवय के व्यतीत हो जाने पर जब वृद्ध होता है, तब वैसे ही पश्चात्ताप करता है, जैसे कांटे को निगलने के पश्चात् मत्स्य । दुष्ट कुटुम्ब की कुत्सित चिन्ताओं से प्रतिहत होता है, तब वह वैसे ही परिताप करता है, जैसे बन्धन में बद्ध हाथी । पुत्र और स्त्री से घिरा हुआ और मोह की परम्परा से व्याप्त वह पंक में फंसे हुए हाथी के समान परिताप करता है ।

[५१५] यदि मैं भावितात्मा और बहुश्रुत होकर जिनोपदिष्ट श्रामण्य-पर्याय में रमण करता तो आज मैं गणी (आचार्य) होता ।

[५१६-५१७] (संयम में) रत महर्षियों के लिए मुनि-पर्याय देवलोक समान और जो संयम में रत नहीं होते, उनके लिए महानरक समान होता है । इसलिए मुनिपर्याय में रत रहनेवालों का सुख देवों समान उत्तम जान कर तथा नहीं रहनेवालों का दुःख नरक समान तीव्र जान कर पण्डितमुनि मुनिपर्याय में ही रमण करे ।

[५१८] जिसकी दाढ़ें निकाल दी गई हों, उस घोर विषधर की साधारण अज्ञ जन भी अवहेलना करते हैं, वैसे ही धर्म से भ्रष्ट, श्रामण्य रूपी ल७मी से रहित, बुझी हुई यज्ञाग्नि के समान निस्तेज और दुर्विहित साधु की कुशील लोग भी निन्दा करते हैं ।

[५१९] धर्म से च्युत, अधर्मसेवी और चारित्र को भंग करने वाला इसी लोक में अधर्मी कहलाता है, उसका अपयश और अपकीर्ति होती है, साधारण लोगों में भी वह दुर्नाम हो जाता है और अन्त में उसकी अधोगति होती है ।

[५२०] वह संयम-भ्रष्ट साधु आवेशपूर्ण चित्त से भोगों को भोग कर एवं तथाविध बहुत-से असंयम का सेवन करके दुःखपूर्ण अनिष्ट गति में जाता है और उसे बोधि सुलभ नहीं होती ।

[५२१] दुःख से युक्त और क्लेशमय मनोवृत्ति वाले इस जीव की पल्योपम और सागरोपम आयु भी समाप्त हो जाती है, तो फिर हे जीव ! मेरा यह मनोदुःख तो है ही क्या ?

[५२२] 'मेरा यह दुःख चिरकाल तक नहीं रहेगा, जीवों की भोग-पिपासा अशाश्वत है । यदि वह इस शरीर से न मिटी, तो मेरे जीवन के अन्त में तो वह अवश्य मिट जाएगी ।

[५२३] जिसकी आत्मा इस प्रकार से निश्चित होती है । वह शरीर को तो छोड़ सकता है, किन्तु धर्मशासन को छोड़ नहीं सकता । ऐसे दृढ़प्रतिज्ञ साधु को इन्द्रियां उसी प्रकार विचलित नहीं कर सकतीं, जिस प्रकार वेगपूर्ण गति से आता हुआ वायु सुदर्शन-गिरि को ।

[५२४] बुद्धिमान् मनुष्य इस प्रकार सम्यक् विचार कर तथा विविध प्रकार के लाभ और उनके उपायों को विशेष रूप से जान कर तीन गुणियों से गुप्त होकर जिनवचन का आश्रय ले । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

चूलिका-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### चूलिका-२-विविक्तचर्या

[५२५] मैं उस चूलिका को कहूँगा, जो श्रुत है, केवली-भाषित है, जिसे सुन कर पुण्यशाली जीवों की धर्म में मति उत्पन्न होती है ।

[५२६-५२८] (नदी के जलप्रवाह में गिर कर समुद्र की ओर बहते हुए काष्ठ के समान) बहुत-से लोग अनुस्रोत संसार-समुद्र की ओर प्रस्थान कर रहे हैं, किन्तु जो मुक्त होना चाहता है, जिसे प्रतिस्रोत होकर संयम के प्रवाह में गति करने का लक्ष्य प्राप्त है, उसे अपनी आत्मा को प्रतिस्रोत की ओर ले जाना चाहिए । अनुस्रोत संसार है और प्रतिस्रोत उसका उत्तार है । साधारण संसारीजन को अनुस्रोत चलने में सुख की अनुभूति होती है, किन्तु सुविहित साधुओं के लिए आश्रव प्रतिस्रोत होता है । इसलिए आचार (-पालन) में पराक्रम करके तथा संवर मे प्रचुर समाधियुक्त हो कर, साधुओं को अपनी चर्या, गुणों तथा नियमों की ओर दृष्टिपात करना चाहिए ।

[५२९] अनियतवास, समुदान-चर्या, अज्ञातकुलों से भिक्षा-ग्रहण, एकान्त स्थान में निवास, अल्प-उपधि और कलह-विवर्जन; यह विहारचर्या ऋषियों के लिए प्रशस्त है ।

[५३०] आकीर्ण और अवमान नामक भोज का विवर्जन एवं प्रायः दृष्टस्थान से लाए हुए भक्त-पान का ग्रहण, (ऋषियों के लिए प्रशस्त है ।) भिक्षु संसृष्टकल्प से ही भिक्षाचर्या करें ।

[५३१] साधु मद्य और मांस का अभोजी हो, अमत्सरी हो, बार-बार विगयों को सेवन न करनेवाला हो, बार-बार कायोत्सर्ग करनेवाला और स्वाध्याय के योगो में प्रयत्नशील हो ।

[५३२] यह शयन, आसन, शय्या, निषद्या तथा भक्त-पान आदि (जब मैं लौट कर आऊँ, तब मुझे ही देना ऐसी प्रतिज्ञा न दिलाए । किसी ग्राम, नगर, कुल, देश पर या किसी भी स्थान पर ममत्वभाव न करे ।

[५३३] मुनि गृहस्थ का वैयावृत्य न करे गृहस्थ का अभिवादन, वन्दन और पूजन भी न करे । मुनि संक्लेशरहित साधुओं के साथ रहे, जिससे गुणों की हानि न हो ।

[५३४] कदाचित् गुणों में अधिक अथवा गुणों में समान निपुण सहायक साधु न



मिले तो पापकर्मों को वर्जित करता हुआ, कामभोगों में अनासक्त रहकर अकेला ही विहार करे।

[५३५] वर्षाकाल में चार मास और अन्य ऋतुओं में एक मास रहने का उत्कृष्ट प्रमाण है। वहीं दूसरे वर्ष नहीं रहना चाहिए। सूत्र का अर्थ जिस प्रकार आज्ञा दे, भिक्षु उसी प्रकार सूत्र के मार्ग से चले।

[५३६-५३७] जो साधु रात्रि के प्रथम प्रहर और पिछले प्रहर में अपनी आत्मा का अपनी आत्मा द्वारा सम्प्रेक्षण करता है कि—मैंने क्या किया है? मेरे लिए क्या कृत्य शेष रहा है? वह कौन-सा कार्य है, जो मेरे द्वारा शक्य है, किन्तु मैं नहीं कर रहा हूँ? क्या मेरी स्वलना को दूसरा कोई देखता है? अथवा क्या अपनी भूल को मैं स्वयं देखता हूँ? अथवा कौन-सी स्वलना मैं नहीं त्याग रहा हूँ? इस प्रकार आत्मा का सम्यक् अनुप्रेक्षण करता हुआ मुनि अनागत में प्रतिबन्ध न करे।

[५३८] जिस क्रिया में भी तन से, वाणी से अथवा मन से (अपने को) दुष्प्रयुक्त देखे, वहीं (उसी क्रिया में) धीर सम्भल जाए, जैसे जातिमान् अश्व लगाम खींचते ही शीघ्र संभल जाता है।

[५३९] जिस जितेन्द्रिय, धृतिमान् सत्पुरुष के योग सदा इस प्रकार के रहते हैं, उसे लोक में प्रतिबुद्धजीवी कहते हैं। वही वास्तव में संयमी जीवन जीता है।

[५४०] समस्त इन्द्रियों को सुसमाहित करके आत्मा की सतत रक्षा करनी चाहिए, अरक्षित आत्मा जातिपथ को प्राप्त होता है और सुरक्षित आत्मा सब दुःखों से मुक्त हो जाता है।—ऐसा मैं कहता हूँ।

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

४३

उत्तराध्ययन

मूलसूत्र-४-हिन्दी अनुवाद

अध्ययन-१-विनयश्रुत

[१] जो सांसारिक संयोगों से मुक्त है, अनगार है, भिक्षु है, उसके विनय धर्म का अनुक्रम से निरूपण करूँगा, उसे ध्यानपूर्वक मुझसे सुनो ।

[२] जो गुरु की आज्ञा का पालन करता है, गुरु के सान्निध्य में रहता है, गुरु के इंगित एवं आकार-को जानता है, वह 'विनीत' है ।

[३] जो गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता है, गुरु के सान्निध्य में नहीं रहता है, गुरु के प्रतिकूल आचरण करता है, असंबुद्ध है—वह 'अविनीत' है ।

[४] जिस प्रकार सड़े कान की कुतिया घृणा के साथ सभी स्थानों से निकाल दी जाती है, उसी प्रकार गुरु के प्रतिकूल आचरण करने वाला दुःशील वाचाल शिष्य भी सर्वत्र अपमानित करके निकाला जाता है ।

[५] जिस प्रकार सूअर चावलों की भूसी को छोड़कर विष्टा खाता है, उसी प्रकार पशुबुद्धि शिष्य शील छोड़कर दुःशील में रमण करता है ।

[६] अपना हित चाहने वाला भिक्षु, सड़े कान वाली कुतिया और विष्टाभोजी सूअर के समान, दुःशील से होनेवाले मनुष्य की हीनस्थिति को समझ कर विनय धर्म में अपने को स्थापित करे ।

[७] इसलिए विनय का आचरण करना जिससे कि शील की प्राप्ति हो । जो बुद्ध-पुत्र है—वह कहीं से भी निकाला नहीं जाता ।

[८] शिष्य गुरुजनों के निकट सदैव प्रशान्त भाव से रहे, वाचाल न बने । अर्थपूर्ण पदों को सीखे । निरर्थक बातों को छोड़ दे ।

[९] गुरु के द्वारा अनुशासित होने पर समझदार शिष्य क्रोध न करे, क्षमा की आराधना करे— । क्षुद्र व्यक्तियों के सम्पर्क से दूर रहे, उनके साथ हंसी, मजाक और अन्य कोई क्रीड़ा भी न करे ।

[१०] शिष्य आवेश में आकर कोई चाण्डालिक कर्म न करे, बकवास न करे । अध्ययन काल में अध्ययन करे और उसके बाद एकाकी ध्यान करे ।

[११] आवेश-वश यदि शिष्य कोई चाण्डालिक व्यवहार कर भी ले तो उसे कभी भी न छिपाए । किया हो तो 'किया' और न किया हो तो 'नहीं किया' कहे ।

[१२] जैसे कि गलिताश्व-को बार-बार चाबुक की जरूरत होती है, वैसे शिष्य गुरु के बार-बार आदेश-वचनों की अपेक्षा न करे । किन्तु जैसे आकीर्ण अश्व चाबुक को देखते ही उन्मार्ग को छोड़ देता है, वैसे योग्य शिष्य गुरु के संकेतमात्र से पापकर्म छोड़ दे ।

[१३] आज्ञा में न रहने वाले, विना विचारे बोलने वाले दुष्ट शिष्य, मृदु स्वभाव वाले

गुरु को भी क्रुद्ध बना देते हैं । और गुरु के मनोनुकूल चलनेवाले एवं पटुता से कार्य करनेवाले शिष्य शीघ्र ही कुपित होनेवाले दुराश्रय गुरु को भी प्रसन्न कर लेते हैं ।

[१४] बिना पूछे कुछ भी न बोले, पूछने पर भी असत्य न कहे । यदि कभी क्रोध आ जाए तो उसे निष्फल करे—आचार्य की प्रिय और अप्रिय दोनों ही शिक्षाओं को धारण करे।

[१५] स्वयं पर ही विजय प्राप्त करना । स्वयं पर विजय प्राप्त करना ही कठिन है। आत्म-विजेता ही इस लोक और परलोक में सुखी होता है ।

[१६] शिष्य विचार करे—‘अच्छा है कि मैं स्वयं ही संयम और तप के द्वारा स्वयं पर विजय प्राप्त करूं । बन्धन और बध के द्वारा दूसरों से मैं दमित किया जाऊं, यह अच्छा नहीं है ।’

[१७] लोगों के समक्ष अथवा अकेले में वाणी से अथवा कर्म से, कभी भी आचार्यों के प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए ।

[१८] अर्थात् आचार्यों के बराबर या आगे न बैठे, न पीठ के पीछे ही सटकर बैठे, गुरु के अति निकट जांघ से जांघ सटाकर न बैठे । बिछौने पर बैठे-बैठे ही गुरु के कथित आदेश का स्वीकृतिरूप उत्तर न दे ।

[१९] गुरु के समक्ष पलथी लगाकर न बैठे, दोनों हाथों से शरीर को बांधकर न बैठे तथा पैरों को फैलाकर भी न बैठे ।

[२०] गुरु के प्रासाद को चाहने वाला मोक्षार्थी शिष्य, आचार्यों के द्वारा बुलाये जाने पर किसी भी स्थिति में मौन न रहे, किन्तु निरन्तर उनकी सेवा में उपस्थित रहे ।

[२१] गुरु के द्वारा बुलाए जाने पर बुद्धिमान् शिष्य कभी बैठा न रहे, किन्तु आसन छोड़कर उनके आदेश को यत्नपूर्वक स्वीकार करे ।

[२२] आसन अथवा शय्या पर बैठा-बैठा कभी भी गुरु से कोई बात न पूछे, किन्तु उनके समीप आकर, उकड़ू आसन से बैठकर और हाथ जोड़कर पूछे ।

[२३] विनयी शिष्य के द्वारा इस प्रकार विनीत स्वभाव से पूछने पर गुरु सूत्र, अर्थ और तदुभय-दोनों का यथाश्रुत निरूपण करे ।

[२४] भिक्षु असत्य का परिहार करे, निश्चयात्मक भाषा न बोले । भाषा के अन्य परिहास एवं संशय आदि दोषों को भी छोड़े । माया का सदा परित्याग करे ।

[२५] किसी कं पूछने पर भी अपने, दूसरों के अथवा दोनों के लिए सावध भाषा न बोले, निरर्थक न बोले, मर्म-भेदक वचन न कहे ।

[२६] लुहार की शाला, घरों, घरों की बीच की संधियों और राजमार्ग में अकेला मुनि अकेली स्त्री के साथ खड़ा न रहे, न बात करे ।

[२७] ‘प्रिय अथवा कठोर शब्दों से आचार्य मुझ पर जो अनुशासन करते हैं, वह मेरे लाभ के लिए है’—ऐसा विचार कर प्रयत्नपूर्वक उनका अनुशासन स्वीकार करे ।

[२८] आचार्य का प्रसंगोचित कोमल या कठोर अनुशासन दुष्कृत का निवारक है । उस अनुशासन को बुद्धिमान शिष्य हितकर मानता है । असाधु के लिए वही अनुशासन द्वेष का कारण बनता है ।



[२९] भयमुक्त, मेधावी प्रबुद्ध शिष्य गुरु के कठोर अनुशासन को भी हितकर मानते हैं । किन्तु वही क्षमा एवं चित्तविशुद्धि करनेवाला गुरु का अनुशासन मूर्खों के लिए द्वेष का निमित्त होता है ।

[३०] शिष्य ऐसे आसन पर बैठे, जो गुरु के आसन से नीचा हो, जिस से कोई आवाज़ न निकलती हो, स्थिर हो । आसन से बार-बार न उठे । प्रयोजन होने पर भी कम ही उठे, स्थिर एवं शान्त होकर बैठे ।

[३१] भिक्षु समय पर भिक्षा के लिए निकले और समय पर लौटे । असमय में कोई कार्य न करे । समय पर ही सब कार्य करे ।

[३२] भिक्षा के लिए गया हुआ भिक्षु, खाने के लिए उपविष्ट लोगों की पंक्ति में न खड़ा रहे । मुनि की मर्यादा के अनुरूप एषणा करके गृहस्थ के द्वारा दिया हुआ आहार स्वीकार करे और शास्त्रोक्त काल में आवश्यकतापूर्तिमात्र परिमित भोजन करे ।

[३३] यदि पहले से ही अन्य भिक्षु गृहस्थ के द्वार पर खड़े हों तो उनसे अतिदूर या अतिसमीप खड़ा न रहे और न देने वाले गृहस्थों की दृष्टि के सामने ही रहे, किन्तु एकान्त में अकेला खड़ा रहे । उपस्थित भिक्षुओं को लांघ कर घर में भोजन लेने को न जाए ।

[३४] संयमी मुनि प्रासुक और परकृत आहार ले, किन्तु बहुत ऊँचे या नीचे स्थान से लाया हुआ तथा अति समीप या अति दूर से दिया जाता हुआ आहार न ले ।

[३५] संयमी मुनि प्राणी और बीजों से रहित, ऊपर से ढके हुए और दीवार आदि से संवृत मकान में अपने सहधर्मी साधुओं के साथ भूमि पर न गिराता हुआ विवेकपूर्वक आहार करे ।

[३६] आहार करते समय मुनि, भोज्य पदार्थों के सम्बन्ध में-अच्छा किया है, अच्छा पकाया है, अच्छा काटा है, अच्छा हुआ है, अच्छा प्रासुक हो गया है, अथवा घृतादि अच्छा भरा है-अच्छा रस उत्पन्न हो गया है, बहुत ही सुन्दर हैं-इस प्रकार के सावध-वचनों का प्रयोग न करे ।

[३७] मेधावी शिष्य को शिक्षा देते हुए आचार्य जैसे ही प्रसन्न होते हैं, जैसे कि वाहक अच्छे घोड़े को हाँकता हुआ प्रसन्न रहता है । अबोध शिष्य को शिक्षा देते हुए गुरु जैसे ही खिन्न होता है, जैसे कि दुष्ट घोड़े को हाँकता हुआ उसका वाहक !

[३८] गुरु के कल्याणकारी अनुशासन को पापदृष्टिवाला शिष्य ठोकर और चांटा मारने, गाली देने और प्रहार करने के समान कष्टकारक समझता है ।

[३९] 'गुरु मुझे पुत्र, भाई और स्वजन की तरह आत्मीय समझकर शिक्षा देते हैं'-ऐसा सोचकर विनीत शिष्य उनके अनुशासन को कल्याणकारी मानता है । परन्तु पापदृष्टिवाला कुशिष्य हितानुशासन से शासित होने पर अपने को दास समान समझता है ।

[४०] शिष्य न तो आचार्य को कुपित करे और न कठोर अनुशासनादि से स्वयं कुपित हो । आचार्य का उपघात करनेवाला न हो और न गुरु का छिद्रान्वेषी हो ।

[४१] अपने किसी अभद्र व्यवहार से आचार्य को अप्रसन्न हुआ जाने तो विनीत शिष्य प्रीतिवचनों से प्रसन्न करे । हाथ जोड़ कर शान्त करे और कहे कि "मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा ।"

[४२] जो व्यवहार धर्म से अर्जित है, और प्रबुद्ध आचार्यों के द्वारा आचरित है, उस व्यवहार को आचरण में लाने वाला मुनि कभी निन्दित नहीं होता है ।

[४३] शिष्य आचार्य के मनोगत और वाणीगत भावों को जान कर उन्हें सर्वप्रथम वाणी से ग्रहण करे और फिर कार्य में परिणत करे ।

[४४] विनयी शिष्य गुरु द्वारा प्रेरित न किए जाने पर भी कार्य करने के लिए सदा प्रस्तुत रहता है । प्रेरणा होने पर तत्काल यथोपदिष्ट कार्य अच्छी तरह सम्पन्न करता है ।

[४५] विनय के स्वरूप को जानकर जो मेधावी शिष्य विनम्र हो जाता है, उसकी लोक में कीर्ति होती है । प्राणियों के लिए पृथ्वी के आधार समान योग्य शिष्य समय पर धर्माचरण करनेवालों का आधार बनता है ।

[४६] शिक्षण काल से पूर्व ही शिष्य के विनय-भाव से परिचित, संबुद्ध, पूज्य आचार्य उस पर प्रसन्न रहते हैं । प्रसन्न होकर वे उसे अर्थगंभीर विपुल श्रुतज्ञान का लाभ करवाते हैं ।

[४७] वह शिष्य पूज्यशास्त्र होता है—उसके सारे संशय मिट जाते हैं । वह गुरु के मन को प्रिय होता है । वह कर्मसम्पदा युक्त होता है । तप समाचारी और समाधि सम्पन्न होता है । पांच महाव्रतों का पालन करके वह महान् तेजस्वी होता है ।

[४८] वह देव, गन्धर्व और मनुष्यों से पूजित विनयी शिष्य मल पंक से निर्मित इस देह को त्याग कर शाश्वत सिद्ध होता है अथवा अल्प कर्म वाला महान् ऋद्धिसम्पन्न देव होता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-१०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-२-परीषहविभक्ति

[४९] आयुष्मन् ! भगवान् ने कहा है—श्रमण जीवन में बाईस परीषह होते हैं, जो कश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा प्रवेदित हैं, जिन्हें सुनकर, जानकर, परिचित कर, पराजित कर, भिक्षाचर्या के लिए पर्यटन करता हुआ मुनि, परीषहों से स्पृष्ट—होने पर विचलित नहीं होता । वे बाईस परीषह कौन से हैं ? वे बाईस परीषह इस प्रकार हैं—क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंश-मशक, अचेल, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण-स्पर्श, जल्ल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और दर्शन परीषह ।

[५०] कश्यप-गोत्रीय भगवान् महावीर ने परीषहों के जो भेद बताए हैं, उन्हें मैं तुम्हें कहता हूँ । मुझसे तुम अनुक्रम से सुनो ।

[५१-५२] बहुत भूख लगने पर भी मनोबल से युक्त तपस्वी भिक्षु फल आदि का न स्वयं छेदन करे, न कराए, उन्हें न स्वयं पकाए और न पकवाए । लंबी भूख के कारण काकजंघा के समान शरीर दुर्बल हो जाए, कृश हो जाए, धमनियाँ स्पष्ट नजर आने लगें, तो भी अशन एवं पानरूप आहार की मात्रा को जानने वाला भिक्षु अदीनभाव से विचरण करे ।

[५३-५४] असंयम से अरुचि रखनेवाला, लज्जावान् संयमी भिक्षु प्यास से पीड़ित होने पर भी सचित्त जल का सेवन न करे, किन्तु अचित्त जल की खोज करे । यातायात से शून्य एकांत निर्जन मार्गों में भी तीव्र प्यास से आतुर—होने पर, मुँह के सूख जाने पर भी मुनि

अदीनभाव से प्यास को सहन करे ।

[५५-५६] विरक्त और अनासक्त होकर विचरण करते हुए मुनि को शीतकाल में शीत का कष्ट होता है है, फिर भी आत्मजयी जिन-शासन को समझकर स्वाध्यायादि के प्राप्त काल का उल्लंघन न करे । शीत लगने पर मुनि ऐसा न सोचे कि “मेरे पास शीत-निवारण के योग्य साधन नहीं है । शरीर को ठण्ड से बचाने के लिए छवित्राण-वस्त्र भी नहीं हैं, तो मैं क्यों न अग्नि का सेवन कर लूँ ।”

[५७-५८] गरम भूमि, शिला एवं लू आदि के परिताप से, प्यास की दाह से, ग्रीष्मकालीन सूर्य के परिताप से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी मुनि सात के लिए आकुलता न करे । स्नान को इच्छा न करे । जल से शरीर को सिंचित न करे, पंखे आदि से हवा न करे ।

[५९-६०] महामुनि डांस तथा मच्छरों का उपद्रव होने पर भी समभाव रखे । जैसे युद्ध के मोर्चे पर हाथी बाणों की परवाह न करता हुआ शत्रुओं का हनन करता है, वैसे मुनि परीषहों की परवाह न करते हुए रोग-द्वेष रूपी अन्तरंग शत्रुओं का हनन करे । दंशमशक परीषह का विजेता साधक दंश-मशकों से संत्रस्त न हो, उन्हें हटाए नहीं । उनके प्रति मन में भी द्वेष न लाए । मांस काटने तथा रक्त पीने पर भी उपेक्षा भाव रखे, उनको मारे नहीं ।

[६१-६२] “वस्त्रों के अति जीर्ण हो जाने से अब मैं अचेलक हो जाऊंगा । अथवा नए वस्त्र मिलने पर मैं फिर सचेलक हो जाऊंगा”—मुनि ऐसा न सोचे । “विभिन्न एवं विशिष्ट परिस्थितियों के कारण मुनि कभी अचेलक होता है, कभी सचेलक । दोनों ही स्थितियां संयम धर्म के लिए हितकारी हैं”—ऐसा समझकर मुनि खेद न करे ।

[६३-६४] गांव से गांव विचरण करते हुए अकिंचन अनगर के मन में यदि कभी संयम के प्रति अरति-अरुचि, उत्पन्न हो जाए तो उस परीषह को सहन करे । विषयासक्ति से विरक्त रहनेवाला, आत्मभाव की रक्षा करनेवाला, धर्म में रमण करनेवाला, आरम्भ-प्रवृत्ति से दूर रहनेवाला निरारम्भ मुनि अरति का परित्याग कर उपशान्त भाव से विचरण करे ।

[६५-६६] ‘लोक में जो स्त्रियाँ हैं, वे पुरुषों के लिए बंधन हैं’—ऐसा जो जानता है, उसका श्रामण्य-सुकृत होता है । ‘ब्रह्मचारी के लिए स्त्रियाँ पंक-समान हैं’—मेधावी मुनि इस बात को समझकर किसी भी तरह संयमी जीवन का विनिघात न होने दे, किन्तु आत्मस्वरूप की खोज करते ।

[६७-६८] शुद्ध चर्या से प्रशंसित मुनि एकाकी ही परीषहों को पराजित कर गाँव, नगर, निगम अथवा राजधानी में विचरण करे । भिक्षु गृहस्थादि से असमान होकर विहार करे, परिग्रह सिंचित न करे, गृहस्थों में निर्लिप्त रहे । सर्वत्र अनिकेत भाव से मुक्त होकर परिभ्रमण करे ।

[६९-७०] श्मशान में, सूने घर में और वृक्ष के मूल में एकाकी मुनि अचपल भाव से बैठे । आसपास के अन्य किसी प्राणी को कष्ट न दे । उक्त स्थानों में बैठे हुए यदि उपसर्ग आ जाए तो उसे समभाव से धारण करे । अनिष्ट की शंका से भयभीत होकर वहाँ से उठकर अन्य स्थान पर न जाए ।

[७१-७२] ऊंची-नीची शय्या (उपाश्रय) के कारण तपस्वी एवं सक्षम भिक्षु संयम-मर्यादा को भंग न करे, पाप दृष्टिवाला साधु ही हर्ष शोक से अभिभूत होकर मर्यादा तोड़ता



है । प्रतिरिक्त एकान्त उपाश्रय पाकर, भले ही वह अच्छा हो या बुरा, उसमें मुनि को समभाव से यह सोच कर रहना चाहिए कि यह एक रात क्या करेगी ?

[७३-७४] यदि कोई भिक्षु को गाली दे, तो वह उसके प्रति क्रोध न करे । क्रोध करने वाला अज्ञानियों के सदृश होता है । अतः भिक्षु आक्रोश-काल में संज्वलित न हो, दारुण, ग्रामकण्टक की तरह चुभने वाली कठोर भाषा को सुन कर भिक्षु मौन रहे, उपेक्षा करे, उसे मन में भी न लाए ।

[७५-७६] मारे-पीटे जाने पर भी भिक्षु क्रोध न करे । दुर्भावना से मन को भी दूषित न करे । तितिक्षा-को साधना का श्रेष्ठ अंग जानकर मुनिधर्म का चिन्तन करे । संयत और दान्त-श्रमण को यदि कोई कहीं मारे-पीटे तो यह चिन्तन करे कि आत्मा का नाश नहीं होता है ।

[७७-७८] वास्तव में अनगार भिक्षु ही यह चर्या सदा से ही दुष्कर रही है कि उसे वस्त्र, पात्र, आहारादि सब कुछ याचना से मिलता है । उसके पास कुछ भी अयाचित नहीं होता है । गोचरी के लिए घर में प्रविष्ट साधु के लिए गृहस्थ के सामने हाथ फैलाना सरल नहीं है, अतः 'गृहवास ही श्रेष्ठ है'—मुनि ऐसा चिन्तन न करे ।

[७९-८०] गृहस्थों के घरों में भोजन तैयार हो जाने पर आहार की एषणा करे । आहार थोड़ा मिले, या न मिले, पर संयमी मुनि इसके लिए अनुताप न करे । 'आज मुझे कुछ नहीं मिला, संभव है, कल मिल जाय'—जो ऐसा सोचता है, उसे अलाभ कष्ट नहीं देता ।

[८१-८२] 'कर्मों के उदय से रोग उत्पन्न होता है'—ऐसा जानकर वेदना से पीड़ित होने पर दीन न बने । व्याधि से विचलित प्रज्ञा को स्थिर बनाए और प्राप्त पीड़ा को समभाव से सहे । आत्मगवेषक मुनि चिकित्सा का अभिनन्दन न करे, समाधिपूर्वक रहे । यही उसका श्रामण्य है कि वह रोग उत्पन्न होने पर चिकित्सा न करे, न कराए ।

[८३-८४] अचेलक और रूक्षशरीरी संयत तपस्वी साधु को घास पर सोने से शरीर को कष्ट होता है । गर्मी पड़ने से घास पर सोते समय बहुत वेदना होती है, यह जान करके तृण-स्पर्श से पीड़ित मुनि वस्त्र धारण नहीं करते हैं ।

[८५-८६] ग्रीष्म ऋतु में मैल से, रज से अथवा परिताप से शरीर के लित्त हो जाने पर मेधावी मुनि साता के लिए विलाप न करे । निर्जरार्थी मुनि अनुत्तर आर्यधर्म को पाकर शरीर-विनाश के अन्तिम क्षणों तक भी शरीर पर जल्ल-स्वैद-जन्य मैल को रहने दे ।

[८७-८८] राजा आदि द्वारा किए गए अभिवादन, सत्कार एवं निमन्त्रण को जो अन्य भिक्षु स्वीकार करते हैं, मुनि उनकी स्पृहा न करे । अनुत्कर्ष, अल्प इच्छावाला, अज्ञात कुलों से भिक्षा लेनेवाला अलोलुप भिक्षु रसों में गृद्ध-आसक्त न हो । प्रज्ञावान् दूसरों को सम्मान पाते देख अनुताप न करे ।

[८९-९०] "निश्चय ही मैंने पूर्व काल में अज्ञानरूप फल देनेवाले अपकर्म किए हैं, जिससे मैं किसी के द्वारा किसी विषय में पूछे जाने पर कुछ भी उत्तर देना नहीं जानता हूँ ।" 'अज्ञानरूप फल देने वाले पूर्वकृत कर्म परिपक्व होने पर उदय में आते हैं'—इस प्रकार कर्म के विपाक को जानकर मुनि अपने को आश्वस्त करे ।

[९१-९२] "मैं व्यर्थ में ही मैथुनादि सांसारिक सुखों से विरक्त हुआ, इन्द्रिय और मन

का संवरण किया । क्योंकि धर्म कल्याणकारी है या पापकारी है, यह मैं प्रत्यक्ष तो कुछ देख पाता नहीं हूँ—” ऐसा मुनि न सोचे । “तप और उपधान को स्वीकार करता हूँ, प्रतिमाओं का भी पालन कर रहा हूँ, इस प्रकार विशिष्ट साधनापथ पर विहरण करने पर भी मेरा छद्म दूर नहीं हो रहा है—” ऐसा चिन्तन न करे ।

[९३-९४] “निश्चय ही परलोक नहीं है, तपस्वी की ऋद्धि भी नहीं है, मैं तो धर्म के नाम पर ठगा गया हूँ”—“पूर्व काल में जिन हुए थे, वर्तमान में हैं और भविष्य में होंगे—ऐसा जो कहते हैं, वे झूठ बोलते हैं”—भिक्षु ऐसा चिन्तन न करे ।

[९५] कश्यप-गोत्रीय भगवान् महावीर ने इन सभी परीषहों का प्ररूपण किया है । इन्हें जानकर कहीं भी किसी भी परीषह से स्पृष्ट-आक्रान्त होने पर भिक्षु इनसे पराजित न हो ।—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-३-चातुरंगीय

[९६] इस संसार में प्राणियों के लिए चार परम अंग दुर्लभ हैं—मनुष्यत्व, सद्धर्म का श्रवण, श्रद्धा और संयम में पुरुषार्थ ।

[९७] नाना प्रकार के कर्मों को करके नानाविध जातियों में उत्पन्न होकर, पृथक्-पृथक् रूप से प्रत्येक संसारी जीव समस्त विश्व को स्पर्श कर लेते हैं—

[९८] अपने कृत कर्मों के अनुसार जीव कभी देवलोक में, कभी नरक में और कभी असुर निकाय में जाता है—

[९९] यह जीव कभी क्षत्रिय, कभी चाण्डाल, कभी वोक्कस, कभी कुंथु और कभी चींटी होता है ।

[१००] जिस प्रकार क्षत्रिय लोग चिरकाल तक समग्र ऐश्वर्य एवं सुखसाधनों का उपभोग करने पर भी निर्वेद-को प्राप्त नहीं होते, उसी प्रकार कर्मों से मलिन जीव अनादि काल से आवर्तस्वरूप योनिचक्र में भ्रमण करते हुए भी संसार दशा से निर्वेद नहीं पाते हैं—

[१०१] कर्मों के संग से अति मूढ़, दुःखित और अत्यन्त वेदना से युक्त प्राणी मनुष्येतर योनियों में जन्म लेकर पुनः पुनः विनिघातपाते हैं ।

[१०२] कालक्रम के अनुसार कदाचित् मनुष्यगतिनिरोधक कर्मों के क्षय होने से जीवों को शुद्धि प्राप्त होती है और उसके फलस्वरूप उन्हें मनुष्यत्व प्राप्त होता है ।

[१०३] मनुष्यशरीर प्राप्त होने पर भी धर्म का श्रवण दुर्लभ है, जिसे सुनकर जीव तप, क्षमा और अहिंसा को प्राप्त करते हैं ।

[१०४] कदाचित् धर्म का श्रवण हो भी जाए, फिर भी उस पर श्रद्धा होना परम दुर्लभ है । बहुत से लोग नैयायिक मार्ग—को सुनकर भी उससे विचलित हो जाते हैं ।

[१०५] श्रुति और श्रद्धा प्राप्त करके भी संयम में पुरुषार्थ होना अत्यन्त दुर्लभ है । बहुत से लोग संयम में अभिरुचि रखते हुए भी उसे सम्यक्तया स्वीकार नहीं कर पाते ।

[१०६] मनुष्यत्व प्राप्त कर जो धर्म को सुनता है, उसमें श्रद्धा करता है, वह तपस्वी संयम में पुरुषार्थ कर संवृत होता है, कर्म रज को दूर करता है ।

[१०७] सरलता से शुद्धि प्राप्त होती है । शुद्धि में धर्म रहता है । जिसमें धर्म है वह घृत से सिक्त अग्नि की तरह परम निर्वाण को प्राप्त होता है ।

[१०८] कर्मों के हेतुओं को दूर करके और क्षमा से यश-का संयम करके वह साधक पार्थिव शरीर को छोड़कर ऊर्ध्व दिशा की ओर जाता है ।

[१०९] अनेक प्रकार के शील को पालन करने से देव होते हैं । उत्तरोत्तर समृद्धि के द्वारा महाशुक्ल की भांति दीप्तिमान् होते हैं । और तब वे 'स्वर्ग से च्यवन नहीं होता है'-ऐसा मानने लगते हैं ।

[११०] एक प्रकार से दिव्य भोगों के लिए अपने को अर्पित किए हुए वे देव इच्छानुसार रूप बनाने में समर्थ होते हैं । तथा ऊर्ध्व कल्पों में पूर्व वर्ष शत तक रहते हैं ।

[१११] वहां देवलोक में यथास्थान अपनी काल-मर्यादातक ठहरकर, आयु क्षय होने पर वे देव वहां से लौटते हैं, और मनुष्ययोनि को प्राप्त होते हैं । वे वहां दशांग से युक्त होते हैं ।

[११२] क्षेत्रभूमि, वास्तु, स्वर्ण, पशु और दास ये चार काम-स्कन्ध जहां होते हैं, वहाँ वे उत्पन्न होते हैं ।

[११३] वे सन्मित्रों से युक्त, ज्ञातिमान्, उच्च गोत्रवाले, सुन्दर वर्णवाले, नीरोग, महाप्राज्ञ, अभिजात, यशस्वी और बलवान् होते हैं ।

[११४] जीवपर्यन्त अनुपम मानवीय भोगों को भोगकर भी पूर्व काल में विशुद्ध सद्धर्म के आराधक होने के कारण निर्मल बोधि का अनुभव करते हैं ।

[११५] पूर्वोक्त चार अंगों को दुर्लभ जानकर साधक संयम धर्म को स्वीकार करते हैं । अनन्तर तपश्चर्या से समग्र कर्मों को दूर कर शाश्वत सिद्ध होते हैं ।—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-४-असंस्कृत

[११६] टूटा जीवन सांधा नहीं जा सकता, अतः प्रमाद मत करो, वृद्धावस्था में कोई शरण नहीं है । यह विचारो कि 'प्रमादी, हिंसक और असंयमी मनुष्य समय पर किसकी शरण लेंगे ।'

[११७] जो मनुष्य अज्ञानता के कारण पाप-प्रवृत्तियों से धन का उपार्जन करते हैं, वे वासना के जाल में पड़े हुए और वैर से बंधे मरने के बाद नरक में जाते हैं ।

[११८] जैसे संधि-मुख में पकड़ा गया पापकारी चोर अपने कर्म से छेदा जाता है, वैसे ही जीव अपने कृत कर्मों के कारण लोक तथा परलोक में छेदा जाता है । किए हुए कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं है ।

[११९] संसारी जीव अपने और अन्य बंधु-बांधवों के लिए साधारण कर्म करता है, किन्तु उस कर्म के फलोदय के समय कोई भी बन्धु बन्धुता नहीं दिखाता है ।

[१२०] प्रमत्त मनुष्य इस लोक में और परलोक में धन से त्राण- नहीं पाता है । दीप बुझ गया हो उसको पहले प्रकाश में देखा हुआ मार्ग भी न देखे हुए जैसे हो जाता है, वैसे ही अनन्त मोह के कारण प्रमत्त व्यक्ति मोक्ष-मार्ग को देखता हुआ भी नहीं देखता है ।



[१२१] आशुप्रज्ञावाला ज्ञानी साधक सोए हुए लोगों में भी प्रतिक्षण जागता रहे । प्रमाद में एक क्षण के लिए भी विश्वास न करे । समय भयंकर है, शरीर दुर्बल है । अतः भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमादी होकर विचरण करे ।

[१२२] साधक पग-पग पर दोषों की संभावना को ध्यान में रखता हुआ चले, छोटे दोष को भी पाश समझकर सावधान रहे । नये गुणों के लाभ के लिए जीवन सुरक्षित रखे । और जब लाभ न होता दीखे तो परिज्ञानपूर्वक शरीर को छोड़े ।

[१२३] शिक्षित और वर्म दारी अश्व जैसे युद्ध से पार हो जाता है, वैसे ही स्वच्छंदता निरोधक साधक संसार से पार हो जाता है । पूर्व जीवन में अप्रमत्त होकर विचरण करनेवाला मुनि शीघ्र ही मोक्ष पाता है ।

[१२४] 'जो पूर्व जीवन में अप्रमत्त नहीं रहता, वह बाद में भी अप्रमत्त नहीं हो पाता है-' यह ज्ञानी जनों की धारणा है । 'अभी क्या है, बाद में अन्तिम समय अप्रमत्त हो जाएंगे-' यह शाश्वतवादियों की मिथ्या धारणा है । पूर्व जीवन में प्रमत्त रहने वाला व्यक्ति, आयु के शिथिल होने पर मृत्यु के समय, शरीर छूटने की स्थिति आने पर विषाद को पाता है ।

[१२५] कोई भी तत्काल विवेक को प्राप्त नहीं कर सकता । अतः अभी से कामनाओं का परित्याग कर, सन्मार्ग में उपस्थित होकर, समत्व दृष्टि से लोक को अच्छी तरह जानकर आत्मरक्षक महर्षि अप्रमत्त होकर विचरे ।

[१२६] बार-बार रागद्वेष पर विजय पाने को यत्नशील संयम में विचरण करते श्रमण को अनेक प्रकार के प्रतिकूल स्पर्श परेशान करते हैं । किन्तु भिक्षु उन पर मन से भी द्वेष न करे ।

[१२७] अनुकूल स्पर्श बहुत लुभावने होते हैं । किन्तु साधक तथाप्रकार के विषयों में मन को न लगाए । क्रोध से अपने को बचाए रखे । मान को दूर करे । माया का सेवन न करे । लोभ को त्यागे ।

[१२८] जो व्यक्ति संस्कारहीन, तुच्छ और परप्रवादी हैं, जो राग और द्वेष में फंसे हुए हैं, वासनाओं के दास हैं, वे 'धर्म रहित हैं'—ऐसा जानकर साधक उनसे दूर रहे । शरीर-भेद के अन्तिम क्षणों तक सद्गुणों की आराधना करे ।—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-५-अकाममरणीय

[१२९-१३०] संसार सागर की भाँति है, उसका प्रवाह विशाल है, उसे तैर कर पार पहुंचना अतीव कष्टसाध्य है । फिर भी कुछ लोग पार कर गये हैं । उन्हीं में से एक महाप्राज्ञ (महावीर) ने यह स्पष्ट किया था । मृत्यु के दो भेद हैं—अकाम मरण और सकाम मरण ।

[१३१] बालजीवों के अकाम मरण बार-बार होते हैं । पण्डितों का सकाम मरण उत्कर्ष से एक बार होता है ।

[१३२-१३४] महावीर ने दो स्थानों में से प्रथम स्थान के विषय में कहा है कि काम-भोग में आसक्त बाल जीव-अज्ञानी आत्मा क्रूर कर्म करता है । जो काम-भोगों में आसक्त होता है, वह कूट की ओर जाता है । वह कहता है—“परलोक तो मैंने देखा नहीं है।

और यह रति सुख है—” “वर्तमान के ये कामभोग-सम्बन्धी सुख तो हस्तगत हैं । भविष्य में मिलने वाले सुख संदिग्ध हैं । कौन जानता है—परलोक है या नहीं—”

[१३५-१४०] “मैं तो आम लोगों के साथ रहूँगा । ऐसा मानकर अज्ञानी मनुष्य भ्रष्ट हो जाता है । किन्तु वह कामभोग के अनुराग से कष्ट ही पाता है । फिर वह त्रस एवं स्थावर जीवों के प्रति दण्ड का प्रयोग करता है । प्रयोजन से अथवा निष्प्रयोजन ही प्राणीसमूह की हिंसा करता है । जो हिंसक, बाल-अज्ञानी, मृषावादी, मायावी, चुगलखोर तथा शठ होता है वह मद्य एवं मांस का सेवन करता हुआ यह मानता है कि यही श्रेय है । वह शरीर और वाणी से मत्त होता होता है, धन और स्त्रियों में आसक्त रहता है । वह राग और द्वेष दोनों से वैसे ही कर्म-मल संचय करता है, जैसे कि शिशुनाग अपने मुख और शरीर दोनों से मिट्टी संचय करता है । फिर वह भोगासक्त बालजीव आतंकरोग से आक्रान्त होने पर ग्लान होता है, परिताप करता है, अपने किए हुए कर्मों को यादकर परलोक से भयभीत होता है । वह सोचता है, मैंने उन नारकीय स्थानों के विषय में सुना है, जो शील से रहित क्रूर कर्मवाले अज्ञानी जीवों की गति है, और जहाँ तीव्र वेदना है ।

[१४१-१४३] उन नरकों में औपपातिक स्थिति है । आयुष्य क्षीण होने के पश्चात् अपने कृतकर्मों के अनुसार वहाँ जाता हुआ प्राणी परिताप करता है । जैसे कोई गाड़ीवान् समतल महान् मार्ग को जानता हुआ भी उसे छोड़कर विषम मार्ग से चल पड़ता है और तब गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक करता है । इसी प्रकार जो धर्म का उल्लंघन कर अधर्म को स्वीकार करता है, वह मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ बालजीव शोक करता है, जैसे कि धुरी के टूटने पर गाड़ीवान् शोक करता है ।

[१४४-१४५] मृत्यु के समय वह अज्ञानी परलोक के भय से संत्रस्त होता है । एक ही दाव में सब कुछ हार जानेवाले धूर्त की तरह शोक करता हुआ अकाम मरण से मरता है । यह अज्ञानी जीवों के अकाम मरण का प्रतिपादन किया है । अब पण्डितों के सकाम मरण को मुझसे सुनो—

[१४६-१४७] जैसा कि मैंने परम्परा से सुना है कि—संयत और जितेन्द्रिय पुण्यात्माओं का मरण अतिप्रसन्न और आधातरहित होता है । यह सकाम मरण न सभी भिक्षुओं को प्राप्त होता है और न सभी गृहस्थों को । गृहस्थ नाना प्रकार के शीलों से सम्पन्न होते हैं, जब कि बहुत से भिक्षु भी विषम-शीलवाले होते हैं ।

[१४८] कुछ भिक्षुओं की अपेक्षा गृहस्थ संयम में श्रेष्ठ होते हैं । किन्तु शुद्धाचारी साधुजन सभी गृहस्थों से संयम में श्रेष्ठ हैं ।

[१४९-१५०] दुराचारी साधु को वस्त्र, अजिन, नग्नत्व, जटा, गुदड़ी, शिरोमुंडन आदि बाह्याचार, नरकगति में जाने से नहीं बचा सकते । भिक्षावृत्ति से निर्वाह करनेवाला भी यदि दुःशील है तो वह नरक से मुक्त नहीं हो सकता है । भिक्षु हो अथवा गृहस्थ, यदि वह सुव्रती है, तो स्वर्ग में जाता है ।

[१५१-१५२] श्रद्धावान् गृहस्थ सामायिक साधना के सभी अंगों का काया से स्पर्श करे, कृष्ण और शुक्ल पक्षों में पौषध व्रत को एक रात्रि के लिए भी न छोड़े । इस प्रकार धर्मशिक्षा से सम्पन्न सुव्रती गृहवास में रहता हुआ भी मानवीय औदारिक शरीर को छोड़कर

देवलोक में जाता है ।

[१५३] संयमी भिक्षु की दोनों में से एक स्थिति होती है-या तो वह सदा के लिए सब दुःखों से मुक्त होता है अथवा महान् ऋद्धिवाला देव होता है ।

[१५४-१५५] देवताओं के आवास अनुक्रम से ऊर्ध्व, मोहरहित, द्युतिमान् तथा देवों से परिख्याप्त होते हैं । उनमें रहने वाले देव यशस्वी-दीर्घायु, ऋद्धिमान्, दीप्तिमान्, इच्छानुसार रूप धारण करने वाले और अभी-अभी उत्पन्न हुए हों, ऐसी भव्य कांति वाले एवं सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी होते हैं ।

[१५६] भिक्षु हो या गृहस्थ, जो हिंसा आदि से निवृत्त होते हैं, वे संयम और तप का अभ्यास कर उक्त देव लोकों में जाते हैं ।

[१५७] सत्पुरुषों के द्वारा पूजनीय उन संयत और जितेन्द्रिय आत्माओं के उक्त वृत्तान्त को सुनकर शीलवान् बहुश्रुत साधक मृत्यु के समय में भी संत्रस्त नहीं होते हैं ।

[१५८] बालमरण और पंडितमरण की परस्पर तुलना करके मेधावी साधक विशिष्ट सकाम मरण को स्वीकार करे, और मरण काल में दया धर्म एवं क्षमा से पवित्र तथाभूत आत्मा से प्रसन्न रहे ।

[१५९-१६०] जब मरण-काल आए, तो जिस श्रद्धा से प्रव्रज्या स्वीकार की थी, तदनुसार ही भिक्षु गुरु के समीप पीडाजन्य लोमहर्ष को दूर करे तथा शान्तिभाव से शरीर के भेद की प्रतीक्षा करे । मृत्यु का समय आने पर मुनि भक्तपरिज्ञा, इंगिनी और प्रायोपगमन में से किसी एक को स्वीकार कर सकाम मरण से शरीर को छोड़ता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-६-क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीय

[१६१-१६२] जितने अविद्यावान् हैं, वे सब दुःख के उत्पादक हैं । वे विवेकमूढ अनन्त संसार में बार-बार लुप्त होते हैं । इसलिए पण्डित पुरुष अनेकविध बन्धनों की एवं जातिपथों की समीक्षा करके स्वयं सत्य की खोज करे और विश्व के सब प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव रखे ।

[१६३-१६४] अपने ही कृत कर्मों से लुप्त मेरी रक्षा करने में माता-पिता, पुत्रवधू, भाई, पत्नी तथा औरस पुत्र समर्थ नहीं हैं । सम्यक् द्रष्टा साधक अपनी स्वतंत्र बुद्धि से इस अर्थ की सत्यता को देखे । आसक्ति तथा स्नेह का छेदन करे । किसी के पूर्व परिचय की भी अभिलाषा न करे ।

[१६५] गौ, बैल, घोड़ा, मणि, कुण्डल, पशु, दास और अन्य सहयोगी पुरुष-इन सबका परित्याग करनेवाला साधक परलोक में कामरूपी देव होगा ।

[१६६] कर्मों से दुःख पाते हुए प्राणी को स्थावर-जंगम संपत्ति, धन, धान्य और गृहोपकरण भी दुःख से मुक्त करने में समर्थ नहीं होते ।

[१६७] 'सबको सब तरह से सुख प्रिय है, सभी प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है'—यह जानकर भय और वैर से उपरत साधक किसी भी प्राणी के प्राणों की हिंसा न करे ।

[१६८] अदत्तादान नरक है, यह जानकर बिना दिया हुआ एक तिनका भी मुनि न



ले । असंयम के प्रति जुगुप्सा रखनेवाला मुनि अपने पात्र में दिया हुआ ही भोजन करे ।

[१६९] इस संसार में कुछ लोग मानते हैं कि—‘पापों का परित्याग किए बिना ही केवल तत्त्वज्ञान को जानने-भर से ही जीव सब दुःखों से मुक्त हो जाता है ।’

[१७०] जो बन्ध और मोक्ष के सिद्धान्तों की स्थापना तो करते हैं, कहते बहुत हैं, किन्तु करते कुछ नहीं हैं, वे ज्ञानवादी केवल वाग्वीर्य से अपने को आश्वस्त करते रहते हैं।

[१७१] विविध भाषाएँ रक्षा नहीं करती हैं, विद्याओं का अनुशासन भी कहां सुरक्षा देता है ? जो इन्हें संरक्षक मानते हैं, वे अपने आपको पण्डित माननेवाले अज्ञानी जीव पाप कर्मों में मग्न हैं, डूबे हुए हैं ।

[१७२] जो मन, वचन और काया से शरीर में, शरीर के वर्ण और रूप में सर्वथा आसक्त हैं, वे सभी अपने लिए दुःख उत्पन्न करते हैं ।

[१७३] उन्होंने इस अनन्त संसार में लम्बे मार्ग को स्वीकार किया है । इसलिए सब ओर देख-भालकर साधक अप्रमत्त भाव से विचरण करे ।

[१७४] मुक्ति का लक्ष्य रखनेवाला साधक कभी भी बाह्य विषयों की आकांक्षा न करे । पूर्व कर्मों के क्षय के लिए ही इस शरीर को धारण करे ।

[१७५] प्राप्त अवसर का ज्ञाता साधक कर्म के हेतुओं को दूर करके विचरे । गृहस्थ के द्वारा अपने लिए तैयार किया गया आहार और पानी आवश्यकतापूर्तिमात्र ग्रहण कर सेवन करे ।

[१७६] साधु लेशमात्र भी संग्रह न करे, पक्षी की तरह संग्रह से निरपेक्ष रहता हुआ पात्र लेकर भिक्षा के लिए विचरण करे ।

[१७७] एषणा समिति से युक्त लज्जावान् संयमी मुनि गांवों में अनियत विहार करे, अप्रमत्त रहकर गृहस्थों से पिण्डपातभिक्षा की गवेषणा करे ।

[१७८] अनुत्तर ज्ञानी, अनुत्तरदर्शी, अनुत्तर ज्ञान-दर्शन के धर्ता, अर्हन्, ज्ञातपुत्र वैशालिक महावीर ने ऐसा कहा है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-७-उरभ्रीय

[१७९-१८२] जैसे कोई व्यक्ति संभावित अतिथि के उद्देश्य से मेमने का पोषण करता है । उसे चावल, जौ या हरी घास आदि देता है । और उसका यह पोषण अपने आंगन में ही करता है । इस प्रकार वह मेमना अच्छा खाते-पीते पुष्ट, बलवान, मोटा, बड़े पेटवाला हो जाता है । अब वह तृप्त एवं मांसल देहवाला मेमना बस अतिथि की प्रतीक्षा करता है । जब तक अतिथि नहीं आता है, तब तक वह बेचारा जीता है । मेहमान के आते ही वह सिर काटकर खा लिया जाता है । मेहमान के लिए प्रकल्पित मेमना, जैसे कि मेहमान की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही अधमिष्ठ अज्ञानी जीव भी यथार्थ में नरक के आयुष्य की प्रतीक्षा करता है ।

[१८३-१८५] हिंसक, अज्ञानी, मिथ्याभाषी, मार्ग लूटनेवाला बटमार, दूसरों को दी हुई वस्तु को बीच में ही हड़प जानेवाला, चोर, मायावी ठग, कुतोहर—विकल्पना में निरन्तर लगा रहने वाला, धूर्त-स्त्री और अन्य विषयों में आसक्त, महाआरम्भ और महापरिग्रहवाला,

सुरा और मांस का उपभोगी बलवान्, दूसरों को सताने वाला—बकरे की तरह कर-कर शब्द करते हुए मांसादि अभक्ष्य खानेवाला, मोटी तोंद और अधिक स्तुवाला व्यक्ति उसी प्रकार नरक के आयुष्य की आकांक्षा करता है, जैसे कि मेमना मेहमान की प्रतीक्षा करता है ।

[१८६-१८७] आसन, शय्या, वाहन, धन और अन्य कामभोगों को भोगकर, दुःख से एकत्रित किए धन को छोड़कर, कर्मों की बहुत धूल संचित कर—केवल वर्तमान को ही देखने में तत्पर, कर्मों से भारी हुआ जीव मृत्यु के समय वैसे ही शोक करता है, जैसे कि मेहमान के आने पर मेमना करता है ।

[१८८] नाना प्रकार से हिंसा करनेवाले अज्ञानी जीव आयु के क्षीण होने पर जब शरीर छोड़ते हैं तो वे कृत कर्मों से विवश अंधकाराच्छन्न नरक की ओर जाते हैं ।

[१८९-१९१] एक क्षुद्र काकिणी के लिए जैसे मूढ मनुष्य हजार गँवा देता है और राजा एक अपथ्य आम्रफल खाकर बदले में जैसे राज्य को खो देता है । इसी प्रकार देवताओं के कामभोगों की तुलना में मनुष्य के कामभोग नगण्य हैं । मनुष्य की अपेक्षा देवताओं की आयु और कामभोग हजार गुणा अधिक हैं । “प्रज्ञावान् साधक की देवलोक में अनेक युत वर्ष की स्थिति होती है”—यह जानकर भी मूर्ख मनुष्य सौ वर्ष से भी कम आयुकाल में उन दिव्य सुखों को गँवा रहे हैं ।

[१९२-१९४] तीन वणिक् मूल धन लेकर व्यापार को निकले । उनमें से एक अतिरिक्त लाभ प्राप्त करता है । एक सिर्फ मूल ही लेकर लौटता है । और एक मूल भी गँवाकर आता है । यह व्यवहार की उपमा है । इसी प्रकार धर्म के विषय में भी जानना । मनुष्यत्व मूल धन है । देवगति लाभरूप है । मूल के नाश से जीवों को निश्चय ही नरक और तिर्यच गति प्राप्त होती है ।

[१९५-१९७] अज्ञानी जीव की दो गति हैं—नरक और तिर्यच । वहाँ उसे वधमूलक कष्ट प्राप्त होता है । क्योंकि वह लोलुपता और वंचकता के कारण देवत्व और मनुष्यत्व को पहले ही हार चुका होता है । नरक और तिर्यच—रूप दो दुर्गति को प्राप्त अज्ञानी जीव देव और मनुष्य गति को सदा ही हारे हुए हैं । क्योंकि भविष्य में उनका दीर्घ काल तक वहाँ से निकलना दुर्लभ है । इस प्रकार हारे हुए बालजीवों को देखकर तथा बाल एवं पंडित की तुलना कर जो मानुषी योनि में आते हैं, वे मूलधन के साथ लौटे वणिक् की तरह हैं ।

[१९८-२००] जो मनुष्य विविध परिमाणवाली शिक्षाओं द्वारा घर में रहते हुए भी सुव्रती हैं, वे मानुषी योनि में उत्पन्न होते हैं । क्योंकि प्राणी कर्मसत्य होते हैं—जिनकी शिक्षा विविध परिमाण वाली व्यापक है, जो घर में रहते हुए भी शील से सम्पन्न एवं उत्तरोत्तर गुणों से युक्त हैं, वे अदीन पुरुष मूलधनरूप मनुष्यत्व से आगे बढ़कर देवत्व को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार दैन्यरहित पराक्रमी भिक्षु और गृहस्थ को लाभान्वित जानकर कैसे कोई विवेकी पुरुष उक्त लाभ को हारेगा ? और हारता हुआ कैसे संवेदन नहीं करेगा ?

[२०१-२०५] देवताओं के काम-भोग की तुलना में मनुष्य के काम-भोग वैसे ही क्षुद्र हैं, जैसे समुद्र की तुलना में कुश के अग्रभाग पर टिका हुआ जलबिन्दु । मनुष्यत्व की इस अत्यल्प आयु में कामभोग कुशाग्र पर स्थित जलबिन्दु-मात्र हैं, फिर भी अज्ञानी किस हेतु से अपने लाभकारी योग-क्षेमकों नहीं समझता ? मनुष्यत्व में काम भोगों से निवृत्त न

होनेवाले का आत्मार्थ विनष्ट हो जाता है । क्योंकि वह सन्मार्ग को बार-बार सुनकर भी उसे छोड़ देता है । मनुष्य भव में काम भोगों से निवृत्त होनेवाले का आत्म-प्रयोजन नष्ट नहीं होता है । वह पूतिदेह-के छोड़ने पर देव होता है—ऐसा मैंने सुना है । देवलोक से आकर वह जीव जहाँ श्रेष्ठ ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण, आयु और सुख होते हैं, उस मनुष्य-कुल में उत्पन्न होता है ।

[२०६] बालजीव की अज्ञानता तो देखो । वह अधर्म को ग्रहण कर एवं धर्म को छोड़कर अधर्मिष्ठ बनता है और नरक में उत्पन्न होता है ।

[२०७] सब धर्मों का अनुवर्तन-करने वाले धीर पुरुष का धैर्य देखो । वह अधर्म को छोड़कर धर्मिष्ठ बनता है और देवों में उत्पन्न होता है ।

[२०८] पण्डित मुनि बालभाव और अबाल भाव की तुलना-करके बाल भाव को छोड़ कर अबाल भाव को स्वीकारता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-८-कापिलीय

[२०९] अध्रुव, अशाश्वत और दुःखबहुल संसार में वह कौनसा कर्म है, जिससे मैं दुर्गति में न जाऊँ ?

[२१०] पूर्व सम्बन्धों को एक बार छोड़कर फिर किसी पर भी स्नेह न करे । स्नेह करनेवालों के साथ भी स्नेह न करने वाला भिक्षु सभी प्रकार के दोषों और प्रदोषों से मुक्त हो जाता है ।

[२११-२१४] केवलज्ञान और केवलदर्शन से सम्पन्न तथा मोहमुक्त कपिल मुनि ने सब जीवों के हित और कल्याण के लिए तथा मुक्ति के लिए कहा—मुनि कर्मबन्धन के हेतुस्वरूप सभी प्रकार के ग्रन्थ तथा कलह का त्याग करे । काम भोगों के सब प्रकारों दोष देखता हुआ आत्मरक्षक मुनि उनमें लिप्त न हो । आसक्तिजनक आमिषरूप भोगों में निमग्न, हित और निश्चयस में विपरीत बुद्धिवाला, अज्ञ, मन्द और मूढ जीव कर्मों से वैसे ही बंध जाता है, जैसे श्लेष्म-में मक्खी । काम-भोगों का त्याग दुष्कर है, अधीर पुरुषों के द्वारा कामभोग आसानी से नहीं छोड़े जाते । किन्तु जो सुव्रती साधु हैं, वे दुस्तर कामभोगों को उसी प्रकार तैर जाते हैं, जैसे वणिक समुद्र को ।

[२१५] 'हम श्रमण हैं'—ऐसा कहते हुए भी कुछ पशु की भांति अज्ञानी जीव प्राणवध को नहीं समझते हैं । वे मन्द और अज्ञानी पापदृष्टियों के कारण नरक में जाते हैं ।

[२१६] जिन्होंने साधु धर्म की प्ररूपणा की है, उन आर्य पुरुषों ने कहा है—“जो प्राणवध का अनुमोदन करता है, वह कभी भी सब दुःखों से मुक्त नहीं होता ।

[२१७] जो जीवों की हिंसा नहीं करता, वह साधक 'समित'—कहा जाता है । उसके जीवन में से पाप-कर्म वैसे ही निकल जाता है, जैसे ऊँचे स्थान से जल ।

[२१८] संसार में जो भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनके प्रति मन, वचन, काय-रूप किसी भी प्रकार के दण्ड का प्रयोग न करे ।

[२१९] शुद्ध एषणाओं को जानकर भिक्षु उनमें अपने आप को स्थापित करे—भिक्षाजीवी मुनि संयमयात्रा के लिए आहार की एषणा करे, किन्तु रसों में मूर्छित न बने ।



[२२०] भिक्षु जीवन-यापन के लिए प्रायः नीरस, शीत, पुराने कुल्माष, सारहीन, रूखा और मंथुबेर आदि का चूर्ण ही भिक्षा में ग्रहण करता है ।

[२२१] “जो साधु लक्षणशास्त्र, स्वप्नशास्त्र और अंगविद्या का प्रयोग करते हैं, उन्हें साधु नहीं कहा जाता है”—ऐसा आचार्यों ने कहा है ।

[२२२-२२३] जो वर्तमान जीवन को नियंत्रित न रख सकने के कारण समाधियोग से भ्रष्ट हो जाते हैं, वे कामभोग और रसों में आसक्त असुरकाय में उत्पन्न होते हैं । वहां से निकल कर भी वे संसार में बहुत काल तक परिभ्रमण करते हैं । बहुत अधिक कर्मों से लित होने के कारण उन्हें बोधि धर्म की प्राप्ति अतीव दुर्लभ है ।

[२२४-२२५] धन-धान्य आदि से प्रतिपूर्ण यह समग्र विश्व भी यदि किसी एक को दे दिया जाए, तो भी वह उससे सन्तुष्ट नहीं होगा । इतनी दुष्पूर है यह लोभाभिभूत आत्मा । जैसे लाभ होता है, वैसे लोभ होता है । लाभ से लोभ बढ़ता जाता है । दो माशा सोने से निष्पन्न होने वाला कार्य करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं से भी पूरा नहीं हो सका ।

[२२६-२२७] जिनके हृदय में कपट है अथवा जो वक्ष में फोड़े के रूप स्तनोंवाली हैं, जो अनेक कामनाओंवाली हैं, जो पुरुष को प्रलोभन में फँसा कर उसे दास की भाँति नचाती हैं, ऐस राक्षसी-स्वरूप साधनाविद्या तक स्त्रियों में आसक्ति नहीं रखनी चाहिए । स्त्रियों को त्यागनेवाला अनगार उनमें आसक्त न हो । भिक्षु-धर्म को पेशल जानकर उसमें अपनी आत्मा को स्थापित करे ।

[२२८] विशुद्ध प्रज्ञावाले कपिल मुनि ने इस प्रकार धर्म कहा है । जो इसकी सम्यक् आराधना करेंगे, वे संसारसमुद्र को पार करेंगे । उनके द्वारा ही दोनों लोक आराधित होंगे ।—ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-९-नमिप्रव्रज्या

[२२९-२३०] देवलोक से आकर नमि के जीव ने मनुष्य लोक में जन्म लिया । उसका मोह उपशान्त हुआ, तो उसे पूर्व जन्म का स्मरण हुआ । स्मरण करके अनुत्तर धर्म में स्वयं संबुद्ध बने । राज्य का भार पुत्र को सौंपकर उन्होंने अभिनिष्क्रमण किया ।

[२३१] नमिराजा श्रेष्ठ अन्तःपुर में रह कर, देवलोक के भोगों के समान सुन्दर भोगों को भोगकर एक दिन प्रबुद्ध हुए और उन्होंने भोगों का परित्याग किया ।

[२३२] भगवान् नमि ने पुर और जनपदसहित अपनी राजधानी मिथिला, सेना, अन्तःपुर और समग्र परिजनों को छोड़कर अभिनिष्क्रमण किया और एकान्तवासी बने ।

[२३३] जिस समय राजर्षि नमि अभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हो रहे थे, उस समय मिथिला में बहुत कोलाहल हुआ था ।

[२३४-२३५] उत्तम प्रव्रज्या-स्थान के लिए प्रस्तुत हुए नमि राजर्षि को ब्राह्मण के रूप में आए हुए देवेन्द्र ने कहा—“हे राजर्षि ! आज मिथिला नगरी में, प्रासादों में और घरों में कोलाहल पूर्ण दारुण शब्द क्यों सुनाई दे रहे हैं ?”

[२३६-२३८] देवेन्द्र के इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र को कहा—“मिथिला में एक चैत्य वृक्ष था । जो शीतल छायावाला, मनोरम, पत्र

पुष्प एवं फलों से युक्त, बहुतों के लिए सदैव बहुत उपकारक था—प्रचण्ड आंधी से उस मनोरम वृक्ष के गिर जाने पर दुःखित, अशरण और आर्त ये पक्षी क्रन्दन कर रहे हैं ।”

[२३९-२४०] राजर्षि के इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने कहा—“यह अग्नि है, यह वायु है और इनसे यह आपका राजभवन जल रहा है । भगवन् ! आप अपने अन्तःपुर की ओर क्यों नहीं देखते ?”

[२४१-२४४] देवेन्द्र के इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने कहा—“जिनके पास अपना जैसा कुछ भी नहीं है, ऐसे हम लोग सुख से रहते हैं, सुख से जीते हैं । मिथिला के जलने में मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है—पुत्र, पत्नी और गृह-व्यापार से मुक्त भिक्षु के लिए न कोई वस्तु प्रिय होती है और न कोई अप्रिय—‘सब ओर से मैं अकेला ही हूँ’—इस प्रकार एकान्तद्रष्टा-गृहत्यागी मुनि को सब प्रकार से सुख ही सुख है ।”

[२४५-२४६] इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने कहा—“हे क्षत्रिय ! पहले तुम नगर का परकोटा, गोपुर, अट्टालिकाएँ, दुर्ग की खाई, शतघ्नी—बनाकर फिर जाना, प्रव्रजित होना ।”

[२४७-२५०] इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने कहा—“श्रद्धा को नगर, तप और संयम को अर्गला, क्षमा को मन, वचन, काय की त्रिगुति से सुरक्षित, एवं अजेय मजबूत प्राकार बनाकर—पराक्रम को धनुष, ईर्या समिति को उसकी डोर, धृति को उसकी मूठ बनाकर, सत्य से उसे बांधकर—तप के बाणों से युक्त धनुष से कर्म-रूपी कवच को भेदकर अन्तर्युद्ध का विजेता मुनि संसार से मुक्त होता है ।”

[२५१-२५२] इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने कहा—“हे क्षत्रिय ! पहले तुम प्रासाद, वर्धमान गृह, चन्द्रशालाएँ बनाकर फिर जाना ।

[२५३-२५४] इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने कहा—“जो मार्ग में घर बनाता है, वह अपने को संशय में डालता है, अतः जहाँ जाने की इच्छा हो वहीं अपना स्थायी घर बनाना चाहिए ।”

[२५५-२५६] इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने कहा—“हे क्षत्रिय ! पहले तुम बटमारों, प्राणघातक डाकुओं, गांठ काटने वालों और चोरों से नगर की रक्षा करके फिर जाना ।”

[२५७-२५८] इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने कहा—“इस लोक में मनुष्यों के द्वारा अनेक बार मिथ्या दण्ड का प्रयोग किया जाता है । अपराध न करनेवाले निर्दोष पकड़े जाते हैं और सही अपराधी छूट जाते हैं ।”

[२५९-२६०] इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने कहा—“हे क्षत्रिय ! जो राजा अभी तुम्हें नमते नहीं हैं, पहले उन्हें अपने वश में करके फिर जाना ।

[२६१-२६४] इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने कहा—“जो दुर्जय संग्राम में दस लाख योद्धाओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा जो एक अपने को जीतता है, उसकी विजय ही परम विजय है—बाहर के युद्धों से क्या ? स्वयं अपने ही युद्ध करो । अपने से अपने को जीकर ही सच्चा सुख प्राप्त होता है—पाँच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया, लोभ और मन—ये ही वास्तव में दुर्जेय हैं । एक अपने आप को जीत लेने पर सभी

जीत लिए जाते हैं ।”

[२६५-२६६] इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने कहा—“हे क्षत्रिय ! तुम विपुल यज्ञ कराकर, श्रमण और ब्राह्मणों को भोजन कराकर, दान देकर, भोग भोगकर और स्वयं यज्ञ कर के फिर जाना ।”

[२६७-२६८] इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने कहा—“जो मनुष्य प्रतिमास दस लाख गायों का दान करता है, उसको भी संयम ही श्रेय है । फिर भले ही वह किसी को कुछ भी दान न करे ।”

[२६९-२७०] इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने कहा—“हे मनुजाधिप ! तुम गृहस्थ आश्रम को छोड़कर जो दूसरे संन्यास आश्रम की इच्छा करते हो, यह उचित नहीं है । गृहस्थ आश्रम में ही रहते हुए पौषधव्रत में अनुरत रहो ।”

[२७१-२७२] इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने कहा—“जो बाल साधक महीने-महीने के तप करता है और पारणा में कुश के अग्र भाग पर आए उतना ही आहार ग्रहण करता है, वह सुआख्यात धर्म की सोलहवीं कला को भी पा नहीं सकता है ।”

[२७३-२७४] इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने कहा—“हे क्षत्रिय ! तुम चांदी, सोना, मणि, मोती, कांसे के पात्र, वस्त्र, वाहन और कोश की वृद्धि करके फिर मुनि बनना ।”

[२७५-२७७] इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने कहा—“सोने और चांदी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत हों, फिर भी लोभी मनुष्य की उनसे कुछ भी तृप्ति नहीं होती । क्योंकि इच्छा आकाश समान अनन्त है ।” “पृथ्वी, चावल, जौ, सोना और पशु की इच्छापूर्ति के लिए भी पर्याप्त नहीं है—” यह जान कर साधक तप का आचरण करे ।”

[२७८-२७९] इस अर्थ को सुनकर हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने कहा—“हे पार्थिव ! आश्चर्य है, तुम प्रत्यक्ष में प्राप्त भोगों को त्याग रहे हो और अप्राप्त भोगों की इच्छा कर रहे हो । मालूम होता है, तुम व्यर्थ के संकल्पों से ठगे जा रहे हो ।”

[२८०-२८२] इस अर्थ को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने कहा—“संसार के काम भोग शल्य हैं, विष हैं और आशीविष सर्प के तुल्य हैं । जो काम-भोगों को चाहते हैं, किन्तु उनका सेवन नहीं कर पाते हैं, वे भी दुर्गति में जाते हैं । क्रोध से अधोगति में जाना होता है । मान से अधमगति होती है । माया से सुगति में बाधाएँ आती हैं । लोभ से दोनों तरह का भय होता है ।”

[२८३-२८८] देवेन्द्र ब्राह्मण का रूप छोड़कर, अपने वास्तविक इन्द्रस्वरूप को प्रकट करके मधुर वाणी से स्तुति करता हुआ नमि राजर्षि को वन्दना करता है : “अहो, आश्चर्य है—तुमने क्रोध को जीता । मान को पराजित किया । माया को निराकृत किया । लोभ को वश में किया । अहो ! उत्तम है तुम्हारी सरलता । उत्तम है तुम्हारी मृदुता । उत्तम है तुम्हारी क्षमा । अहो ! उत्तम है तुम्हारी निर्लोभता । भगवन् ! आप इस लोक में भी उत्तम हैं और परलोक में भी उत्तम होंगे । कर्म-मल से रहित होकर आप लोक में सर्वोत्तम स्थान सिद्धि को



प्राप्त करेंगे । इस प्रकार स्तुति करते हुए इन्द्र ने, उत्तम श्रद्धा से, राजर्षि को प्रदक्षिणा करते हुए, अनेक बार वन्दना की । इसके पश्चात् नमि मुनिवर के चक्र और अंकुश के लक्षणों से युक्त चरणों की वन्दना करके ललित एवं चपल कुण्डल और मुकुट को धारण करने वाला इन्द्र ऊपर आकाश मार्ग से चला गया ।

[२८९] नमिराजर्षि ने आत्मभावना से अपने को विनत किया । साक्षात् देवेन्द्र के द्वारा प्रेरित होने पर भी गृह और वैदेही की राज्यलक्ष्मी को त्याग कर श्रामण्यभाव में सुस्थिर रहे ।

[२९०] संबुद्ध, पण्डित और विचक्षण पुरुष इसी प्रकार भोगों से निवृत्त होते हैं, जैसे कि नमि राजर्षि । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-१०-द्रुमपत्रक

[२९१] गौतम ! जैसे समय बीतने पर वृक्ष का सूखा हुआ सफेद पत्ता गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन है । अतः गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[२९२] कुश-डाभ के अग्र भाग पर टिके हुए ओस के बिन्दु की तरह मनुष्य का जीवन क्षणिक है । इसलिए गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[२९३] अल्पकालीन आयुष्य में, विघ्नों से प्रतिहत जीवन में ही पूर्वसंचित कर्मरज को दूर करना है, गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[२९४] विश्व के सब प्राणियों को चिरकाल में भी मनुष्य भव की प्राप्ति दुर्लभ है । कर्मों का विपाक तीव्र है । इसलिए गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[२९५-२९९] पृथ्वीकाय में, अप्काय में, तेजस् काय में, वायुकाय में असंख्यात काल तक रहता है । अतः गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर । और वनस्पतिकाय में गया हुआ जीव उत्कर्षतः दुःख से समाप्त होने वाले अनन्त काल तक रहता है । अतः गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर ।

[३००-३०२] द्वीन्द्रिय...त्रीन्द्रिय में...और चतुस्त्रिय में गया हुआ जीव उत्कर्षतः संख्यात काल तक रहता है । इसलिए गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर ।

[३०३] पंचेन्द्रिय काय में गया हुआ जीव उत्कर्षतः सात आठ भव तक रहता है । इसलिए गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[३०४] देव और नरक योनि में गया हुआ जीव उत्कर्षतः एक-एक भव ग्रहण करता है । अतः गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[३०५] प्रमादबहुल जीव शुभाशुभ कर्मों के कारण संसार में परिभ्रमण करता है । इसलिए गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर ।

[३०६-३१०] दुर्लभ मनुष्य जीवन पाकर भी आर्यत्व पाना दुर्लभ है । मनुष्य होकर भी बहुत से लोग दस्यु और म्लेच्छ होते हैं । आर्यत्व की प्राप्ति होने पर भी अविकल पंचेन्द्रियत्व की प्राप्ति दुर्लभ है । बहुत से जीवों को विकलन्द्रियत्व भी देखा जाता है । अविकल पंचेन्द्रियत्व की प्राप्ति होने पर भी श्रेष्ठ धर्म का श्रवण पुनः दुर्लभ है । कुतीर्थिकों की उपासना करनेवाले भी देखे जाते हैं । उत्तम धर्म की श्रुति मिलने पर भी श्रद्धा होना दुर्लभ

है । बहुत से लोग मिथ्यात्व का सेवन करते हैं । धर्म श्रद्धा होने पर भी तदनुरूप आचरण होना दुर्लभ है । बहुत से धर्मश्रद्धालु भी काम भोगों में आसक्त हैं । अतः गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर ।

[३११-३१६] तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है, बाल सफेद हो रहे हैं । श्रवणशक्ति कमजोर हो रही है । शरीर जीर्ण हो रहा है, आँखों की शक्ति क्षीण हो रही है । घ्राण शक्ति हीन हो रही है । रसग्राहक जिह्वा की शक्ति नष्ट हो रही है । स्पर्शशक्ति क्षीण हो रही है । सारी शक्ति ही क्षीण हो रही है । इस स्थिति में गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[३१७] वात-विकार आदि से जन्य चित्तोद्वेग, फोड़ा-फुन्सी, विसूचिका तथा अन्य भी शीघ्र-घाती विविध रोग से शरीर गिर जाता है, विध्वस्त हो जाता है । अतः गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर ।

[३१८] जैसे शरद्-कालीन कुमुद पानी से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तू भी अपना सभी प्रकार का स्नेह का त्याग कर, गौतम ! इसमें तू समय मात्र भी प्रमाद मत कर ।

[३१९] धन और पत्नी का परित्याग कर तू अनगार वृत्ति में दीक्षित हुआ है । अतः एक बार वमन किए गए भोगों को पुनः मत पी, गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[३२०] मित्र, बान्धव और विपुल धनराशि को छोड़कर पुनः उनकी गवेषणा मत कर । हे गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[३२१] भविष्य में लोग कहेंगे—‘आज जिन नहीं दीख रहे हैं और जो मार्गदर्शक हैं भी, वे एक मत के नहीं हैं ।’ किन्तु आज तुझे न्यायपूर्ण मार्ग उपलब्ध है । अतः गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[३२२] कंटकाकीर्ण पथ छोड़कर तू साफ राज-मार्ग पर आ गया है । अतः दृढ़ श्रद्धा के साथ इस मार्ग पर चल । गौतम ! समय मात्र का प्रमाद मत कर ।

[३२३] कमजोर भारवाहक विषम मार्ग पर जाता है, तो पश्चात्ताप करता है, गौतम ! तुम उसकी तरह विषम मार्ग पर मत जाओ । अन्यता बाद में पछताना होगा । गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[३२४] हे गौतम ! तू महासागर को तो पार कर गया है, अब तीर के निकट पहुँच कर क्यों खड़ा है ? उसको पार करने में जल्दी कर । गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर ।

[३२५] तू देहमुक्त सिद्धत्व को प्राप्त कराने वाली क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो कर क्षेम, शिव और अनुत्तर सिद्धि लोक को प्राप्त करेगा । अतः गौतम ! क्षण भर का भी प्रमाद मत कर ।

[३२६] बुद्ध-तत्त्वज्ञ और उपशान्त होकर पूर्ण संयतभाव से तू गाँव एवं नगर में विचरण कर । शान्ति मार्ग को बढ़ा । गौतम ! इसमें समय मात्र का भी प्रमाद मत कर ।

[३२७] अर्थ और पद से सुशोभित एवं सुकथित भगवान की वाणी को सुनकर, राग द्वेष का छेदन कर गौतम सिद्धि गति को प्राप्त हुए । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-१०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-११-बहुश्रुतपूजा

[३२८] सांसारिक बन्धनों से रहित अनासक्त गृहत्यागी भिक्षु के आचार का मैं यथाक्रम कथन करूंगा, उसे तुम मुझसे सुनो ।

[३२९] जो विद्याहीन है, और विद्यावान् होकर भी अहंकारी है, अजितेन्द्रिय है, अविनीत है, बार-बार असंबद्ध बोलता है—वह अबहुश्रुत है ।

[३३०] इन पांच कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं होती है—अभिमान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य ।

[३३१-३३२] जो हँसी-मजाक नहीं करता, सदा दान्त रहता है, किसी का मर्म प्रकाशित नहीं करता, अशील, न हो, विशील न हो, रसलोलुप न हो, क्रोध न करता हो, सत्य में अनुक्त हो, इन आठ स्थितियों में व्यक्ति शिक्षाशील होता है ।

[३३२-३३६] चौदह प्रकार से व्यवहार करने वाला संयत-मुनि अविनीत कहलाता है और वह निर्वाण प्राप्त नहीं करता । जो बार बार क्रोध करता है, क्रोध को लम्बे समय तक बनाये रखता है, मित्रता को टुकराता है, श्रुत प्राप्त कर अहंकार करता है—स्खलना होने पर दूसरों का तिरस्कार करता है, मित्रों पर क्रोध करता है, प्रिय मित्रों की भी एकान्त में बुराई करता है—असंबद्ध प्रलाप करता है, द्रोही है, अभिमानी है, रसलोलुप है, अजितेन्द्रिय है, असंविभागी है और अप्रीतिकर है । व अविनीत है ।

[३३७-३४०] पन्द्रह कारणों से सुविनीत कहलाता है—जो नम्र है, अचपल है, दम्भी नहीं है, अकुतूहली है—किसी की निन्दा नहीं करता, जो क्रोध को लम्बे समय तक पकड़ कर नहीं रखता, मित्रों के प्रति कृतज्ञ है, श्रुत को प्राप्त करने पर अहंकार नहीं करता—स्खलना होने पर दूसरों का तिरस्कार नहीं करता । मित्रों पर क्रोध नहीं करता । जो अप्रिय मित्र के लिए भी एकान्त में भलाई की ही बात करता है—वाक्-कलह और मारपीट, नहीं करता, अभिजात है, लज्जाशील है, प्रतिसंलीन वह बुद्धिमान् साधु विनीत होता है ।

[३४१] जो सदा गुरुकुल में रहता है, योग और उपधान में निरत है, प्रिय करनेवाला और प्रियभाषी है, वह शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

[३४२] जैसे शंख में रखा हुआ दूध स्वयं अपने और अपने आधार के गुणों के कारण दोनों ओर से सुशोभित रहता है, उसी तरह बहुश्रुत भिक्षु में धर्म, कीर्ति और श्रुत भी सुशोभित होते हैं ।

[३४३] जिस प्रकार कम्बोज देश के अश्वों में कन्थक घोड़ा जातिमान् और वेग में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत श्रेष्ठ होता है ।

[३४४] जैसे जातिमान् अश्व पर आरूढ दृढ पराक्रमी शूवीर योद्धा दोनों तरफ होने वाले नान्दी घोषों से—सुशोभित होता है, वैसे बहुश्रुत भी सुशोभित होता है ।

[३४५] जिस प्रकार हथिनियों से घिरा हुआ साठ वर्ष का बलवान् हाथी किसी से पराजित नहीं होता, वैसे बहुश्रुत भी किसी से पराजित नहीं होता ।

[३४६] जैसे तीक्ष्ण सींगोंवाला, बलिष्ठ कंधों वाला वृषभ-यूथ के अधिपति के रूप में सुशोभित होता है, वैसे ही बहुश्रुत मुनि भी गण के अधिपति के रूप में सुशोभित होता है ।



[३४७] जैसे तीक्ष्ण दाढ़ों वाला पूर्ण युवा एवं दुष्पराजेय सिंह पशुओं में श्रेष्ठ होता है, वैसे बहुश्रुत भी अन्य तीर्थिकों में श्रेष्ठ होता है ।

[३४८] जैसे शंख, चक्र और गदा को धारण करनेवाला वासुदेव अपराजित बलवाला योद्धा होता है, वैसे बहुश्रुत भी अपराजित बलशाली होता है ।

[३४९] जैसे महान ऋद्धिशाली चातुरन्त चक्रवर्ती चौदह रत्नों का स्वामी होता है, वैसे ही बहुश्रुत भी चौदह पूर्वों की विद्या का स्वामी होता है ।

[३५०] जैसे सहस्रचक्षु, वज्रपाणि, पुन्दर शक्र देवों का अधिपति होता है, वैसे बहुश्रुत भी होता है ।

[३५१] जैसे अन्धकार का नाशक उदीयमान सूर्य तेज से जलता हुआ-सा प्रतीत होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी तेजस्वी होता है ।

[३५२] जैसे नक्षत्रों के परिवार से परिवृत, चन्द्रमा पूर्णिमा को परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी ज्ञानादि की कलाओं से परिपूर्ण होता है ।

[३५३] जिस प्रकार व्यापारी आदि का कोष्ठागार सुरक्षित और अनेक प्रकार के धान्यों से परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी नाना प्रकार के श्रुत से परिपूर्ण होता है ।

[३५४] 'अनादृत' देवका 'सुदर्शन' नामक जम्बू वृक्ष जिस प्रकार सब वृक्षों में श्रेष्ठ होता है, वैसे ही बहुश्रुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

[३५५] जिस प्रकार नीलवंत वर्षधर पर्वत से निकली हुई जलप्रवाह से परिपूर्ण, समुद्रगामिनी सीता नदी सब नदियों में श्रेष्ठ है, इसी प्रकार बहुश्रुत भी सर्वश्रेष्ठ होता है ।

[३५६] जैसे कि नाना प्रकार की औषधियों से दीप्त महान् मंदर-मेरु पर्वत सब पर्वतों में श्रेष्ठ है, ऐसे ही बहुश्रुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

[३५७] जिस प्रकार सदैव अक्षय जल से परिपूर्ण स्वयंभूरमण समुद्र नानाविध रत्नों से परिपूर्ण रहता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी अक्षय ज्ञान से परिपूर्ण होता है ।

[३५८] समुद्र के समान गम्भीर, दुरासद, अविचलित, अपराजेय, विपुल श्रुतज्ञान से परिपूर्ण, त्राता-ऐसे बहुश्रुत मुनि कर्मों को क्षय करके उत्तम गति को प्राप्त हुए हैं ।

[३५९] मोक्ष की खोज करने वाला मुनि श्रुत का आश्रय ग्रहण करे, जिससे वह स्वयं को और दूसरों को भी सिद्धि प्राप्त करा सके । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-१२-हरिकेशीय

[३६०] हरिकेशबल-चाण्डालकुल में उत्पन्न हुए थे, फिर भी ज्ञानादि उत्तम गुणों के धारक और जितेन्द्रिय भिक्षु थे ।

[३६१] वे ईर्या, एषणा, भाषा, उच्चार, आदान-निक्षेप-इन पाँच समितियों में यत्नशील समाधिस्थ संयमी थे ।

[३६२] मन, वाणी और काय से गुप्त जितेन्द्रिय मुनि, भिक्षा के लिए यज्ञमण्डप में गये, जहाँ ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे ।

[३६३] तप से उनका शरीर सूख गया था और उनके उपधि एवं उपकरण भी प्रान्त थे । उक्त स्थिति में मुनि को आते देखकर अनार्य उनका उपहास करने लगे ।

[३६४] जातिमद से प्रतिस्तब्ध-दस, हिंसक, अजितेन्द्रिय, अब्रह्मचारी और अज्ञानी लोगों ने इस प्रकार कहा—

[३६५-३६६] “बीभत्स रूपवाला, काला, विकराल, बेडोल मोटी नाकवाला, अल्प एवं मलिन वस्त्रवाला, धूलिधूसरित होने से भूत की तरह दिखाई देनेवाला, गले में संकरदूष्य धारण करनेवाला यह कौन आ रहा है ?” “अरे अदर्शनीय ! तू कौन है ? यहाँ किस आशा से आया है तू ? गंदे और धूलिधूसरित वस्त्र से तू अधनंगा पिशाच की तरह दीख रहा है । जा, भाग यहाँ से यहाँ क्यों खड़ा है ?”

[३६७-३६९] उस समय महामुनि के प्रति अनुकम्पा का भाव रखनेवाले तिन्दुक वृक्षवासी यक्ष ने अपने शरीर को छुपाकर ऐसे वचन कहे—“मैं श्रमण हूँ । मैं संयत हूँ । मैं ब्रह्मचारी हूँ । मैं धन, पचन और परिग्रह का त्यागी हूँ । भिक्षा के समय दूसरों के लिए निष्पन्न आहार के लिए यहाँ आया हूँ ।” “यहाँ प्रचुर अन्न दिया, खाया और उपभोग में लाया जा रहा है । आपको मालूम होना चाहिए, मैं भिक्षाजीवी हूँ । अतः बचे हुए अन्न में से कुछ इस तपस्वी को भी मिल जाए ।”

[३७०] रुद्रदेव—“यह भोजन केवल ब्राह्मणों के लिए तैयार किया गया है । यह एकपक्षीय है, अतः दूसरों के लिए अदेय है । हम तुझे यह यज्ञार्थनिष्पन्न अन्न जल नहीं देंगे । फिर तू यहाँ क्यों खड़ा है ?”

[३७१] यक्ष—“अच्छी फसल की आशा से किसान जैसे ऊंची और नीची भूमि में भी बीज बोते हैं । इस कृषकदृष्टि से ही मुझे दान दो । मैं भी पुण्यक्षेत्र हूँ, अतः मेरी भी आराधना करो ।”

[३७२] रुद्रदेव—“संसार में ऐसे क्षेत्र हमें मालूम हैं, जहाँ बोये गए बीज पूर्ण रूप से उग आते हैं । जो ब्राह्मण जाति और विद्या से सम्पन्न हैं, वे ही पुण्यक्षेत्र हैं ।

[३७३-३७४] यक्ष—“जिनमें क्रोध, मान, हिंसा, झूठ, चोरी और परिग्रह हैं, वे ब्राह्मण जाति और विद्या से विहीन पापक्षेत्र हैं ।” “हे ब्राह्मणो ! इस संसार में आप केवल वाणी का भार ही वहन कर रहे हो । वेदों को पढ़कर भी उनके अर्थ नहीं जानते । जो मुनि भिक्षा के लिए समभावपूर्वक ऊंच नीच घरों में जाते हैं, वे ही पुण्य-क्षेत्र है ।”

[३७५] रुद्रदेव—“हमारे सामने अध्यापकों के प्रति प्रतिकूल बोलने वाले निर्ग्रन्थ ! क्या बकवास कर रहा है ? यह अन्न जल भले ही सड़ कर नष्ट हो जाय, पर, हम तुझे नहीं देंगे ।”

[३७६] यक्ष—“मैं समितियों से सुसमाहित हूँ, गुप्तियों से गुप्त हूँ और जितेन्द्रिय हूँ । यह एषणीय आहा यदि नहीं देते हो, तो आज इन यज्ञों का तुम क्या लाभ लोगे ?”

[३७७-३७९] रुद्रदेव—“यहाँ कोई हैं क्षत्रिय, उपज्योतिष-रसोइये, अध्यापक और छात्र, जो इस निर्ग्रन्थ को डण्डे से, फलक से पीट कर और कण्ठ पकड़ कर निकाल दें ।” यह सुनकर बहुत से कुमार दौड़ते हुए आए और दण्डों से, बेटों से, चाबुकों से ऋषि को पीटने लगे । राजा कौशलिक की अनिन्द्य सुंदरी कन्या भद्रा ने मुनि को पीटते देखकर क्रुद्ध कुमारों को रोका ।

[३८०-३८२] भद्रा—“देवता की बलवती प्रेरणा से राजा ने मुझे इस मुनि को दिया

था, किन्तु मुनि ने मुझे मन से भी नहीं चाहा । मेरा परित्याग करने वाले यह ऋषि नरेन्द्रों और देवेन्द्रों से भी पूजित हैं ।” —“ये वही उग्र तपस्वी, महात्मा, जितेन्द्रिय, संयमी और ब्रह्मचारी हैं, जिन्होंने स्वयं मेरे पिता राजा कौशलिक के द्वारा मुझे दिये जाने पर भी नहीं चाहा ।” —“ये ऋषि महान् यशस्वी, महानुभाग, घोखती, घोर पराक्रमी हैं । ये अवहेलना के योग्य नहीं हैं । अतः इनकी अवहेलना मत करो । ऐसा न हो कि, अपने तेज से कहीं यह तुम सबको भस्म कर दें ।”

[३८३] उस के इन सुभाषित वचनों को सुनकर ऋषि की सेवा के लिए यक्ष कुमारों को रोकने लगे ।

[३८४-३८७] आकाश में स्थित भयंकर रूप वाले असुरभावापन्न क्रुद्ध यक्ष उन को प्रताड़ित करने लगे । कुमारों को क्षत-विक्षत और खून की उल्टी करते देखकर भद्रा ने पुनः कहा—“जो भिक्षु का अपमान करते हैं, वे नखों से पर्वत खोदते हैं, दातों से लोहा चबाते हैं और पैरों से अग्नि को कुचलते हैं ।” —“महर्षि आशीविष, घोर तपस्वी, घोखती, घोर पराक्रमी हैं । जो लोग भिक्षाकाल में मुनि को व्यथित करते हैं, वे पतंगों की भाँति अग्नि में गिरते हैं ।” —“यदि तुम अपना जीवन और धन चाहते हो, तो सब मिलकर, नतमस्तक होकर, इनकी शरण लो । यह ऋषि कुपित होने पर समूचे विश्व को भी भस्म कर सकता है ।”

[३८८] मुनि को प्रताड़ित करने वाले छात्रों के सिर पीठ की ओर झुक गये थे । भुजाएँ फैल गई थीं । निश्चेष्ट हो गये थे । आंखें खुली ही रह गई थीं । मुंह से रुधिर निकलने लगा था । मुंह ऊपर को हो गये थे । जीभें और आंखें बाहर निकल आयी थीं ।

[३८९-३९०] इस प्रकार छात्रों को काठ की तरह निश्चेष्ट देख कर वह उदास और भयभीत ब्राह्मण अपनी पत्नी को साथ लेकर मुनि को प्रसन्न करने लगा—“भन्ते ! हमने तथा मूढ़ अज्ञानी बालकों ने आपकी जो अवहेलना की है, आप उन्हें क्षमा करें । ऋषिजन महान् प्रसन्नचित्त होते हैं, अतः वे किसी पर क्रोध नहीं करते हैं ।

[३९१] मुनि—“मेरे मन में न कोई द्वेष पहले था, न अब है, और न आगे होगा । यक्ष सेवा करते हैं, उन्होंने ही कुमारों को प्रताड़ित किया है ।”

[३९२-३९४] रुद्रदेव—“धर्म और अर्थ को यथार्थ रूप से जाननेवाले भूतिप्रज्ञ आप क्रोध न करे । हम सब मिलकर आपके चरणों में आए हैं, शरण ले रहे हैं । “महाभाग ! हम आपकी अर्चना करते हैं । अब आप दधि आदि नाना व्यंजनों से मिश्रित शालिचावलों से निष्पन्न भोजन खाइए ।” —“यह हमारा प्रचुर अन्न है । हमारे अनुग्रहार्थ इसे स्वीकार करें ।” —पुरोहित के इस आग्रह पर महान् आत्मा मुनि ने स्वीकृति दी और एक मास की तपश्चर्या के पारणे के लिए आहार-पानी ग्रहण किया ।

[३९५-३९६] देवों ने वहाँ सुगन्धित जल, पुष्प एवं दिव्य धन की वर्षा को और दुन्दुभियाँ बजाई, आकाश में ‘अहो दानम्’ का घोष किया । प्रत्यक्ष में तप की ही विशेषता-महिमा देखी जा रही है, जाति की नहीं । जिसकी ऐसी महान् चमत्कारी ऋद्धि है, वह हरिकेश मुनि—चाण्डाल पुत्र है ।

[३९७-३९८] मुनि—“ब्राह्मणो ! अग्नि का समारम्भ करते हुए क्या तुम बाहर से—जल से शुद्धि करना चाहते हो ? जो बाहर से शुद्धि को खोजते हैं उन्हें कुशल पुरुष सुदृष्ट—नहीं



कहते ।” “कुश, यूप, तृण, काष्ठ और अग्नि का प्रयोग तथा प्रातः और संध्या में जल का स्पर्श—इस प्रकार तुम मन्द-बुद्धि लोग, प्राणियों और भूत जीवों का विनाश करते हुए पापकर्म कर रहे हो ।”

[३९९] “हे भिक्षु ! हम कैसे प्रवृत्ति करें ? कैसे यज्ञ करें ? कैसे पाप कर्मों को दूर करें ? हे यक्षपूजित संयत ! हमें बताएँ कि तत्त्वज्ञ पुरुष श्रेष्ठ यज्ञ कौन-सा बताते हैं ?”

[४००-४०१] मुनि—“मन और इन्द्रियों को संयमित रखने वाले मुनि पृथ्वी आदि छह जीवनिकाय की हिंसा नहीं करते हैं, असत्य नहीं बोलते हैं, चोरी नहीं करते हैं; परिग्रह, स्त्री, मान और माया को स्वरूपतः जानकर एवं छोड़कर विचरण करते हैं ।” —“जो पांच संवरों से पूर्णतया संवृत होते हैं, जीवन की आकांक्षा नहीं करते, शरीर का परित्याग करते हैं, पवित्र हैं, विदेह हैं, वे वासनाओं पर विजय पाने वाला महाजयी श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं ।”

[४०२] “हे भिक्षु ! तुम्हारी ज्योति कौनसी है ? ज्योति स्थान कौनसा है ? घृतादिप्रक्षेपक कड़खी क्या है ? अग्नि को प्रदीत करनेवाले कण्डे कौनसे हैं ? तुम्हारा ईंधन और शांतिपाठ कौन-सा है ? किस होम से आप ज्योति को प्रज्वलित करते हैं ?”

[४०३] मुनि—“तप ज्योति है । जीव-आत्मा ज्योति का स्थान है । मन, वचन और काया का योग कड़खी है । शरीर कण्डे हैं । कर्म ईंधन है । संयम की प्रवृत्ति शांति-पाठ है । ऐसा मैं प्रशस्त यज्ञ करता हूँ ।”

[४०४] —“हे यक्षपूजित संयत ! हमें बताइए कि तुम्हारा द्रह कौनसा है ? शांति-तीर्थ कौनसे हैं ? कहाँ स्नान कर रज दूर करते हो ? हम आपसे जानना चाहते हैं ?”

[४०५-४०६] मुनि—“आत्मभाव की प्रसन्नतारूप अकलुष लेश्यावाला धर्म मेरा हृद है, जहाँ स्नानकर मैं विमल, विशुद्ध एवं शान्त होकर कर्मरज को दूर करता हूँ ।” “कुशल पुरुषों ने इसे ही स्नान कहा है । ऋषियों के लिए यह महान् स्नान ही प्रशस्त है । इस धर्महृद में स्नान करके महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान को प्राप्त हुए हैं ।” —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-१३-चित्रसम्भूतीय

[४०७] जाति से पराजित संभूत मुनि ने हस्तिनापुर में चक्रवर्ती होने का निदान किया था । वहाँ से मरकर वह पद्मगुल्म विमान में देव बना । फिर ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप में चुलनी की कुक्षि से जन्म लिया ।

[४०८] सम्भूत काम्पिल्य नगर में और चित्र पुरिमताल नगर में, विशाल श्रेष्ठिकुल में, उत्पन्न हुआ । और वह धर्म सुनकर प्रव्रजित हो गया ।

[४०९] काम्पिल्य नगर में चित्र और सम्भूत दोनों मिले । उन्होंने परस्पर सुख और दुःख रूप कर्मफल के विपाक के सम्बन्ध में बातचीत की ।

[४१०] महान् ऋद्धिसंपन्न एवं महान् यशस्वी चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने अतीव आदर के साथ अपने भाई को इस प्रकार कहा—

[४११-४१३] “इसके पूर्व हम दोनों परस्पर वशवर्ती, अनुरक्त और हितैषी भाई-भाई थे ।” —“हम दोनों दशार्ण देश में दास, कालिंजर पर्वत पर हरिण, मृत-गंगा के किनारे हंस

और काशी देश में चाण्डाल थे ।” —“देवलोक में महान् ऋद्धि से सम्पन्न देव थे । यह हमारा छठवां भव है, जिसमें हम एक दूसरे को छोड़कर पृथक्-पृथक् पैदा हुए हैं ।”

[४१४] —“राजन् ! तूने निदानकृत कर्मों का विशेष रूप से चिन्तन किया । उसी कर्मफल के विपाक से हम अलग-अलग पैदा हुए हैं ।”

[४१५] —“चित्र ! पूर्व जन्म में मेरे द्वारा किए गए सत्य और शुद्ध कर्मों के फल को आज मैं भोग रहा हूँ, क्या तुम भी वैसे ही भोग रहे हो ?”

[४१६-४१८] मुनि—“मनुष्यों के द्वारा समाचरित सब सत्कर्म सफल होते हैं । किए हुए कर्मों के फल को भोगे बिना मुक्ति नहीं है । मेरी आत्मा भी उत्तम अर्थ और कामों के द्वारा पुण्यफल से युक्त रही है ।” —“सम्भूत ! जैसे तुम अपने आपको भाग्यवान्, महान् ऋद्धि से संपन्न और पुण्यफल से युक्त समझते हो, वैसे चित्र को भी समझो । राजन् ! उसके पास भी प्रचुर ऋद्धि और द्युति रही है । —“स्थविरों ने जनसमुदाय में अल्पाक्षर, किन्तु महार्थ-गाथा कही थी, जिसे शील और गुणों से युक्त भिक्षु यत्न से अर्जित करते हैं । उसे सुनकर मैं श्रमण हो गया ।”

[४१९-४२०] चक्रवर्ती—उद्योदय, मधु, कर्क, मध्य और ब्रह्मा-ये मुख्य प्रासाद तथा और भी अनेक रमणीय प्रासाद हैं । पांचाल देश के अनेक विशिष्ट पदार्थों से युक्त तथा प्रचुर एवं विविध धन से परि-पूर्ण इन गृहों को स्वीकार करो ।” —“तुम नाट्य, गीत और वाद्यों के साथ स्त्रियों से घिरे हुए इन भोगों को भोगो । मुझे यही प्रिय है । प्रव्रज्या निश्चय से दुःखप्रद है ।”

[४२१] उस राजा के हितैषी धर्म में स्थित चित्र मुनि ने पूर्व भव के स्नेह से अनुरक्त एवं कामभोगों में आसक्त राजा को इस प्रकार कहा—

[४२२-४२३] “सब गीत-गान विलाप हैं । समस्त नाट्य विडम्बना हैं । सब आभरण भार हैं । और समग्र काम-भोग दुःखप्रद हैं ।” —“अज्ञानियों को सुन्दर दिखनेवाले, किन्तु वस्तुतः दुःखकर कामभोगों में वह सुख नहीं है, जो सुख शीलगुणों में रत, कामनाओं से निवृत्त तपोधन भिक्षुओं को है ।”

[४२४-४२६] “हे नरेन्द्र ! मनुष्यों में जो चाण्डाल जाति अधम जाति मानी जाती है, उसमें हम दोनों उत्पन्न हो चुके हैं, चाण्डालों की बस्ती में हम दोनों रहते थे, जहाँ सभी लोग हमसे द्वेष करते थे ।” —“उस जाति में हमने जन्म लिया था और वहीं हम दोनों रहे थे । तब सभी हमसे धृणा करते थे । अतः यहां जो श्रेष्ठता प्राप्त है, वह पूर्व जन्म के शुभ कर्मों का फल है ।” —“पूर्व शुभ कर्मों के फलस्वरूप इस समय वह तू अब महानुभाग, महान् ऋद्धिवाला राजा बना है । अतः तू क्षणिक भोगों को छोड़कर चास्त्रि धर्म की आराधना के हेतु अभिनिष्क्रमण कर ।”

[४२७-४३१] —“राजन् ! इस अशाश्वत मानवजीवन में जो विपुल पुण्यकर्म नहीं करता है, वह मृत्यु के आने पर पश्चात्ताप करता है और धर्म न करने के कारण परलोक में भी पश्चात्ताप करता है ।” —“जैसे कि यहाँ सिंह हरिण को पकड़कर ले जाता है, वैसे ही अन्तकाल में मृत्यु मनुष्य को ले जाता है । मृत्यु के समय में उसके मात-पिता और भाई कोई भी मृत्युदुःख में हिस्सेदार नहीं होते हैं ।” —“उसके दुःख को न जाति के लोग बँटा

सकते हैं और न मित्र, पुत्र तथा बन्धु ही । वह स्वयं अकेला ही प्राप्त दुःखों को भोगता है, क्योंकि कर्म कर्ता के ही पीछे चलता है ।” —“सेवक, पशु, खेत, घर, धन-धान्य आदि सब कुछ छोड़कर यह पराधीन जीव अपने कृत कर्मों को साथ लिए सुन्दर अथवा असुन्दर परभव को जाता है ।” —“जीवरहित उस एकाकी तुच्छ शरीर को चिता में अग्नि से जलाकर स्त्री, पुत्र और जाति-जन किसी अन्य आश्रयदाता का अनुसरण करते हैं ।”

[४३२] —“राजन् ! कर्म किसी प्रकार का प्रमाद किए बिना जीवन को हर क्षण मृत्यु के समीप ले जा रहा है, और यह जरा मनुष्य की कान्ति का हरण कर रही है । पांचालराज ! मेरी बात सुनो । प्रचुर अपकर्म मत करो ।”

[४३३] —“हे साधो ! जैसे कि तुम मुझे बता रहे हो, मैं भी जानता हूँ कि ये कामभोग बन्धनरूप हैं, किन्तु आर्य ! हमारे-जैसे लोगों के लिए तो ये बहुत दुर्जय हैं ।”

[४३४-४३६] —“चित्र ! हस्तिनापुर में महान् ऋद्धि वाले चक्रवर्ती राजा को देखकर भोगों में आसक्त होकर मैंने अशुभ निदान किया था ।” —“उस का प्रतिक्रमण नहीं किया । उसी कर्म का यह फल है कि धर्म को जानता हुआ भी मैं कामभोगों में आसक्त हूँ, ” “जैसे दलदल में धंसा हाथी स्थल को देखकर भी किनारे पर नहीं पहुँच पाता है, वैसे ही हम कामभोगों में आसक्त जन जानते हुए भी भिक्षुमाग का अनुसरण नहीं कर पाते हैं ।”

[४३७-४३९] —“राजन् ! समय व्यतीत हो रहा है, रातें दौड़ती जा रही हैं । मनुष्य के भोग नित्य नहीं है । काम-भोग क्षीणपुण्यवाले व्यक्ति को वैसे ही छोड़ देते हैं, जैसे कि क्षीण फलवाले वृक्ष को पक्षी ।” “यदि तू काम-भोगों को छोड़ने में असमर्थ है, तो आर्य कर्म ही कर । धर्म में स्थित होकर सब जीवों के प्रति दया करने वाला बन, जिससे कि तू भविष्य में वैक्रियशरीरधारी देव हो सके ।” —“भोगों को छोड़ने की तेरी बुद्धि नहीं है । तू आरम्भ और परिग्रह में आसक्त है । मैंने व्यर्थ ही तुझ से इतनी बातें की, तुझे सम्बोधित किया । राजन् ! मैं जा रहा हूँ ।”

[४४०] पांचाल देश का राजा ब्रह्मदत्त मुनि के वचनों का पालन न कर सका, अतः अनुत्तर भोगों को भोगकर अनुत्तर नरक में गया ।

[४४१] कामभोगों से निवृत्त, उग्र चारित्री एवं तपस्वी महर्षि चित्र अनुत्तर संयम का पालन करके अनुत्तर सिद्धिगति को प्राप्त हुए । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-१४-इषुकारीय

[४४२] देवलोक के समान सुरम्य, प्राचीन, प्रसिद्ध और समृद्धिशाली इषुकार नगर था । उसमें पूर्वजन्म में एक ही विमान के वासी कुछ जीव देवताका आयुष्य पूर्ण कर अवतरित हुए ।

[४४३] पूर्वभव में कृत अपने अवशिष्ट कर्मों के कारण वे जीव उच्चकुलों में उत्पन्न हुए और संसारभय से उद्विग्न होकर कामभोगों का परित्याग कर जिनेन्द्रमार्ग की शरण ली ।

[४४४] पुरुषत्व को प्राप्त दोनमें पुरोहितकुमार, पुरोहित, उसकी पत्नी यशा, विशालकीर्ति वाला इषुकार राजा और उसकी रानी कमलावती—ये छह व्यक्ति थे ।

[४४५] जन्म, जरा और मरण के भय से अभिभूत कुमारों का चित्त मुनिदर्शन से मोक्ष



की ओर आकृष्ट हुआ, फलतः संसारचक्र से मुक्ति पाने के लिए वे कामगुणों से विरक्त हुए।

[४४६] यज्ञ-यागादि कर्म में संलग्न ब्राह्मण के ये दोनों प्रिय पुत्र अपने पूर्वजन्म तथा तत्कालीन सुचीर्ण तप-संयम को स्मरण कर विरक्त हुए ।

[४४७-४४८] मनुष्य तथा देवता-सम्बन्धी काम भोगों में अनासक्त मोक्षाभिलाषी, श्रद्धासंपन्न उन दोनों पुत्रों ने पिता के समीप आकर कहा—“जीवन की क्षणिकता को हमने जाना है, वह विघ्न वाधाओं से पूर्ण है, अल्पायु है । इसलिए घर में हमें कोई आनन्द नहीं मिल रहा है । अतः आपकी अनुमति चाहते हैं कि हम मुनिधर्म का आचरण करें ।”

[४४९-४५०] यह सुनकर पिता ने कुमार-मुनियों की तपस्या में वाधा उत्पन्न करने वाली यह बात की कि—“पुत्रो ! वेदों के ज्ञाता कहते हैं—जिनको पुत्र नहीं होता है, उनकी गति नहीं होती है ।” —“हे पुत्रो, पहले वेदों का अध्ययन करो, ब्राह्मणों को भोजन दो और विवाह कर स्त्रियों के साथ भोग भोगो । अनन्तर पुत्रों को घर का भार सौंप कर अरण्यवासी प्रशस्त-श्रेष्ठ मुनि बनना ।”

[४५१-४५२] अपने रागादि-गुणरूप इन्धन से प्रदीप्त एवं मोहरूप पवन से प्रज्वलित शोकाग्नि के कारण जिसका अन्तःकरण संतप्त तथा परितप्त है, जो मोहग्रस्त होकर अनेक प्रकार के बहुत अधिक दीनहीन वचन बोल रहा है—जो बार-बार अनुनय कर रहा है, धन का और क्रमप्राप्त काम भोगों का निमन्त्रण दे रहा है, उस अपने पिता पुरोहित को कुमारों ने अच्छी तरह विचार कर कहा—

[४५३-४५६] “पढ़े हुए वेद भी त्राण नहीं होते हैं । यज्ञ-यागादि के रूप में पशुहिंसा के उपदेशक ब्राह्मण भी भोजन कराने पर तमस्तम स्थिति में ले जाते हैं । औरस पुत्र भी रक्षा करनेवाले नहीं हैं । अतः आपके उक्त कथन का कौन अनुमोदन करेगा ?” — “ये काम-भोग क्षण भर के लिए सुख, तो चिरकाल तक दुःख देते हैं, अधिक दुःख और थोड़ा सुख देते हैं । संसार से मुक्त होने में बाधक हैं, अनर्थों की खान हैं ।” —“जो कामनाओं से मुक्त नहीं है, वह अतृप्ति के ताप से जलता हुआ पुरुष रात दिन भटकता है और दूसरों के लिए प्रमादाचरण करनेवाला वह धन की खोज में लगा हुआ एक दिन जरा और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ।” —“यह मेरे पास है, यह नहीं है । यह मुझे करना है, यह नहीं करना है—इस प्रकार व्यर्थ की बकवास करनेवाले व्यक्ति को अपहरण करने वाली मृत्यु उठा लेती है। उक्त स्थिति होने पर भी प्रमाद कैसा ?”

[४५७] पिता—“जिसकी प्राप्ति के लिए लोग तप करते हैं, वह विपुल धन, स्त्रियां, स्वजन और इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयभोग—तुम्हें यहां पर ही स्वाधीन रूप से प्राप्त हैं । फिर परलोक के इन सुखों के लिए क्यों भिक्षु बनते हो ?”

[४५८] पुत्र—“जिसे धर्म की धरा को वहन करने का अधिकार प्राप्त है, उसे धन, स्वजन तथा ऐन्द्रियिक विषयों का क्या प्रयोजन ? हम तो गुणसमूह के धारक, अप्रतिबद्धविहारी, शुद्ध भिक्षा ग्रहण करनेवाले श्रमण बनेंगे ।”

[४५९] —“पुत्रो ! जैसे अरणि में अग्नि, दूध में घी, तिलों में तेल असत् होता है, उसी प्रकार शरीर में जीव भी असत् होता है, शरीर का नाश होने पर जीव का कुछ भी अस्तित्व नहीं रहता ।”

[४६०-४६२] —“आत्मा अमूर्त है, अतः वह इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है । जो अमूर्त भाव होता है, वह नित्य होता । आत्मा के आन्तरिक रागादि हेतु ही निश्चित रूप से बन्ध के कारण हैं । और बन्ध को ही संसार का हेतु कहा है ।” —“जब तक हम धर्म के अनभिज्ञ थे, तब तक मोहवश पाप कर्म करते रहे, आपके द्वारा हम रोके गए और हमारा संरक्षण होता रहा । किन्तु अब हम पुनः पाप कर्म का आचरण नहीं करेंगे ।” —“लोक आहत है । चारों तरफ से घिरा है । अमोघा आ रही हैं । इस स्थिति में हम घर में सुख नहीं पा रहे हैं ।”

[४६३] —“पुत्रो ! यह लोक किससे आहत है ? किससे घिरा हुआ है ? अमोघा किसे कहते हैं ? यह जानने के लिए मैं चिन्तित हूँ ।”

[४६४-४६६] —“पिता ! आप अच्छी तरह जान ले कि यह लोक मृत्यु से आहत है, जरा से घिरा हुआ है । और रात्रि को अमोघा कहते हैं ।” —“जो जो रात्रि जा रही है, वह फिर लौट कर नहीं आती । अधर्म करने वाले की रात्रियां निष्फल जाती हैं ।” —“जो जो रात्रि जा रही है, वह फिर लौट कर नहीं आती । धर्म करनेवाले की रात्रियां सफल होती हैं ।”

[४६७] —“पुत्रो, पहले हम सब कुछ समय एक साथ रह कर सम्यक्त्व और व्रतों से युक्त हों । पश्चात् ढलती आयु में दीक्षित होकर घर-घर से भिक्षा ग्रहण करते हुए विचरेंगे ।”

[४६८-४६९] —“जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री है, जो मृत्यु के आने पर दूर भाग सकता है, अथा जो यह जानता है कि मैं कभी मरूंगा ही नहीं, वही आने वाले कल की आकांक्षा कर सकता है ।” —“हम आज ही राग को दूर करके श्रद्धा से युक्त मुनिधर्म को स्वीकार करेंगे, जिसे पाकर पुनः इस संसार में जन्म नहीं लेना होता है । हमारे लिए कोई भी भोग अभुक्त नहीं है, क्योंकि वे अनन्त बार भोगे जा चुके हैं ।

[४७०-४७१] प्रबुद्ध पुरोहित—“वाशिष्ठि ! पुत्रों के बिना इस घर में मेरा निवास नहीं हो सकता । भिक्षाचर्या का काल आ गया है । वृक्ष शाखाओं से ही सुन्दर लगता है । शाखाओं के कट जाने पर वह केवल टूट है ।” —“पंखों से रहित पक्षी, सेना से रहित राजा, जलपोत पर धन-रहित व्यापारी जैसे असहाय होता है वैसे ही पुत्रों के बिना मैं भी असहाय हूँ ।”

[४७३] पुरोहित पत्नी—“सुसंस्कृत एवं सुसंगृहीत कामभोग रूप प्रचुर विषयस्स जो हमें प्राप्त हैं, उन्हें पहले इच्छानुरूप भोग लें । उसके बाद हम मुनिधर्म के प्रधान मार्ग पर चलेंगे ।”

[४७२] पुरोहित—“भवति ! हम विषयस्सों को भोग चुके हैं । युवावस्था हमें छोड़ रही है । मैं जीवन के प्रलोभन में भोगों को नहीं छोड़ रहा हूँ । लाभ-अलाभ, सुख-दुख को समदृष्टि से देखता हुआ मैं मुनिधर्म का पालन करूंगा ।”

[४७४] पुरोहित-पत्नी—“प्रतिस्त्रोत में तैरने वाले बूढ़े हंस की तरह कहीं तुम्हें फिर अपने बन्धुओं को याद न करना पड़े ? अतः मेरे साथ भोगों को भोगो । यह भिक्षाचर्या और यह ग्रामानुग्राम विहार काफी दुःखरूप है ।”

[४७५-४७६] पुरोहित—“भवति ! जैसे सांप अपने शरीर की केंचुली को छोड़कर मुक्तमन से चलता है, वैसे ही दोनों पुत्र भोगों को छोड़ कर जा रहे हैं । अतः मैं क्यों न उनका

अनुगमन करूं ?” —“रोहित मत्स्य जैसे कमजोर जाल को काटकर बाहर निकल जाते हैं, वैसे ही धारण किए हुए गुरुतर संयमभार को वहन करने वाले प्रधान तपस्वी धीर साधक कामगुणों को छोड़कर भिक्षाचर्या को स्वीकार करते हैं ।”

[४७७-४७८] पुरोहित-पत्नी—“जैसे क्रौंच पक्षी और हंस बहेलियों द्वारा प्रसारित जालों को काटकर आकाश में स्वतन्त्र उड़ जाते हैं, वैसे ही मेरे पुत्र और पति भी छोड़कर जा रहे हैं । मैं भी क्यों न उनका अनुगमन करूं ?” —“पुत्र और पत्नी के साथ पुरोहित ने भोगों को त्याग कर अभिनिष्क्रमण किया है” — यह सुनकर उस कुटुम्ब की प्रचुर और श्रेष्ठ धनसंपत्ति की चाह रखने वाले राजा को रानी कमलावती ने कहा—

[४७९-४८०] रानी कमलावती—“तुम ब्राह्मण के द्वारा परित्यक्त धन को ग्रहण करने की इच्छा रखते हो । राजन् ! वमन को खाने वाला पुरुष प्रशंसनीय नहीं होता है ।” — “सारा जगत् और जगत् का समस्त धन भी यदि तुम्हारा हो जाय, तो भी वह तुम्हारे लिए अपर्याप्त ही होगा । और वह धन तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा ।”

[४८१-४८२] —“राजन् ! एक दिन इन मनोज्ञ काम गुणों को छोड़कर जब मरोगे, तब एक धर्म ही संरक्षक होगा । यहां धर्म के अतिरिक्त और कोई रक्षा करने वाला नहीं है ।” —“पक्षिणी जैसे पिंजरे में सुख का अनुभव नहीं करती है, वैसे ही मुझे भी यहाँ आनन्द नहीं है । मैं स्नेह के बंधनो को तोड़कर अकिंचन, सरल, निरासक्त, परिग्रह और हिंसा से निवृत्त होकर मुनि धर्म का आचरण करूंगी ।”

[४८३-४८४] —“जैसे कि वन में लगे दावानल में जन्तुओं को जलते देख रागद्वेष के कारण अन्य जीव प्रमुदित होते हैं ।” —“उसी प्रकार कामभोगों में मूर्च्छित हम मूढ लोग भी राग द्वेष की अग्नि में जलते हुए जगत् को नहीं समझ रहे हैं ।”

[४८५] —“आत्मवान् साधक भोगों को भोगकर और यथावसर उन्हें त्यागकर वायु की तरह अप्रतिबद्ध होकर विचरण करते हैं । अपनी इच्छानुसार विचरण करनेवाले पक्षियों की तरह प्रसन्नतापूर्वक स्वतन्त्र विहार करते हैं ।”

[४८६] —“आर्य ! हमारे हस्तगत हुए ये कामभोग, जिन्हें हमने नियन्त्रित समझ रखा है, वस्तुतः क्षणिक हैं । अभी हम कामनाओं में आसक्त हैं, किन्तु जैसे कि पुरोहित—परिवार बन्धनमुक्त हुआ , वैसे ही हम भी होंगे ।”

[४८७-४८९] —“जिस गीध पक्षी के पास मांस होता है, उसी पर दूसरे मांसभक्षी पक्षी झपटते हैं । जिसके पास मांस नहीं होता है, उस पर नहीं झपटते हैं । अतः मैं भी मांसोपम सब कामभोगों को छोड़कर निरामिष भाव से विचरण करूंगी ।” —“संसार को बढ़ाने वाले कामभोगों को गीध के समान जानकर, उनसे वैसे ही शंकित होकर चलना चाहिए, जैसे कि गरुड़ के समीप सांप ।” —“बन्धन को तोड़कर जैसे हाथी अपने निवास स्थान में चला जाता है, वैसे ही हमें भी अपने वास्तविक स्थान में चलना चाहिए । हे महाराज इषुकार ! यही एक मात्र श्रेयस्कर है, ऐसा मैंने ज्ञानियों से सुना है ।”

[४९०-४९१] विशाल राज्य को छोड़कर, दुस्त्यज कामभोगों का परित्याग कर, वे राजा और रानी भी निर्विषय, निरामिष, निःस्नेह और निष्परिग्रह हो गए । धर्म को सम्यक् रूप से जानकर, फलतः उपलब्ध श्रेष्ठ कामगुणों को छोड़कर, दोनों ही यथोपदिष्ट घोर तप को



स्वीकार कर संयम में घोर पराक्रमी बने ।

[४९२-४९४] इस प्रकार वे सब क्रमशः बुद्ध बने, धर्मपरायण बने, जन्म एवं मृत्यु के भय से उद्विग्न हुए, अतएव दुःख के अन्त की खोज में लग गे । जिन्होंने पूर्व जन्म में अनित्य एवं अशरण आदि भावनाओं से अपनी आत्मा को भावित किया था, वे सब राजा, रानी, ब्राह्मण पुरोहित, उसकी पत्नी और उनके दोनों पुत्र वीतराग अर्हत्-शासन में मोह को दूर कर थोड़े समय में ही दुःख का अन्त करके मुक्त हो गए । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-१५-स-भिक्षुक

[४९५] “धर्म को स्वीकार कर मुनिभाव का आचरण करूंगा”—उक्त संकल्प से जो ज्ञान दर्शनादि गुणों से युक्त रहता है, जिसका आचरण सरल है, निदानों को छेद दिया है, पूर्व परिचय का त्याग करता है, कामनाओं से मुक्त है, अपनी जाति आदि का परिचय दिए बिना ही जो भिक्षा की गवेषणा करता है और जो अप्रतिबद्ध भाव से विहार करता है, वह भिक्षु है ।

[४९६] जो राग से उपरत है, संयम में तत्पर है, आश्रव से विरत है, शास्त्रों का ज्ञाता है, आत्मरक्षक एवं प्राज्ञ है, रागद्वेष को पराजित कर सभी को अपने समान देखता है, किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं होता है, वह भिक्षु है ।

[४९७] कठोर वचन एवं वध—को अपने पूर्व-कृत कर्मों का फल जानकर जो धीर मुनि शान्त रहता है, संयम से प्रशस्त है, आश्रव से अपनी आत्मा को गुप्त किया है, आकुलता और हर्षातिरेक से रहित है, समभाव से सब कुछ सहनता है, वह भिक्षु है ।

[४९८] जो साधारण से साधारण आसन और शयन को समभाव से स्वीकार करता है, सर्दी-गर्मी तथा डांस-मच्छर आदि के उपसर्गों में हर्षित और व्यथित नहीं होता है, जो सब कुछ सह लेता है, वह भिक्षु है ।

[४९९] जो भिक्षु सत्कार, पूजा र वन्दना तक नहीं चाहता है, वह किसी से प्रशंसा की अपेक्षा कैसे करेगा ? जो संयत है, सुव्रती है, और तपस्वी है, निर्मल आचार से युक्त है, आत्मा की खोज में लगा है, वह भिक्षु है ।

[५००] स्त्री हो या पुरुष, जिसकी संगति से संयमी जीवन छूट जाये और सब ओर से पूर्ण मोह में बंध जाए, तपस्वी उस संगति से दूर रहता है, जो कुतूहल नहीं करता, वह भिक्षु है ।

[५०१] जो छिन्न, स्वर-विद्या, भौम, अन्तरिक्ष, स्वप्न, लक्षण, दण्ड, वास्तु-विद्या, अंगविकार और स्वर-विज्ञान इन विद्याओं से जो नहीं जीता है, वह भिक्षु है ।

[५०२] जो रोगादि से पीड़ित होने पर भी मंत्र, मूल आदि विचारणा, वमन, विरेचन, धूम्र पान की नली, स्नान, स्वजनों की शरण और चिकित्सा का त्याग कर अप्रतिबद्ध भाव से विचरण करता है, वह भिक्षु है ।

[५०३] क्षत्रिय, गण, उग्र, राजपुत्र, ब्राह्मण, भोगिक और सभी प्रकार के शिल्पियों की पूजा तथा प्रशंसा में जो कभी कुछ भी नहीं कहता है, किन्तु इसे हेय जानकर विचरता है, वह भिक्षु है ।

[५०४] जो व्यक्ति प्रव्रजित होने के बाद अथवा जो प्रव्रजित होने से पहले के परिचित हों, उनके साथ इस लोक के फल की प्राप्ति हेतु जो संस्तव नहीं करता है, वह भिक्षु है ।

[५०५] शयन, आसन, पान, भोजन और विविध प्रकार के खाद्य एवं स्वाद्य कोई स्वयं न दे अथवा माँगने पर भी इन्कार कर दे तो जो निर्ग्रन्थ उनके प्रति द्वेष नहीं रखता है, वह भिक्षु है ।

[५०६] गृहस्थों से विविध प्रकार के अशनपान एवं खाद्य-स्वाद्य प्राप्त कर जो मन-वचन-काया से अनुकंपा नहीं करता है, अपितु मन, वचन और काया से पूर्ण संवृत रहता है, वह भिक्षु है ।

[५०७] ओसामन, जौ से बना भोजन, ठंडा भोजन, कांजी का पानी, जौ का पानी-जैसे नीरस भिक्षा की जो निंदा नहीं करता है, अपितु भिक्षा के लिए साधारण घरों में जाता है, वह भिक्षु है ।

[५०८] संसार में देवता, मनुष्य और तिर्यचों के जो अनेकविध रौद्र, अति भयंकर और अद्भुत शब्द होते हैं, उन्हें सुनकर जो डरता नहीं है, वह भिक्षु है ।

[५०९] लोकप्रचलित विविध धर्मविषयक वादों को जानकर भी जो ज्ञान दर्शनादि स्वधर्म में स्थित रहता है, कर्मों को क्षीण करने में लगा है, शास्त्रों का परमार्थ प्राप्त है, प्राज्ञ है, परीषहों को जीतता है, सब जीवों के प्रति समदर्शी और उपशान्त है, किसी को अपमानित नहीं करता है, वह भिक्षु है ।

[५१०] जो शिल्पजीवी नहीं है, जिसका अगृही है, अमित्र हैं, जितेन्द्रिय है, पशुग्रह से मुक्त है, अणुकषायी है नीरस और परिमित आहार लेता है, गृहवास छोड़कर एकाकी विचरण करता है, वह भिक्षु है ।—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-१५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-१६-ब्रह्मचर्य समाधि स्थान

[५११] आयुष्यमन् ! भगवान् ने ऐसा कहा है । स्थविर भगवन्तों ने निर्ग्रन्थ प्रवचन में दस ब्रह्मचर्य-समाधि-स्थान बतलाए हैं—जिन्हें सुन कर, जिनके अर्थ का निर्णय कर भिक्षु संयम, संवर तथा समाधि से अधिकाधिक सम्पन्न हो—गुप्त हो, इन्द्रियों को वश में रखे—ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे ।

[५१२] स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य-समाधि के वे कौनसे स्थान बतलाए हैं ? स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य-समाधि के ये दस स्थान बतलाए हैं—जो विविक्त शयन और आसन का सेवन करता है, वह निर्ग्रन्थ है । जो स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शयन और आसन का सेवन नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ है । ऐसा क्यों ? आचार्य कहते हैं—जो स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन सेवन करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है या ब्रह्मचर्य का विनाश होता है, या उन्माद पैदा होता है, दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है, या वह केवलीप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट होता है । अतः स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शयन और आसन का जो सेवन नहीं

करता है, वह निर्ग्रन्थ है ।

[५१३] जो स्त्रियों की कथा नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ है । ऐसा क्यों ? आचार्य कहते हैं—जो स्त्रियों की कथा करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, यावत् केवलीप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट होता है । अतः निर्ग्रन्थ स्त्रियों की कथा न करे ।

[५१४] जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठता है, वह निर्ग्रन्थ है । ऐसा क्यों ? —जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठता है, उस ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका होती है, यावत् केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट होता है । अतः निर्ग्रन्थ स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे ।

[५१५] जो स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को नहीं देखता है और उनके विषय में चिन्तन नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ है । ऐसा क्यों ? —जो स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को देखता है और उनके विषय में चिन्तन करता है, उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका होती है, यावत् धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । इसलिए निर्ग्रन्थ यावत् विषय में चिन्तन करे ।

[५१६] जो मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से अथवा पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, स्तनित, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को नहीं सुनता है, वह निर्ग्रन्थ है । ऐसा क्यों ? उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, यावत् धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । अतः निर्ग्रन्थ मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को न सुने ।

[५१७] जो संयमग्रहण से पूर्व को रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ है । ऐसा क्यों ? उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, यावत् केवली-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । अतः निर्ग्रन्थ संयम ग्रहण से पूर्व की रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण न करे ।

[५१८] जो प्रणीत अर्थात् रसयुक्त पौष्टिक आहार नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ है । ऐसा क्यों ? उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, यावत् केवली-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । अतः निर्ग्रन्थ प्रणीत आहार न करे ।

[५१९] जो परिमाण से अधिक नहीं खाता-पीता है, वह निर्ग्रन्थ है । ऐसा क्यों ? उस ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, यावत् वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । अतः निर्ग्रन्थ परिमाण से अधिक न खाए, न पीए ।

[५२०] जो शरीर की विभूषा नहीं करता है, वह निर्ग्रन्थ है । ऐसा क्यों ? वह शरीर को सजाता है, फलतः उसे स्त्रियाँ चाहती हैं । अतः स्त्रियों द्वारा चाहे जाने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, यावत् केवलीप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । अतः निर्ग्रन्थ विभूषानुपाती न बने ।



[५२१] जो शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त नहीं होता है, वह निर्ग्रन्थ है । ऐसा क्यों ? उस ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है, यावत् केवलीप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है । अतः निर्ग्रन्थ शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त न बने । यह ब्रह्मचर्य समाधि का दसवाँ स्थान है । यहाँ कुछ श्लोक है, जैसे—

[५२२] ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए संयमी एकान्त, अनाकीर्ण र स्त्रियों से रहित स्थान में रहे ।

[५२३-५२४] ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु मन में आह्लाद पैदा करने वाली तथा कामराग को बढ़ाने वाली स्त्री-कथा का त्याग करे । स्त्रियों के साथ परिचय तथा बार-बार वार्तालाप का सदा परित्याग करे ।

[५२५-५२६] ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु चक्षु-इन्द्रिय से ग्राह्य स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग, संस्थान, बोलने की सुन्दर मुद्रा तथा कटाक्ष को देखने का परित्याग करे । श्रोत्रेन्द्रिय से ग्राह्य स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन और क्रन्दन न सुने ।

[५२७] ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु, दीक्षा से पूर्व जीवन में स्त्रियों के साथ अनुभूत हास्य, क्रीड़ा, रति, अभिमान और आकस्मिक त्रास का कभी भी अनुचिन्तन न करे ।

[५२८-५२९] ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु, शीघ्र ही कामवासना को बढ़ाने वाले प्रणीत आहार का सदा-सदा परित्याग करे । चित्त की स्थिरता के लिए, जीवन-यात्रा के लिए उचित समय में धर्म-मर्यादानुसार प्राप्त परिमित भोजन करे, किन्तु मात्रा से अधिक ग्रहण न करे ।

[५३०-५३१] ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु, विभूषा का त्याग करे । शृंगार के लिए शरीर का मण्डन न करे । शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श—इन पाँच प्रकार के कामगुणों का सदा त्याग करे ।

[५३२-५३५] स्त्रियों से आकीर्ण स्थान, मनोरम स्त्री-कथा, स्त्रियों का परिचय, उनकी इन्द्रियों को देखना, उनके कूजन, रोदन, गीत और हास्ययुक्त शब्दों का सुनना, भुक्त भोगों और सहावस्थान को स्मरण करना, प्रणीत भोजन-पान, मात्रा से अधिक भोजन पान, शरीर को सजाने की इच्छा, दुर्जय काम भोग—ये दस आत्मगवेषक मनुष्य के लिए तालपुट विष के समान है । एकाग्रचित्त वाला मुनि दुर्जय कामभोगों का सदैव त्याग करे और सब प्रकार के शंका-स्थानों से दूर रहे ।

[५३६] जो धैर्यवान है, धर्मरथ का चालक सारथि है, धर्म के आराम में रत है, दान्त है, ब्रह्मचर्य में सुसमाहित है, वह भिक्षु धर्म के आराम में विचरण करता है ।

[५३७] जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर—सभी नमस्कार करते हैं ।

[५३८] यह ब्रह्मचर्य-धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिनोपदिष्ट है । इस धर्म के द्वारा अनेक साधक सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं, और भविष्य में भी होंगे ।—ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-१६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-१७-पापश्रमणीय

[५३९] जो कोई धर्म को सुनकर, अत्यन्त दुर्लभ बोधिलाभ को प्राप्त करके पहले तो विनय संपन्न हो जाता है, निर्ग्रन्थरूप में प्रव्रजित हो जाता है, किन्तु बाद में सुख-स्पृहा के कारण स्वच्छन्द-विहारी हो जाता है ।

[५४०-५४१] रहने को अच्छा स्थान मिल रहा है । कपड़े मेरे पास हैं । खाने पीने को मिल जाता है । और जो हो रहा है, उसे मैं जानता हूँ । भन्ते ! शास्त्रों का अध्ययन करके मैं क्या करूँगा ?” जो कोई प्रव्रजित होकर निद्राशील रहता है, यथेच्छ खा-पीकर बस आराम से सो जाता है, वह ‘पापश्रमण’ कहलाता है ।

[५४२-५४३] जिन आचार्य और उपाध्यायों से श्रुत और विनय ग्रहण किया है, उन्हीं की निन्दा करता है, उनकी चिन्दा नहीं करता है, अपितु उनका अनादर करता है, जो ठीठ है, वह पाप श्रमण कहलाता है ।

[५४४] जो प्राणी, बीज और वनस्पति का संमर्दन करता रहता है, जो असंयत होते हुए भी स्वयं को संयत मानता है, वह पापश्रमण कहलाता है ।

[५४५] जो संस्तारक, फलक-पाट, पीठ, निषद्या-भूमि और पादकम्बल-का प्रमार्जन किए बिना ही उन पर बैठता है, वह पापश्रमण है ।

[५४६] जो जल्दी-जल्दी चलता है, पुनः पुनः प्रमादाचरण करता रहता है, मर्यादाओं का उल्लंघन करता है, क्रोधी है वह पापश्रमण है ।

[५४७-५४८] जो प्रमत्त-होकर प्रतिलेखन करता है, पात्र और कम्बल जहाँ-तहाँ रख देता है, प्रतिलेखन में असावधान रहता है, जो इधर-उधर की बातों को सुनता हुआ प्रमत्तभाव से प्रतिलेखन करता है, जो गुरु की अवहेलना करता है, वह पापश्रमण कहलाता है ।

[५४९] जो बहुत मायावी है, वाचाल है, धीठ है, लोभी है, अनिग्रह है—प्राप्त वस्तुओं का परस्पर संविभाग नहीं करता है, जिसे गुरु के प्रति प्रेम नहीं है, वह पापश्रमण है ।

[५५०] जो शान्त हुए विवाद को पुनः उखाड़ता है, अधर्म में अपनी प्रज्ञा का हनन करता है, कदाग्रह तथा कलह में व्यस्त है, वह पापश्रमण है ।

[५५१] जो स्थिरता से नहीं बैठता है, हाथ-पैर आदि की चंचल एवं विकृत चेष्टाएँ करता है, जहाँ-तहाँ बैठ जाता है, जिसे आसन पर बैठने का उचित विवेक नहीं है, वह पापश्रमण है ।

[५५२] जो रज से लित पैरों से सो जाता है, शय्या का प्रमार्जन नहीं करता है, संस्तारक के विषय में असावधान है, वह पापश्रमण है ।

[५५३] जो दूध, दही आदि विकृतियाँ बार-बार खाता है, जो तप-क्रिया में रुचि नहीं रखता है, वह पापश्रमण-कहलाता है ।

[५५४] जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक बार-बार खाता रहता है, समझाने पर उलटा पड़ता है—वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

[५५५] जो अपने आचार्य का परित्याग कर अन्य पाषण्ड-को स्वीकार करता है, जो गाणंगणिक होता है—वह निन्दित पापश्रमण है ।

[५५६] जो अपने घर को छोड़कर परघर में व्यापृत होता है—शुभाशुभ बतलाकर द्रव्यादिक उपार्जन करता है, वह पापश्रमण है ।

[५५७] जो अपने ज्ञातिजनों से आहार ग्रहण करता है, सभी घरों से सामुदायिक भिक्षा नहीं चाहता है, गृहस्थ की शय्या पर बैठता है, वह पाप-श्रमण है ।

[५५८] जो इस प्रकार आचरण करता है, वह पार्श्वस्थादि पाँच कुशील भिक्षुओं के समान असंवृत है, केवल मुनिवेष का ही धारक है, श्रेष्ठ मुनियों में निकृष्ट है । वह इस लोक में विषकी तरह निन्दनीय होता है, अतः न वह इस लोक का रहता है, न परलोक का ।

[५५९] जो साधु इन दोषों को सदा दूर करता है, वह मुनियों में सुव्रत होता है । इस लोक में अमृत की तरह पूजा जाता है । अतः वह इस लोक तथा परलोक दोनों की आराधना करता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-१८-संजयीय

[५६०-५६२] काम्पिल्य नगर में सेना और वाहन से सुसंपन्न 'संजय' नाम का राजा था । एक दिन मृगया—के लिए निकला । वह राजा सब ओर से विशाल अश्वसेना, गजसेना, रथसेना तथा पदाति सेना से परिवृत था । राजा अश्व पर आरूढ़ था । वह रस-मूर्च्छित होकर काम्पिल्य नगर के केशर उद्यान की ओर ढकेले गए भयभीत एवं श्रान्त हिरणों को मार रहा था ।

[५६३-५६५] उस केशर उद्यान में एक तपोधन अनगार स्वाध्याय एवं ध्यान में लीन थे, धर्मध्यान की एकाग्रता साध रहे थे । आश्रव का—क्षय करने वाले अनगार लतामण्डप में ध्यान कर रहे थे । उनके समीप आए हिरणों का राजा ने बध कर दिया । अश्वारूढ़ राजा शीघ्र वहाँ आया । मृत हिरणों को देखने के बाद उसने वहाँ एक ओर अनगार को भी देखा ।

[५६६-५६८] राजा मुनि को देखकर सहसा भयभीत हो गया । उसने सोचा—“मैं कितना मन्दपुण्य, रसासक्त एवं हिंसक वृत्ति का हूँ कि मैंने व्यर्थ ही मुनि को आहत किया है ।” घोड़े को छोड़कर उस राजा ने विनयपूर्वक अनगार के चरणों को वन्दन किया और कहा कि—“भगवन् ! इस अपराध के लिए मुझे क्षमा करें ।” वे अनगार भगवान् मौनपूर्वक ध्यान में लीन थे । उन्होंने राजा को कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया, अतः राजा और अधिक भयाक्रान्त हुआ ।

[५६९] —“भगवन् ! मैं संजय हूँ । आप मुझ से कुछ तो बोलें । मैं जानता हूँ—क्रुद्ध अनगार अपने तेज से करोड़ों मनुष्यों को जला डालते हैं ।”

[५७०-५७२] “पार्थिव ! तुझे अभय है । पर, तू भी अभयदाता बन । इस अनित्य जीवलोक में तू क्यों हिंसा में संलग्न है ?” —“सब कुछ छोड़कर जब तुझे यहाँ से अवश्य लाचार होकर चले जाना है, तो इस अनित्य जीवलोक में तू क्यों राज्य में आसक्त हो रहा है ?” “राजन् ! तू जिसमें मोहमुग्ध है, वह जीवन और सौन्दर्य बिजली की चमक की तरह चंचल है । तू अपने परलोक के हित को नहीं समझ रहा है ।”

[५७३-५७४] “स्त्रियाँ, पुत्र, मित्र तथा बन्धुजन जीवित व्यक्ति के साथ ही जीते हैं । कोई भी मृत व्यक्ति के पीछे नहीं जाता है—” —“अत्यन्त दुःख के साथ पुत्र अपने मृत



पिता को घर से बाहर श्मशान में निकाल देते हैं । उसी प्रकार पुत्र को पिता और बन्धु को अन्य बन्धु भी बाहर निकालते हैं । अतः राजन् ! तू तप का आचरण कर ।”

[५७५-५७६] —“मृत्यु के बाद उस मृत व्यक्ति के द्वारा अर्जित धन का तथा सुरक्षित स्त्रियों का हृष्ट, तुष्ट एवं अलंकृत होकर अन्य लोग उपभोग करते हैं ।” —“जो सुख अथवा दुःख के कर्म जिस व्यक्ति ने किए हैं, वह अपने उन कर्मों के साथ परभव में जाता है ।”

[५७७-५७८] अनगर के पास से महान् धर्म को सुनकर, राजा मोक्ष का अभिलाषी और संसार से विमुक्त हो गया । राज्य को छोड़कर वह संजय राजा भगवान् गर्दभालि अनगर के समीप जिनशासन में दीक्षित हो गया ।

[५७९] राष्ट्र को छोड़कर प्रव्रजित हुए क्षत्रिय मुनि ने एक दिन संजय मुनि को कहा—“तुम्हारा यह रूप जैसे प्रसन्न है, वैसे ही तुम्हारा अन्तर्मन भी प्रसन्न है ।”

[५८०] क्षत्रिय मुनि—“तुम्हारा नाम क्या है ? तुम्हारा गोत्र क्या है ? किस प्रयोजन से तुम महान् मुनि बने हो ? किस प्रकार आचार्यों की सेवा करते हो ? किस प्रकार विनीत कहलाते हो ?

[५८१] संजय मुनि—“मेरा नाम संजय है । मेरा गोत्र गौतम है । विद्या और चरण के पारगामी ‘गर्दभालि’ मेरे आचार्य हैं ।”

[५८२-५८३] क्षत्रिय मुनि—“हे महामुने ! क्रिया, अक्रिया, विनय और अज्ञान—इन चार स्थानों के द्वारा कुछ एकान्तवादी तत्त्ववेत्ता असत्य तत्त्व की प्ररूपणा करते हैं ।” —“बुद्ध, उपशान्त, विद्या और चरण से संपन्न, सत्यवाक् और सत्यपराक्रमी ज्ञातवंशीय भगवान् महावीर ने ऐसा प्रकट किया है ।”

[५८४-५८६] —“जो मनुष्य पाप करते हैं, वे घोर नरक में जाते हैं । और जो आर्यधर्म का आचरण करते हैं, वे दिव्य गति को प्राप्त करते हैं ।” —“यह क्रियावादी आदि एकान्तवादियों का सब कथन मायापूर्वक है, अतः मिथ्या वचन है, निरर्थक है । मैं इन मायापूर्ण वचनों से बचकर रहता हूँ, बचकर चलता हूँ ।” —“वे सब मेरे जाने हुए हैं, जो मिथ्यादृष्टि और अनार्य हैं । मैं परलोक में रहे हुए अपने को अच्छी तरह से जानता हूँ ।”

[५८७-५८८] —“मैं पहले महाप्राण विमान में वर्ष शतोपम आयु वाला द्युतिमान् देव था । जैसे कि यहाँ सौ वर्ष की आयुपूर्ण मानी जाती है, वैसे ही वहाँ पत्योपम एवं सागरीपम की दिव्य आयु पूर्ण है ।” —“ब्रह्मलोक का आयुष्य पूर्ण करके मैं मनुष्य भव में आया हूँ । मैं जैसे अपनी आयु को जानता हूँ, वैसे ही दूसरों की आयु को भी जानता हूँ ।”

[५८९] —“नाना प्रकार की रुचि और छन्दों का तथा सब प्रकार के अनर्थक व्यापारों का संयतात्मा मुनि को सर्वत्र परित्याग करना चाहिए । इस तत्त्वज्ञानरूप विद्या का लक्ष्य कर संयमपथ पर संचरण करे ।”

[५९०-५९१] —“मैं शुभाशुभसूचक प्रश्नों से और गृहस्थों की मन्त्रणाओं से दूर रहता हूँ । अहो ! मैं दिन-रात धर्माचरण के लिए उद्यत रहता हूँ । यह जानकर तुम भी तप का आचरण करो ।” —“जो तुम मुझे सम्यक् शुद्ध चित्त से काल के विषय में पूछ रहे हो, उसे सर्वज्ञ ने प्रकट किया है । अतः वह ज्ञान जिनशासन में विद्यमान है ।”

[५९२] —“धीर पुरुष क्रिया में रुचि रखे और अक्रिया का त्याग करे । सम्यक् दृष्टि से दृष्टिसंपन्न होकर तुम दुश्चर धर्म का आचरण करो ।”

[५९३-६०२] —“अर्थ और धर्म से उपशोभित इस पुण्यपद को सुनकर भरत चक्रवर्ती भारतवर्ष और कामभोगों का परित्याग कर प्रव्रजित हुए थे ।” —“नराधिप सागर चक्रवर्ती सागरपर्यन्त भारतवर्ष एवं पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़ कर संयम की साधना से परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।” —“महान् ऋद्धि-संपन्न, यशस्वी मघवा चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़कर प्रव्रज्या स्वीकार की ।” —“महान् ऋद्धि-संपन्न, मनुष्येन्द्र सनत्कुमार चक्रवर्ती ने पुत्र को राज्य पर स्थापित कर तप का आचरण किया ।”

—“महान् ऋद्धि-संपन्न और लोक में शान्ति करने वाले शान्तिनाथ चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़कर अनुत्तर गति प्राप्त की ।” —“इक्ष्वाकु कुल के राजाओं में श्रेष्ठ नरेश्वर, विख्यातकीर्ति, घृतिमान् कुन्थुनाथ ने अनुत्तर गति प्राप्त की ।” —“सागरपर्यन्त भारतवर्ष को छोड़ कर, कर्म-रज को दूर करके नरेश्वरों में श्रेष्ठ ‘अर’ने अनुत्तर गति प्राप्त की ।” —“भारतवर्ष को छोड़कर, उत्तम भोगों को त्यागकर ‘महापद्म’ चक्रवर्ती ने तप का आचरण किया ।” —“शत्रुओं का मानमर्दन करने वाले हरिषेण चक्रवर्ती ने पृथ्वी पर एकछत्र शासन करके फिर अनुत्तर गति प्राप्त की ।” —“हजार राजाओं के साथ श्रेष्ठ त्यागी जय चक्रवर्ती ने राज्य का परित्याग कर जिन-भाषित संयम का आचरण किया और अनुत्तर गति प्राप्त की ।”

[६०३-६०४] —“साक्षात् देवेन्द्र से प्रेरित होकर दशार्ण-भद्र राजा ने अपने सब प्रकार से प्रमुदित दशार्ण राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली और मुनि-धर्म का आचरण किया ।” —“विदेह के राजा नमि श्रामण्य धर्म में भली-भाँति स्थिर हुए, अपने को अति विनम्र बनाया ।”

[६०५-६०६] —“कलिंग में करकण्डु, पांचाल में द्विमुख, विदेह में नमि राजा और गन्धार में नगति—“राजाओं में वृषभ के समान महान् थे । इन्होंने अपने-अपने पुत्र को राज्य में स्थापित कर श्रामण्य धर्म स्वीकार किया ।”

[६०७-६१०] —“सौवीर राजाओं में वृषभ के समान महान् उद्रायण राजा ने राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली, मुनि-धर्म का आचरण किया और अनुत्तर गति प्राप्त की ।” —“इसी प्रकार श्रेय और सत्य में पराक्रमशील काशीराज ने काम-भोगों का परित्याग कर कर्मरूपी महावन का नाश किया ।” —“अमरकीर्ति, महान् यशस्वी विजय राजा ने गुण-समृद्ध राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली ।” —“अनाकुल चित्त से उग्र तपश्चर्या करके राजर्षि महाबल ने अहंकार का विसर्जन कर सिद्धिरूप उच्च पद प्राप्त किया ।

[६११] —“इन भरत आदि शूर और दृढ पराक्रमी राजाओं ने जिनशासन में विशेषता देखकर ही उसे स्वीकार किया था । अतः अहेतुवादों से प्रेरित होकर अब कोई कैसे उन्मत्त की तरह पृथ्वी पर विचरण करे ?”

[६१२] —“मैंने यह अत्यन्त निदानक्षम-सत्य-वाणी कही है । इसे स्वीकार कर अनेक जीव अतीत में संसार-समुद्र से पार हुए हैं, वर्तमान में पार ही रहे हैं और भविष्य में पार होंगे ।”

[६१३] —“धीर साधक एकान्तवादी अहेतुवादों में अपने-आप को कैसे लगाए ?

जो सभी संगों से मुक्त है, वही नीरज होकर सिद्ध होता है ।” —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-१९-मृगापुत्रीय

[६१४-६१६] कानन और उद्यानों से सुशोभित ‘सुग्रीव’ नामक सुरम्य नगर में बलभद्र राजा था । मृगा, पटरानी थी । ‘बलश्री’ नाम का पुत्र था, जो कि ‘मृगापुत्र’ नाम से प्रसिद्ध था । माता-पिता को प्रिय था । युवराज था और दमीश्वर था । प्रसन्न-चित्त से सदा नन्दन प्रासाद में—दोगुन्दग देवों की तरह स्त्रियों के साथ क्रीडा करता था ।

[६१७-६२२] एक दिन मृगापुत्र मणि और रत्नों से जडित कुट्टिमतल वाले प्रासाद के गवाक्ष में खड़ा था । नगर के चौराहों, तिराहों और चौहट्टों को देख रहा था । उसने वहाँ राजपथ पर जाते हुए तप, नियम एवं संयम के धारक, शील से समृद्ध तथा गुणों के आकार एक संयत श्रमण को देखा । वह उस को अनिमेष-दृष्टि से देखता है और सोचता है—“मैं मानता हूँ कि ऐसा रूप मैंने इसके पूर्व भी कहीं देखा है ।” साधु के दर्शन तथा तदनन्तर पवित्र अध्यवसाय के होने पर, ‘मैंने ऐसा कहीं देखा है—इस प्रकार ऊहापोह को प्राप्त मृगापुत्र को जाति-स्मरण उत्पन्न हुआ । संज्ञिज्ञान होने पर वह पूर्व-जाति को स्मरण करता है—“देवलोक से च्युत होकर मैं मनुष्यभव में आया हूँ ।” जाति-स्मरण उत्पन्न होने पर महर्द्धिक मृगापुत्र अपनी पूर्व-जाति और पूर्वाचरित श्रामण्य को स्मरण करता है ।

[६२३] विषयों से विरक्त और संयम में अनुक्त मृगापुत्र ने माता-पिता के समीप आकर इस प्रकार कहा—

[६२४] —“मैंने पंच महाव्रतों को सुना है । सुना है नरक और तिर्यच योनि में दुःख है । मैं संसाररूप महासागर से निर्विण्ण—हो गया हूँ । मैं प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा । माता ! मुझे अनुमति दीजिए ।”

[६२५] “मैं भोगों को भोग चुका हूँ, वे विषफल के समान अन्त में कट्टु विपाक वाले और निरन्तर दुःख देने वाले हैं ।”

[६२६-६२८] —“यह शरीर अनित्य है, अपवित्र है, अशुचि से पैदा हुआ है, यहाँ का आवास अशाश्वत है, तथा दुःख और क्लेश का स्थान है ।” —“इसे पहले या बाद में, कभी छोड़ना ही है । यह पानी के बुलबुले के समान अनित्य है । अतः इस शरीर में मुझे आनन्द नहीं मिल पा रहा है ।” —“व्याधि और रोगों के घर तथा जरा और मरण से ग्रस्त इस असार मनुष्यशरीर में एक क्षण भी मुझे सुख नहीं मिल रहा है ।”

[६२९] —“जन्म दुःख है । जरा दुःख है । रोग दुःख है । मरण दुःख है । अहो ! यह समग्र संसार ही दुःखरूप है, जहाँ जीव क्लेश पते हैं ।”

[६३०] —“क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, पुत्र, स्त्री, बन्धुजन और इस शरीर को छोड़कर एक दिन विवश होकर मुझे चले जाना है ।”

[६३१] —“जिस प्रकार विष-रूप किम्पाक फलों का अन्तिम परिणाम सुन्दर नहीं होता है, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता ।”

[६३२-६३३] —“जो व्यक्ति पाथेय लिए बिना लम्बे मार्ग पर चल देता है, वह चलते हुए भूख और प्यास से पीड़ित होता है ।” —“इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म किए बिना परभव



में जाता है, वह व्याधि और रोगों से पीड़ित होता है, दुःखी होता है ।”

[६३४-६३५] —“जो व्यक्ति पाथेय साथ में लेकर लम्बे मार्ग पर चलता है, वह चलते हुए भूख और प्यास के दुःख से रहित सुखी होता है ।” —“इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म करके परभव में जाता है, वह अल्पकर्मा वेदना से रहित सुखी होता है ।”

[६३६-६३७] —“जिस प्रकार घर को आग लगने पर गृहस्वामी मूल्यवान् सार वस्तुओं को निकालता है और मूल्यहीन असार वस्तुओं को छोड़ देता है”—“उसी प्रकार आपकी अनुमति पाकर जरा और मरण से जलते हुए इस लोक में सारभूत अपनी आत्मा को बाहर निकालूँगा ।”

[६३८] —माता-पिता ने उसे कहा—“पुत्र ! श्रामण्य—अत्यन्त दुष्कर है । भिक्षु को हजारों गुण धारण करने होते हैं ।”

[६३९] —“भिक्षु को जगत् में शत्रु और मित्र के प्रति, सभी जीवों के प्रति समभाव रखना होता है । जीवनपर्यन्त प्राणातिपात से निवृत्त होना भी बहुत दुष्कर है ।”

[६४०] —“सदा अप्रमत्त भाव से मृषावाद का त्याग करना, हर क्षण सावधान रहते हुए हितकारी सत्य बोलना—बहुत कठिन होता है ।”

[६४१] —“दन्तशोधन आदि भी बिना दिए न लेना और प्रदत्त वस्तु भी अनवद्य और एषणीय ही लेना अत्यन्त दुष्कर है ।”

[६४२] —“काम-भोगों के रस से परिचित व्यक्ति के लिए अब्रह्मचर्य से विरक्ति और उग्र महाव्रत ब्रह्मचर्य का धारण करना बहुत दुष्कर है ।”

[६४३] —“धन-धान्य, प्रेष्यवर्ग, आदि परिग्रह का त्याग तथा सब प्रकार के आरम्भ और ममत्व का त्याग करना बहुत दुष्कर होता है ।”

[६४४] —“अशन-पानादि चतुर्विध आहार का रात्रि में त्याग करना और कालमर्यादा से बाहर घृतादि संनिधि का संचय न करना अत्यन्त दुष्कर है ।”

[६४५] —“भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, डांस और मच्छरों का कष्ट, आक्रोश वचन, दुःख-शय्या—कष्टप्रद स्थान, तृणस्पर्श तथा मैल—”

[६४६] —“ताड़ना, तर्जना, वध और बन्धन, भिक्षा-चर्या, याचना और अलाभ—इन परीषहों को सहन करना दुष्कर है ।”

[६४७] —“यह कापोतीवृत्ति समान दोषों से सशंक एवं सतर्क रहने की वृत्ति, दारुण केश-लोच और यह घोर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना महान् आत्माओं के लिए भी दुष्कर है ।”

[६४८] —“पुत्र ! तू सुख भोगने के योग्य है, सुकुमार है, सुमज्जित है—अतः श्रामण्य का पालन करने के लिए तू समर्थ नहीं है ।”

[६४९] —“पुत्र — साधुचर्या में जीवनपर्यन्त कहीं विश्राम नहीं है । लोहे के भार की तरह साधु के गुणों का वह महान् गुरुतर भार है, जिसे जीवनपर्यन्त वहन करना अत्यन्त कठिन है ।”

[६५०] —“जैसे आकाश-गंगा का स्रोत एवं प्रतिस्त्रोत दुस्तर है । सागर को भुजाओं से तैरना दुष्कर है, वैसे ही संयम के सागर को तैरना दुष्कर है ।”

[६५१] —“संयम बालू-रेत के कवल की तरह स्वाद से रहित है . तप का आचरण

तलवार की धार पर चलने जैसा दुष्कर है ।”

[६५२] —“साँप की तरह एकाग्र दृष्टि से चारित्र धर्म में चलना कठिन है । लोहे के जौ चबाना जैसे दुष्कर है, वैसे ही चारित्र का पालन दुष्कर है ।”

[६५३] —“जैसे प्रज्वलित अग्निशिखा को पीना दुष्कर है, वैसे ही युवावस्था में श्रमणधर्म का पालन करना दुष्कर है ।”

[६५४] —“जैसे वस्त्र के थैले को हवा से भरना कठिन है, वैसे ही कायों के द्वारा श्रमणधर्म का पालन भी कठिन होता है ।”

[६५५] जैसे मेरुपर्वत को तराजू से तोलना दुष्कर है, वैसे ही निश्चल और निःशंक भाव से श्रमण धर्म का पालन करना दुष्कर है ।”

[६५६] —“जैसे भुजाओं से समुद्र को तैरना कठिन है, वैसे ही अनुपशान्त व्यक्ति के द्वारा संयम के सागर को पार करना दुष्कर है ।”

[६५७] —“पुत्र ! पहले तू मनुष्य-सम्बन्धी शब्द, रूप आदि पाँच प्रकार के भोगों का भोग कर । पश्चात् भुक्तभोगी होकर धर्म का आचरण करना ।”

[६५८] —मृगापुत्र ने माता-पिता को कहा—“आपने जो कहा है, वह ठीक है । किन्तु इस संसार में जिसकी प्यास बुझ चुकी है, उसके लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है ।”

[६५९] —“मैंने शारीरिक और मानसिक भयंकर वेदनाओं को अनन्त बार सहन किया है । और अनेक बार भयंकर दुःख और भय भी अनुभव किए हैं ।”

[६६०] —“मैंने नरक आदि चार गतिरूप अन्त वाले जरा-मरण रूपी भय के आकर कान्ता में भयंकर जन्म-मरणों को सहा है ।”

[६६१-६६२] —“जैसे यहाँ अग्नि उष्ण है, उससे अनन्तगुण अधिक दुःखरूप उष्ण वेदना और जैसे यहाँ शीत है, उससे अनन्तगुण अधिक दुःखरूप शीतवेदना मैंने नरक में अनुभव की है ।”

[६६३-६६५] —“मैं नरक की कंदु कुम्भियों में—ऊपर पैर और नीचा सिर करके प्रज्वलित अग्नि में आक्रन्द करता हुआ अनन्त बार पकाया गया हूँ ।” —“महाभयंकर दावाग्नि के तुल्य मरु प्रदेश में तथा वज्रवालुका में और कदम्ब वालुका में मैं अनन्त बार जलाया गया हूँ ।” —“बन्धु-बान्धावों से रहित असहाय रोता हुआ मैं कन्दुकुम्भी में ऊँचा बाँधा गया तथा कपत्र और क्रकच आदि शस्त्रों से अनन्त बार छेदा गया हूँ ।”

[६६६-६६८] —“अत्यन्त तीखे काँटों से व्याप्त ऊँचे शाल्मलि वृक्ष पर पाश से बाँधकर, इधर-उधर खींचकर मुझे असह्य कष्ट दिया गया ।” —“अति भयानक आक्रन्दन करता हुआ, मैं पापकर्मा अपने कर्मों के कारण, गन्ने की तरह बड़े-बड़े यन्त्रों में अनन्त बार पीला गया हूँ ।” — “मैं इधर-उधर भागता और आक्रन्दन करता हुआ, काले तथा चितकबरे सूअर और कुत्तों से अनेक बार गिराया गया, फाड़ा गया और छेदा गया ।”

[६६९-६७०] —“पाप कर्मों के कारण मैं नरक में जन्म लेकर अलसी के फूलों के समान नीले रंग की तलवारों से, भालों से और लोह के दण्डों से छेदा गया, भेदा गया और खण्ड-खण्ड कर दिया गया ।” —“समिला से युक्त जूएवाले जलते लौह के रथ में पराधीन मैं जोता गया हूँ, चाबुक और रस्सी से हाँका गया हूँ तथा रोझ की भाँति पीट कर भूमि पर

गिराया गया हूँ ।”

[६७१-६७२] —“पापकर्मों से घिरा हुआ पराधीन मैं अग्नि की चिताओं में भैसे की भाँति जलाया और पकाया गया हूँ ।” —“लोहे के समान कठोर संडासी जैसी चोंच वाले ढंक और गीध पक्षियों द्वारा, मैं रोता-विलखाता हठात् अनन्त बार नोचा गया हूँ ।”

[६७३-६७४] —“प्यास से व्याकुल होकर, दौड़ता हुआ मैं वैतरणी नदी पर पहुँचा । ‘जल पीऊँगा’—यह सोच ही रहा था कि छुरे की धार जैसी तीक्ष्ण जलधारा से मैं चीरा गया ।” —“गर्मी से संतप्त होकर मैं छाया के लिए असि-पत्र महावन में गया । किन्तु वहाँ ऊपर से गिरते हुए असि-पत्रों से—तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तों से अनेक बार छेदा गया ।”

[६७५] —“सब ओर से निराश हुए मेरे शरीर को मुद्गरों, मुसुण्डियों, शूलों और मुसलों से चूर-चूर किया गया । इस प्रकार मैंने अनन्त बार दुःख पाया है ।”

[६७६] —“पाशों और कूट जालों से विवश बने मृग की भाँति मैं भी अनेक बार छलपूर्वक पकड़ा गया हूँ, बाँधा गया हूँ, रोका गया हूँ और विनष्ट किया गया हूँ ।”

[६७८-६७९] —“गलों से तथा मगरों को पकड़ने के जालों से मत्स्य की तरह विवश मैं अनन्त बार खींचा गया, फाड़ा गया, पकड़ा गया और मारा गया ।” —“बाज पक्षियों, जालों तथा वज्रलेपों के द्वारा पक्षी की भाँति मैं अनन्त बार पकड़ा गया, चिपकाया गया, बाँधा गया और मारा गया ।”

[६८०-६८१] —“बढ़ई के द्वारा वृक्ष की तरह कुल्हाड़ी और फरसा आदि से मैं अनन्त बार कूटा गया हूँ, फाड़ा गया हूँ, छेदा गया हूँ, और छीला गया हूँ ।” —“लुहारों के द्वारा लोहे की भाँति मैं परमाधर्मी असुर कुमारों के द्वारा चपत और मुक्का आदि से अनन्त बार पीटा गया, कूटा गया, खण्ड-खण्ड किया गया और चूर्ण बना दिया गया ।”

[६८२] —“भयंकर आक्रन्द करते हुए भी मुझे कलकलाता गर्म ताँबा, लोहा, रंगा और सीसा पिलाया गया ।”

[६८३-६८४] —“तुझे टुकड़े-टुकड़े किया हुआ और शूल में पिरो कर पकाया गया मांस प्रिय था—यह याद दिलाकर मुझे मेरे ही शरीर का मांस काटकर और उसे तपा कर अनेक बार खिलाया गया ।” —“तुझे सुरा, सीधू, मैरिय और मधु आदि मदिराएँ प्रिय थी—यह याद दिलाकर मुझे जलती हुई चर्बी और खून पिलाया गया ।”

[६८५-६८६] “मैंने नित्य ही भयभीत, संत्रस्त, दुःखित और व्यथित रहते हुए अत्यन्त दुःखपूर्ण वेदना का अनुभव किया ।” —“तीव्र, प्रचण्ड, प्रगाढ, घोर, अत्यन्त दुःसह, महाभयंकर और भीष्म वेदनाओं का मैंने नरक में अनुभव किया है ।”

[६८७] —“हे पिता ! मनुष्य-लोक में जैसी वेदनाएँ देखी जाती हैं,—उनसे अनन्त गुण अधिक दुःख-वेदनाएँ नरक में हैं ।”

[६८८] —“मैंने सभी जन्मों में दुःख-रूप वेदना का अनुभव किया है । एक क्षण के अन्तर जितनी भी सुखरूप वेदना (अनुभूति) वहाँ नहीं है ।”

[६८९] माता-पिता ने उससे कहा—“पुत्र ! अपनी इच्छानुसार तुम भले ही संयम स्वीकार करो । किन्तु विशेष बात यह है कि—श्रामण्य-जीवन में निष्प्रतिकर्मता कष्ट है ।”

[६९०] —“माता-पिता ! आपने जो कहा वह सत्य है । किन्तु जंगलों में रहनेवाले



निरीह पशु-पक्षियों की चिकित्सा कौन करता है ?”

[६९१-६९३] —“जैसे जंगल में मृग अकेला विचरता है, वैसे ही मैं भी संयम और तप के साथ एकाकी होकर धर्म का आचरण करूँगा ।” —“जब महावन में मृग के शरीर में आतंक उत्पन्न हो जाता है, तब वृक्ष के नीचे बैठे हुए उस मृग की कौन चिकित्सा करता है ?” —“कौन उसे औषधि देता है ? कौन उसे सुख की बात पूछता है ? कौन उसे भक्त-पान लाकर देता है ?”

[६९४-६९५] “जब वह स्वस्थ हो जाता है, तब स्वयं गोचरभूमि में जाता है । और खाने-पीने के लिए बल्लरों—व गहन तथा जलाशयों को खोजता है । उसमें खाकर-पानी पीकर मृगचर्या करता हुआ वह मृग अपनी मृगचर्या को चला जाता है ।”

[६९६] —“रूपादि में अप्रतिबद्ध, संयम के लिए उद्यत भिक्षु स्वतंत्र विहा करता हुआ, मृगचर्या की तरह आचरण कर मोक्ष को गमन करता है ।”

[६९७] —“जैसे मृग अकेला अनेक स्थानों में विचरता है, रहता है, सदैव गोचर-चर्या से ही जीवनयापन करता है, वैसे ही गौचरी के लिए गया हुआ मुनि भी किसी की निन्दा और अवज्ञा नहीं करता है ।”

[६९८] —“मैं मृगचर्या का आचरण करूँगा ।” “पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसे करो—” इस प्रकार माता-पिता की अनुमति पाकर वह उपधि को छोड़ता है ।

[६९९] —“हे माता ! मैं तुम्हारी अनुमति प्राप्त कर सभी दुःखों का क्षय करनेवाली मृगचर्या का आचरण करूँगा” “पुत्र ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसे चलो ।”

[७००-७०१] इस प्रकार वह अनेक तरह से माता-पिता को अनुमति के लिए समझा कर ममत्त्व का त्याग करता है, जैसे कि महानाग केंचुल को छोड़ता है । कपड़े पर लगी हुई धूल की तरह ऋद्धि, धन, मित्र, पुत्र, कलत्र और ज्ञाति जनों को झटककर वह संयमयात्रा के लिए निकल पड़ा ।

[७०२-७०७] पंच महाव्रतों से युक्त, पाँच समितियों से समित तीन गुणियों से गुप्त, आभ्यन्तर और बाह्य तप में उद्यत—ममत्त्वरहित, अहंकाररहित, संगरहित, गौरव का त्यागी, त्रस तथा स्थावर सभी जीवों में समदृष्टि—लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवन, मरण, निन्दा, प्रशंसा और मान-अपमान में समत्त्व का साधक—गौरव, कषाय, दण्ड, शल्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त, निदान और बन्धन से मुक्त—इस लोक और परलोक में अनासक्त, बसूले से काटने अथवा चन्दन लगाए जाने पर भी तथा आहार मिलने और न मिलने पर भी सम—अप्रशस्त द्वारों से आने वाले कर्म-पुद्गलों का सर्वतोभावेन निरोधक महर्षि मृगापुत्र अध्यात्मसम्बन्धी ध्यानयोगों से प्रशस्त संयम-शासन में लीन हुआ ।

[७०८-७०९] इस प्रकार ज्ञान, चारित्र, दर्शन, तप और शुद्ध-भावनाओं के द्वारा आत्मा को सम्यक्तया भावित कर—बहुत वर्षों तक श्रामण्य धर्म का पालन कर अन्त में एक मास के अनशन से वह अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त हुआ ।

[७१०] संबुद्ध, पण्डित और अतिविचक्षण व्यक्ति ऐसा ही करते हैं । वे काम-भोगों से वैसे ही निवृत्त होते हैं, जैसे कि महर्षि मृगापुत्र निवृत्त हुआ ।

[७११-७१२] महान् प्रभावशाली, यशस्वी मृगापुत्र के तपःप्रधान, त्रिलोक-विश्रुत

एवं मोक्षरूपगति से प्रधान—उत्तम चारित्रि को सुनकर—धन को दुःखवर्धक तथा ममत्वबन्धन को महाभयंकर जानकर निर्वाण के गुणों को प्राप्त करने वाली, सुखावह, अनुत्तर धर्म-धुरा को धारण करो । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-२०-महानिर्ग्रन्थीय

[७१३] सिद्धों एवं संयतों को भावपूर्वक नमस्कार करके मैं मोक्ष और धर्म के स्वरूप का बोध कराने वाली तथ्यपूर्ण अनुशिष्टि-का कथन करता हूँ, उसे सुनो ।

[७१४-७१५] गज-अश्व तथा मणि-माणिक्य आदि प्रचुर रत्नों से समृद्ध मगध का अधिपति राजा श्रेणिक मण्डिकुक्षि चैत्य-में विहार-यात्रा के लिए नगर से निकला । वह उद्यान विविध प्रकार के वृक्षों एवं लताओं से आकीर्ण था, नाना प्रकार के पक्षियों से परिसेवित था और विविध प्रकार के पुष्पों से भली-भाँति आच्छादित था । विशेष क्या कहे ? वह नन्दनवन के समान था ।

[७१६-७१८] राजा ने उद्यान में वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक संयत, समाधि-संपन्न, सुकुमार एवं सुखोचित-साधु को देखा । साधु के अनुपम रूप को देखकर राजा को उसके प्रति बहुत ही अधिक अतुलनीय विस्मय हुआ । अहो, क्या वर्ण है ! क्या रूप है ! आर्य की कैसी सौम्यता है ! क्या क्षान्ति है, क्या मुक्ति है ! भोगों के प्रति कैसी असंगता है !

[७१९-७२०] मुनि के चरणों में वन्दना और प्रदक्षिणा करने के पश्चात् राजा न अतिदूर, न अति निकट खड़ा रहा और हाथ जोड़कर पूछने लगा—“हे आर्य ! तुम अभी युवा हो । फिर भी तुम भोगकाल में दीक्षित हुए हो, श्रामण्य में उपस्थित हुए हो । इसका क्या कारण है, मैं सुनना चाहता हूँ ।”

[७२१] —“महाराज ! मैं अनाथ हूँ । मेरा कोई नाथ नहीं है । मुझ पर अनुकम्पा रखनेवाला कोई सुहृद् नहीं पा रहा हूँ ।”

[७२२-७२३] यह सुनकर मगधाधिप राजा श्रेणिक जोर से हँसा और बोला—“इस प्रकार तुम देखने में ऋद्धि संपन्न-लगते हो, फिर भी तुम्हारा कोई कैसे नाथ नहीं है ?” — “भदन्त ! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ । हे संयत ! मैं तुम्हारा नाथ होता हूँ । हे संयत ! मित्र और ज्ञातिजनों के साथ भोगों को भोगो । यह मनुष्य-जीवन बहुत दुर्लभ है ।”

[७२४] —“श्रेणिक ! तुम स्वयं अनाथ हो । मगधाधिप ! जब तुम स्वयं अनाथ हो तो किसी के नाथ कैसे हो सकोगे ?”

[७२५-७२७] राजा पहले ही विस्मित हो रहा था, अब तो मुनि से अश्रुतपूर्व वचन सुन कर तो और भी अधिक संभ्रान्त एवं विस्मित हुआ । उसने कहा—“मेरे पास अश्व, हाथी, नगर और अन्तःपुर है । मैं मनुष्यजीवन के सभी सुख-भोगों को भोग रहा हूँ । मेरे पास शासन और ऐश्वर्य भी है ।” —“इस प्रकार प्रधान-श्रेष्ठ सम्पदा, जिसके द्वारा सभी कामभोग मुझे समर्पित होते हैं, मुझे प्राप्त हैं । इस स्थिति में भला मैं कैसे अनाथ हूँ ? आप झूठ न बोलें ।”

[७२८-७२९] —“पृथ्वीपति-नरेश ! तुम ‘अनाथ’ के अर्थ और परमार्थ को नहीं जानते हो । —“महाराज ! अव्याक्षित चित्तसे मुझे सुनिए कि यथार्थ में अनाथ कैसे होता है ?

[७३०] —“प्राचीन नगरों में असाधारण सुन्दर कौशाम्बी नगरी है । वहाँ मेरे पिता थे ।

उनके पास प्रचुर धन का संग्रह था ।”

[७३१-७३३] —“महाराज ! युवावस्था में मेरी आँखों में अतुल वेदना उत्पन्न हुई । पार्थिव ! उससे मेरे सारे शरीर में अत्यन्त जलन होती थी ।” —“कृद्ध शत्रु जैसे शरीर के मर्मस्थानों में अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र धोंपदे और उससे जैसे वेदना हो, वैसे ही मेरी आँखों में भयंकर वेदना हो रही थी ।” —“जैसे इन्द्र के वज्रप्रहार से भयंकर वेदना होती है, वैसे ही मेरे त्रिक में, हृदय में और मस्तक में अति दारुण वेदना हो रही थी ।”

[७३४-७३५] —“विद्या और मंत्र से चिकित्सा करनेवाले, मंत्र तथा औषधियों के विशारद, अद्वितीय शास्त्रकुशल, आयुर्वेदाचार्य मेरी चिकित्सा के लिए उपस्थित थे ।” — “उन्होंने मेरे हितार्थ वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक-रूप चतुष्पाद चिकित्सा की, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके । यह मेरी अनाथता है ।”

[७३६-७३७] —“मेरे पिता ने मेरे लिए चिकित्सकों को सर्वोत्तम वस्तुएँ दीं, किन्तु वे मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सके ।” —“महाराज ! मेरी माता पुत्रशोक के दुःख से बहुत पीड़ित रहती थी, किन्तु वह भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी, यह मेरी अनाथता है ।”

[७३८-७३९] —“महाराज ! मेरे बड़े और छोटे सभी सगे भाई तथा मेरी बड़ी और छोटी सगी बहनें भी मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी, यह मेरी अनाथता है ।”

[७४०-७४२] —“महाराज ! मुझ में अनुरक्त और अनुव्रत मेरी पत्नी अश्रुपूर्ण नयनों से मेरे उरःस्थल को भिगोती रहती थी ।” —“वह बाला मेरे प्रत्यक्ष में या परोक्ष में कभी भी अन्न, पान, स्नान, गन्ध, माल्य और विलेपन का उपभोग नहीं करती थी ।” —“वह एक क्षण के लिए भी मुझ से दूर नहीं होती थी । फिर भी वह मुझे दुःख से मुक्त नहीं कर सकी । महाराज ! यही मेरी अनाथता है ।”

[७४३-७४५] तब मैंने विचार किया कि प्राणी को इस अनन्त संसार में बार-बार असह्य वेदना का अनुभव करना होता है ।” —“इस विपुल वेदना से यदि एक बार भी मुक्त हो जाऊँ, तो मैं क्षान्त, दान्त और निराम्भ अनगारवृत्ति में प्रव्रजित हो जाऊँगा ।” इस प्रकार विचार करके मैं सो गया । परिवर्तमान रात के साथ-साथ मेरी वेदना भी क्षीण हो गई ।”

[७४६] —“तदनन्तर प्रातःकाल में नीरोग होते ही मैं बन्धुजनों को पूछकर क्षान्त, दान्त और निराम्भ होकर अनगार वृत्ति में प्रव्रजित हो गया ।”

[७४७] —“तब मैं अपना और दूसरों का, त्रस और स्थावर सभी जीवों का नाथ हो गया ।”

[७४८-७४९] —“मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, कूट-शाल्मली वृक्ष है, काम-दुधाधेनु है और नन्दन वन है ।” —“आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्ता है और विकर्ता-भोक्ता है । सत् प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है । और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है ।”

[७५०] “राजन् ! यह एक और भी अनाथता है । शान्त एवं एकाग्रचित्त होकर उसे सुनो ! बहुत से ऐसे कायर व्यक्ति होते हैं, जो निर्ग्रन्थ धर्म को पाकर भी खिन्न हो जाते हैं ।”

[७५१] —“जो महाव्रतों को स्वीकार कर प्रमाद के कारण उनका सम्यक् पालन नहीं



करता है, आत्मा का निग्रह नहीं करता है, रसों में आसक्त है, वह मूल से राग-द्वेष-रूप बन्धनों का उच्छेद नहीं कर सकता है ।”

[७५२] “जिसकी ईर्या, भाषा, एषणा और आदान-निक्षेप में और उच्चार-प्रस्रवण के परिष्ठापन में आयुक्तता नहीं है, वह उस मार्ग का अनुगमन नहीं कर सकता, जो वीर्यात है—

[७५३] “जो अहिंसादि व्रतों में अस्थिर है, तप और नियमों से भ्रष्ट है—वह चिर काल तक मुण्डरुचि रहकर और आत्मा को कष्ट देकर भी वह संसार से पार नहीं हो सकता ।”

[७५४] —“जो पोली मुट्टी की तरह निस्सार है, खोटे-सिक्रे की तरह अप्रमाणित है, वैडूर्य की तरह चमकने वाली तुच्छ काचमणि है, वह जानने वाले परीक्षकों की दृष्टि में मूल्यहीन है ।”

[७५५] —“जो कुशील का वेष और रजोहरणादि मुनिचिन्ह धारण कर जीविका चलाता है, असंयत होते हुए भी अपने-आप को संयत कहता है, वह चिरकाल तक विनाश को प्राप्त होता है ।”

[७५६] “पिया हुआ कालकूट-विष, उलटा पकड़ा हुआ शस्त्र, अनियन्त्रित वेताल—जैसे विनाशकारी होता है, वैसे ही विषय-विकारों से युक्त धर्म भी विनाशकारी होता है ।”

[७५७] —“जो लक्षण और स्वप्न-विद्या का प्रयोग करता है, निमित्त शास्त्र और कौतुक-कार्य में अत्यन्त आसक्त है, मिथ्या आश्चर्य को उत्पन्न करने वाली कुहेट विद्याओं से—जीविका चलाता है, वह कर्मफल-भोग के समय किसी की शरण नहीं पा सकता ।”

[७५८] —“वह शीलरहित साधु अपने तीव्र अज्ञान के कारण विपरीत-दृष्टि को प्राप्त होता है, फलतः असाधु प्रकृति वाला वह साधु मुनि-धर्म की विराधना कर सतत दुःख भोगता हुआ नरक और तिर्यच गति में आवागमन करता रहता है ।”

[७५९] —“जो औद्देशिक, क्रीत, नियाग आदि के रूप में थोड़ासा-भी अनेषणीय आहार नहीं छोड़ता है, वह अग्नि की भाँति सर्वभक्षी भिक्षु पाप-कर्म करके यहाँ से मरने के बाद दुर्गति में जाता है ।”

[७६०] “स्वयं की अपनी दुष्प्रवृत्ति जो अनर्थ करती है, वह गला काटने वाला शत्रु भी नहीं कर पाता है । उक्त तथ्य को संयमहीन मनुष्य मृत्यु के क्षणों में पश्चात्ताप करते हुए जान पाएगा ।”

[७६१] “जो उत्तमार्थ में विपरीत दृष्टि रखता है, उसकी श्रामण्य में अभिरुचि व्यर्थ है । उसके लिए न यह लोक है, न परलोक है । दोनों लोक के प्रयोजन से शून्य होने के कारण वह उभय-भ्रष्ट भिक्षु निरन्तर चिन्ता में धुलता जाता है ।”

[७६२] —“इसी प्रकार स्वच्छन्द और कुशील साधु भी जिनोत्तम मार्ग की विराधना कर वैसे ही परिताप को प्राप्त होता है, जैसे कि भोग-रसों में आसक्त होकर निरर्थक शोक करने वाली कुरी पक्षिणी परिताप को प्राप्त होती है ।”

[७६३-७६४] “मेधावी साधक इस सुभाषित को एवं ज्ञान-गुण से युक्त अनुशासन को सुनकर कुशील व्यक्तियों के सब मार्गों को छोड़कर, महान् निर्ग्रन्थों के पथ पर चले ।”  
—“चारित्र्याचार और ज्ञानादि गुणों से संपन्न निर्ग्रन्थ निराश्रव होता है । अनुत्तर शुद्ध संयम का पालन कर वह निराश्रव साधक कर्मों का क्षय कर विपुल, उत्तम एवं शाश्वत मोक्ष को प्राप्त

करता है ।”

[७६५] इस प्रकार उग्र-दान्त, महान् तपोधन, महा-प्रतिज्ञ, महान्-यशस्वी उस महामुनि ने इस महा-निर्ग्रन्थीय महाश्रुत को महान् विस्तार से कहा ।

[७६६-७६७] राजा श्रेणिक संतुष्ट हुआ और हाथ जोड़कर बोला—“भगवन् ! अनाथ का यथार्थ स्वरूप आपने मुझे ठीक तरह समझाया है ।” “हे महर्षि ! तुम्हारा मनुष्य-जन्म सफल है, उपलब्धियाँ सफल हैं, तुम सच्चे सनाथ और सवान्धव हो, क्योंकि तुम जिनेश्वर के मार्ग में स्थित हो ।”

[७६८-७६९] —“हे संयत ! तुम अनाथों के नाथ हो, सब जीवों के नाथ हो । मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ । मैं तुम से अनुशासित होने की इच्छा रखता हूँ ।” —“मैंने तुमसे प्रश्न कर जो ध्यान में विघ्न किया और भोगों के लिए निमन्त्रण दिया, उन सब के लिए मुझे क्षमा करें ।”

[७७०] इस प्रकार राजसिंह श्रेणिक राजा अनगार-सिंह मुनि की परम भक्ति से स्तुति कर अन्तःपुर तथा अन्य परिजनों के साथ धर्म में अनुरक्त हो गया ।

[७७१] राजा के रोमकूप आनन्द से उच्छ्वसित-उल्लसित हो रहे थे । वह मुनि की प्रदक्षिणा और सिर से वन्दना करके लौट गया ।

[७७२] और वह गुणों से समृद्ध, तीन गुणियों से गुप्त, तीन दण्डों से विरत, मोहमुक्त मुनि पक्षी की भाँति विप्रमुक्त होकर भूतल पर विहार करने लगे । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-२०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-२१-समुद्रपालीय

[७७३-७७६] चम्पा नगरी में ‘पालित’ नामक एक वणिकश्रावक था । वह विराट पुरुष भगवान् महावीर का शिष्य था । वह निर्ग्रन्थ प्रवचन का विद्वान् था । एक बार पोत से व्यापार करता हुआ वह पिहुण्ड नगर आया । वहाँ व्यापार करते समय उसे एक व्यापारी ने विवाह के रूप में अपनी पुत्री दी । कुछ समय के बाद गर्भवती पत्नी को लेकर उसने स्वदेश की ओर प्रस्थान किया । पालित की पत्नी ने समुद्र में ही पुत्र को जन्म दिया । इसी कारण उसका नाम ‘समुद्रपाल’ रखा ।

[७७७-७७९] वह वणिक श्रावक सकुशल चम्पा नगरी में अपने घर आया । वह सुकुमार बालक उसके घर में आनन्द के साथ बढ़ने लगा । उसने बहत्तर कलाएँ सीखीं, वह नीति-निपुण हो गया । वह युवावस्था से सम्पन्न हुआ तो सभी को सुन्दर और प्रिय लगने लगा । पिता ने उसके लिए ‘रूपिणी’ नाम की सुन्दर भार्या ला दी । वह अपनी पत्नी के साथ दोगुन्दक देव की भाँति सुरम्य प्रासाद में क्रीड़ा करने लगा ।

[७८०-७८२] एक समय वह प्रासाद के आलोकन में बैठा था । वध्य चिन्हों से युक्त वध्य को बाहर वध-स्थान की ओर ले जाते हुए उसने देखा । उसे संवेग-प्राप्त समुद्रपाल ने मन में कहा—“खेद है ! यह अशुभ कर्मों का दुःखद परिणाम है ।” इस प्रकार चिन्तन करते हुए वह महान् आत्मा संवेग को प्राप्त हुआ और सम्बुद्ध हो गया । माता-पिता को पूछ कर उसने अनगारिता दीक्षा ग्रहण की ।

[७८३] दीक्षित होने पर मुनि महा क्लेशकारी, महामोह और पूर्ण भयकारी संग का परित्याग करके पर्यायधर्म में, व्रत में, शील में और परीषहों में अभिरुचि रखे ।

[७८४] विद्वान् मुनि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अग्निह—इन पाँच महाव्रतों को स्वीकार करके जिनोपदिष्ट धर्म का आचरण करे ।

[७८५] इन्द्रियों का सम्यक् संवरण करने वाला भिक्षु सब जीवों के प्रति करुणाशील रहे, क्षमा से दुर्वचनादि को सहे संयत हो, ब्रह्मचारी हो । सदैव सावद्योग का परित्याग करता हुआ विचरे ।

[७८६] साधु समयानुसार अपने बलाबल को, जानकर राष्ट्रों में विचरण करे । सिंह की भाँति भयोत्पादक शब्द सुनकर भी संत्रस्त न हो । असभ्य वचन सुनकर भी बदले में असभ्य वचन न कहे ।

[७८७] संयमी प्रतिकूलताओं की उपेक्षा करता हुआ विचरण करे । प्रिय-अप्रिय परीषहों को सहन करे । सर्वत्र सबकी अभिलाषा न करे, पूजा और गर्हा भी न चाहे ।

[७८८] यहाँ संसार में मनुष्यों के अनेक प्रकार के अभिप्राय होते हैं । भिक्षु उन्हें अपने में भी भाव से जानता है । अतः वह देवकृत, मनुष्यकृत तथा तिर्यचकृत भयोत्पादक भीषण उपसर्गों को सहन करे ।

[७८९-७९१] अनेक असह्य परीषह प्राप्त होने पर बहुत से कायर लोग खेद का अनुभव करते हैं । किन्तु भिक्षु परिषह प्राप्त होने पर संग्राम में आगे रहने वाले हाथी की तरह व्यथित न हो । शीत, उष्ण, डौंस, मच्छर, तृण-स्पर्श तथा अन्य विविध प्रकार के आतंक जब भिक्षु को स्पर्श करें, तब वह कुत्सित शब्द न करते हुए उन्हें समभाव से सहे । पूर्वकृत कर्मों को क्षीण करे । विचक्षण भिक्षु सतत राग-द्वेष और मोह को छोड़कर, वायु से अकम्पित मेरु की भाँति आत्म-गुप्त बनकर परीषहों को सहे ।

[७९२] पूजा-प्रतिष्ठा में उन्नत और गर्हा में अवनत न होने वाला महर्षि पूजा और गर्हा में लिप्त न हो । वह समभावी विरत संयमी सरलता को स्वीकार करके निर्वाण-मार्ग को प्राप्त होता है ।

[७९३] जो अरति और रति को सहता है, संसारी जनों के परिचय से दूर रहता है, विरक्त है, आत्म-हित का साधक है, संयमशील है, शोक रहित है, ममत्त्व रहित है, अकिंचन है, वह परमार्थ पदों में स्थित होता है ।

[७९४] त्रायी, महान् यशस्वी ऋषियों द्वारा स्वीकृत, लेपादि कर्म से रहित, असंसृत से एकान्त स्थानों का सेवन करे और परीषहों को सहन करे ।

[७९५] अनुत्तर धर्म-संचय का आचरण करके सद्ज्ञान से ज्ञान को प्राप्त करनेवाला, अनुत्तर ज्ञानधारी, यशस्वी महर्षि, अन्तरिक्ष में सूर्य की भाँति धर्म-संघ में प्रकाशमान होता है ।

[७९६] समुद्रपाल मुनि पुण्यपाप दोनों ही कर्मों का क्षय करके संयम में निश्चल और सब प्रकार से मुक्त होकर समुद्र की भाँति विशाल संसार-प्रवाह को तैर कर मोक्ष में गए । — ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-२१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण



### अध्ययन-२२-रथनेमीय

[७९७-७९८] सोरियपुर नगर में राज-लक्षणों से युक्त, महान् ऋद्धि से संपन्न 'वासुदेव' राजा था । उसकी रोहिणी और देवकी दो पत्नियाँ थीं । उन दोनों के राम (बलदेव) और केशव (कृष्ण)—दो प्रिय पुत्र थे ।

[७९९-८००] सोरियपुर नगर में राज-लक्षणों से युक्त, महान् ऋद्धि से संपन्न 'समुद्रविजय' राजा भी था । उसकी शिवा पत्नी थी, जिसका पुत्र महान् यशस्वी, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, लोकनाथ, भगवान् अरिष्टनेमि था ।

[८०१-८०४] वह अरिष्टनेमि सुस्वरत्न एवं लक्षणों से युक्त था । १००८ शुभ लक्षणों का धारक भी था । उसका गोत्र गौतम था और वह वर्ण से श्याम था । वह वज्रऋषभ नाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थानवाला था । उसका उदर मछली के उदर जैसा कोमल था । राजमती कन्या उसकी भार्या बने, यह याचना केशव ने की । यह महान राजा की कन्या सुशील, सुन्दर, सर्वलक्षणसंपन्न थी । उसके शरीर की कान्ति विद्युत् की प्रभा समान थी । उसके पिता ने महान् ऋद्धिशाली वासुदेव को कहा—“कुमार यहाँ आए । मैं अपनी कन्या उसके लिए दे सकता हूँ ।”

[८०५-८०८] अरिष्टनेमि को सर्व औषधियों के जल से स्नान कराया गया । यथाविधि कौतुक एवं मंगल किए गए । दिव्य वस्त्र-युगल पहनाया गया और उसे आभरणों से विभूषित किया गया । वासुदेव के सबसे बड़े मेत गन्धहस्ती पर अरिष्टनेमि आरूढ़ हुए तो सिर पर चूडामणि की भाँति बहुत अधिक सुशोभित हुए । अरिष्टनेमि ऊँचे छत्र से तथा चामरों से सुशोभित था । दशार्ह-चक्र से वह सर्वतः परिवृत था । चतुरंगिणी सेना यथाक्रम सजाई हुई थी । और वाद्यों का गगन-स्पर्शी दिव्य नाद हो रहा था ।

[८०९-८१३] ऐसी उत्तम ऋद्धि और द्युति के साथ वह वृष्णि-पुंगव अपने भवन से निकला । तदनन्तर उसने बाड़ों और पिंजरों में बन्द किए गए भयत्रस्त एवं अति दुःखित प्राणियों को देखा । वे जीवन की अन्तिम स्थिति के सम्मुख थे । मांस के लिए खाये जाने वाले थे । उन्हें देखकर महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि ने सारथि को कहा—“ये सब सुखार्थी प्राणी किसलिए इन बाड़ों और पिंजरों में रोके हुए हैं ?” सारथि ने कहा—“ये भद्र प्राणी आपके विवाह-कार्य में बहुत से लोगों को मांस खिलाने के लिए हैं” ।

[८१४-८१६] अनेक प्राणियों के विनाश से सम्बन्धित वचन को सुनकर जीवों के प्रति करुणाशील, महाप्राज्ञ अरिष्टनेमि चिन्तन करते हैं—“यदि मेरे निमित्त से इन बहुत से प्राणियों का वध होता है, तो यह परलोक में मेरे लिए श्रेयस्कर नहीं होगा ।” उस महान् यशस्वी ने कुण्डल-युगल, सूत्रक और अन्य सब आभूषण उतार कर सारथि को दे दिए ।

[८१७-८२०] मन में ये परिणाम होते ही उनके यथोचित अभिनिष्क्रमण के लिए देवता अपनी ऋद्धि और परिपद् के साथ आए । देव और मनुष्यों से परिवृत भगवान् अरिष्टनेमि शिबिकारत्न में आरूढ़ हुए । द्वारका से चल कर रैवतक पर्वत पर स्थित हुए । उद्यान में पहुँचकर, उत्तम शिबिका से उतरकर, एक हजार व्यक्तियों के साथ, भगवान ने चित्रा नक्षत्र में निष्क्रमण किया । तदनन्तर समाहित—अरिष्टनेमि ने तुरन्त अपने सुगन्ध से सुवासित

कोमल और धुँधराले बालों का स्वयं अपने हाथों से पंचमुष्टि लोच किया ।

[८२१-८२३] वासुदेव कृष्ण ने लुप्तकेश एवं जितेन्द्रिय भगवान् को कहा—“हे दमीश्वर ! तुम अपने अभीष्ट मनोरथ को शीघ्र प्राप्त करो ।” —“तुम ज्ञान, दर्शन, चारित्र, क्षान्ति और मुक्ति के द्वारा आगे बढ़ो” । इस प्रकार बलराम, केशव, दशार्ह यादव और अन्य बहुत से लोग अरिष्टनेमि को वन्दना कर द्वारकापुरी को लौट आए ।

[८२४-८२६] भगवान् अरिष्टनेमि की प्रव्रज्या सुनकर राजकन्या राजीमती के हास्य और आनन्द सब समाप्त हो गए । और वह शोकसे मूर्च्छित हो गई । राजीमती ने सोचा—“धिक्कार है मेरे जीवन को । चूँकि मैं अरिष्टनेमि के द्वारा परित्यक्ता हूँ, अतः मेरा प्रव्रजित होना ही श्रेय है ।” धीर तथा कृतसंकल्प राजीमती ने कूर्च और कंधी से सँवारे हुए भौरे जैसे काले केशों का अपने हाथों से लुंचन किया ।

[८२७] वासुदेव ने लुप्त-केशा एवं जितेन्द्रिय राजीमती को कहा—“कन्ये ! तू इस घोर संसार-सागर को अति शीघ्र पार कर ।”

[८२८] शीलवती एवं बहुश्रुत राजीमती ने प्रव्रजित होकर अपने साथ बहुत से स्वजनों तथा परिजनों को भी प्रव्रजित कराया ।

[८२९-८३१] वह श्वेतक पर्वत पर जा रही थी कि बीच में ही वर्षा से भींग गई । जोर की वर्षा हो रही थी, अन्धकार छाण हुआ था । इस स्थिति में वह गुफा के अन्दर पहुँची । सुखाने के लिए अपने वस्त्रों को फैलाती हुई राजीमती को यथाजात रूप में स्थनेमि ने देखा । उसका मन विचलित हो गया । पश्चात् राजीमती ने भी उसको देखा । वहाँ एकान्त में उस संयत को देख कर वह डर गई । भय से काँपती हुई वह अपनी दोनों भुजाओं से शरीर को आवृत कर बैठ गई ।

[८३२-८३४] तब समुद्रविजय के अंगजात उस राजपुत्र ने राजीमती को भयभीत और काँपती हुई देखकर वचन कहा—“भद्रे ! मैं स्थनेमि हूँ । हे सुन्दरी ! हे चारुभाषिणी ! तू मुझे स्वीकार कर । हे सुतनु ! तुझे कोई पीड़ा नहीं होगी ।” —“निश्चित ही मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है । आओ, हम भोगों को भोगे । बाद में भुक्तभोगी हम जिन-मार्ग में दीक्षित होंगे ।”

[८३५-८३६] संयम के प्रति भग्नोद्योग तथा भोग-वासना से पराजित स्थनेमि को देखकर वह सम्भ्रान्त न हुई । उसने वस्त्रों से अपने शरीर को पुनः ढँक लिया । नियमों और व्रतों में सुस्थित श्रेष्ठ राजकन्या राजीमती ने जाति, कुल और शील की रक्षा करते हुए स्थनेमि से कहा—

[८३७-८३९] —“यदि तू रूप से वैश्रमण के समान है, ललित कलाओं से नलकुबर के समान है, तू साक्षात् इन्द्र भी है, तो भी मैं तुझे नहीं चाहती हूँ ।” [“अगन्धन कुल में उत्पन्न हुए सर्प धूम की ध्वजा वाली, प्रज्वलित, भयंकर, दुष्प्रवेश अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, किन्तु वनम किए हुए अपने विष को पुनः पीने की इच्छा नहीं करते हैं ।”] —“हे यशःकामिन् ! धिक्कार है तुझे कि तू भोगी जीवन के लिए त्यक्त भोगों को पुनः भोगने की इच्छा करता है । इससे तो तेरा मरना श्रेयस्कर है ।” —“मैं भोजराजा की पौत्री हूँ और तू अन्धक-वृष्णि का पौत्र है । हम कुल में गन्धन सर्प की तरह न बनें । तू निभृत होकर संयम

का पालन कर ।”

[८४०-८४२] “यदि तू जिस किसी स्त्री को देखकर ऐसे ही राग-भाव करेगा, तो वायु से कम्पित हड की तरह तू अस्थितात्मा होगा ।” —“जैसे गोपाल और भाण्डपाल उस द्रव्य के स्वामी नहीं होते हैं, उसी प्रकार तू भी श्रामण्य का स्वामी नहीं होगा ।” —“तू क्रोध, मान, माया और लोभ को पूर्णतया निग्रह करके, इन्द्रियों को वश में करके अपने-आप को उपसंहार कर—

[८४३-८४५] उस संयता के सुभाषित वचनों को सुनकर रथनेमि धर्म में सम्यक् प्रकार से वैसे ही स्थिर हो गया, जैसे अंकुश से हाथी हो जाता है । वह मन, वचन और काया से गुप्त, जितेन्द्रिय और व्रतों में दृढ़ हो गया । जीवन-पर्यन्त निश्चल भाव से श्रामण्य का पालन करता रहा । उग्र तप का आचरण करके दोनों ही केवली हुए । सब कर्मों का क्षय करके उन्होंने अनुत्तर ‘सिद्धि’ को प्राप्त किया ।

[८४६] सम्बुद्ध, पण्डित और प्रविचक्षण पुरुष ऐसा ही करते हैं । पुरुषोत्तम रथनेमि की तरह वे भोगों से निवृत्त हो जाते हैं । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-२३-केशिगौतमीय

[८४७-८५०] पार्श्व नामक जिन, अर्हन्, लोकपूजित सम्बुद्धात्मा, सर्वज्ञ, धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक और वीतराग थे । लोक-प्रदीप भगवान् पार्श्व के ज्ञान और चरण के पागामी, महान् यशस्वी ‘केशीकुमार-श्रमण’ शिष्य थे । वे अवधि-ज्ञान और श्रुत-ज्ञान से प्रबुद्ध थे । शिष्य-संघ से परिवृत्त ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी में आए । नगर के निकट तिन्दुक उद्यान में, जहाँ प्रासुक निर्दोष शय्या और संस्तारक सुलभ थे, ठहर गए ।

[८५१-८५४] उसी समय धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक, जिन, भगवान् वर्द्धमान थे, जो समग्र लोक में प्रख्यात थे । उन लोक-प्रदीप भगवान् वर्द्धमान के विद्या और चास्त्रि के पागामी, महान् यशस्वी भगवान् गौतम शिष्य थे । बारह अंगों के वेत्ता, प्रबुद्ध गौतम भी शिष्य-संघ से परिवृत्त ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी में आए । नगर के निकट कोष्ठक-उद्यान में, जहाँ प्रासुक शय्या, एवं संस्तारक सुलभ थे, ठहर गए ।

[८५५] कुमारश्रमण केशी और महान् यशस्वी गौतम—दोनों वहाँ विचरते थे । दोनों ही आलीन और सुसमाहित थे ।

[८५६-८५९] संयत, तपस्वी, गुणवान् और षट्काय के संरक्षक दोनों शिष्य-संघों में यह चिन्तन उत्पन्न हुआ—“यह कैसा धर्म है ? और यह कैसा धर्म है ? आचार धर्म की प्रणिधि—यह कैसी है और यह कैसी है ?” —“यह चातुर्यामि धर्म है, इसका प्रतिपादन महामुनि पार्श्वनाथ ने किया है । और यह पंच-शिक्षात्मक धर्म है, इसका महामुनि वर्द्धमान ने प्रतिपादन किया है ।” —“यह अचेलक धर्म वर्द्धमान ने बताया है, और यह सान्तरोत्तर धर्म पार्श्वनाथ ने प्ररूपित किया है । एक ही लक्ष्य से प्रवृत्त दोनों में इस विशेष भेद का क्या कारण है ?”

[८६०] केशी और गौतम दोनों ने ही शिष्यों के प्रवितर्कित—को जानकर परस्पर मिलने का विचार किया ।

[८६१-८६३] केशी श्रमण के कुल को जेष्ठ कुल जानकर प्रतिरूपज्ञ गौतम शिष्य-



संघ के साथ तिन्दुक वन में आए । गौतम को आते हुए देखकर केशी कुमार श्रमण ने उनकी सम्यक् प्रकार से प्रतिरूप प्रतिपत्ति की गौतम को बैठने के लिए शीघ्र ही उन्होंने प्रासुक पयाल और पाँचवाँ कुश-तृण समर्पित किया ।

[८६४] श्रमण केशीकुमार और महान् यशस्वी गौतम—दोनों बैठे हुए चन्द्र और सूर्य की तरह सुशोभित हो रहे थे ।

[८६५-८६६] कौतूहल की अबोध दृष्टि से वहाँ दूसरे सम्प्रदायों के बहुत से पखिजाक आए और अनेक सहस्र गृहस्थ भी । देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर और अदृश्य भूतों का वहाँ एक तरह से समागम सा हो गया था ।

[८६७-८७१] केशी ने गौतम से कहा—“महाभाग ! मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ ।” केशीके यह कहने पर गौतम ने कहा—“भन्ते ! जैसी भी इच्छा हो पूछिए। तदनन्तर अनुज्ञा पाकर केशी ने गौतम को कहा—“यह चतुर्याम धर्म है । इसका महामुनि पार्श्वनाथ ने प्रतिपादन किया है । यह जो पंच-शिक्षात्मक धर्म है, उसका प्रतिपादन महामुनि वर्द्धमान ने किया है ।” —“मेधाविन् ! एक ही उद्देश्य को लेकर प्रवृत्त हुए हैं, तो फिर इस भेद का क्या कारण है ? इन दो प्रकार के धर्मों में तुम्हें विप्रत्यय कैसे नहीं होता ?” तब गौतम ने कहा—“तत्त्व का निर्णय जिसमें होता है, ऐसे धर्मतत्त्व की समीक्षा प्रज्ञा करती है ।”

[८७२-८७३] “प्रथम तीर्थकर के साधु ऋजु और जड़ होते हैं । अन्तिम तीर्थकर के साधु वक्र और जड़ होते हैं । बीच के तीर्थकरो के साधु ऋजु और प्राज्ञ होते हैं । अतः धर्म दो प्रकार से कहा है ।” —“प्रथम तीर्थकर के मुनियों द्वारा कल्प को यथावत् ग्रहण कर लेना कठिन है । अन्तिम तीर्थकर के मुनियों द्वारा कल्प को यथावत् ग्रहण करना और उसका पालन करना कठिन है । मध्यवर्ती तीर्थकरो के मुनियों द्वारा कल्प को यथावत् ग्रहण करना और उसका पालन करना सरल है ।”

[८७४-८७६] “गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह सन्देह दूर कर दिया । मेरा एक और भी संदेह है । गौतम ! उसके विषय में भी मुझे कहें ।” —“यह अचेलक धर्म वर्द्धमान ने बताया है, और यह सान्तरोत्तर धर्म महायशस्वी पार्श्व ने प्रतिपादन किया है ।” —“एक ही कार्य से प्रवृत्त दोनों में भेद का कारण क्या है ? मेधावी ! लिंग के इन दो प्रकारों में तुम्हें कैसे संशय नहीं होता है ?”

[८७७-८७९] तब गौतम ने कहा—“विशिष्ट ज्ञान से अच्छी तरह धर्म के साधनों को जानकर ही उनकी अनुमति दी गई है ।” “नाना प्रकार के उपकरणों की परिकल्पना लोगों की प्रतीति के लिए है । संयमयात्रा के निर्वाह के लिए और ‘मैं साधु हूँ,—यथाप्रसंग इसका बोध रहने के लिए ही लोक में लिंग का प्रयोजन है ।” “वास्तव में दोनों तीर्थकरो का एक ही सिद्धान्त है कि मोक्ष के वास्तविक साधन ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही हैं ।”

[८८०-८८१] —“गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह संदेह तो दूर कर दिया । मेरा एक और भी संदेह है । गौतम ! उस विषय में भी मुझे कहें ।” —“गौतम ! अनेक सहस्र शत्रुओं के बीच में तुम खड़े हो । वे तुम्हें जीतना चाहते हैं । तुमने उन्हें कैसे जीता ?”

[८८२] गणधर गौतम—“एक को जीतने से पाँच जीत लिए गए और पाँच को जीत

लेने से दस जीत लिए गए । दसों को जीतकर मैंने सब शत्रुओं को जीत लिया ।”

[८८३-८८४] —“गौतम ! वे शत्रु कौन होते हैं ?” केशी ने गौतम को कहा । गौतमने कहा—“मुने ! न जीता हुआ एक अपना आत्मा ही शत्रु है । कषाय और इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं । उन्हें जीतकर नीति के अनुसार मैं विचरण करता हूँ ।”

[८८५-८८६] —“गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह संदेह दूर किया । मेरा एक और भी संदेह है ! गौतम ! उस विषय में भी मुझे कहें ।” —“इस संसार में बहुत से जीव पाश से बद्ध हैं । मुने ! तुम बन्धन से मुक्त और लघुभूत होकर कैसे विचरण करते हो ?”

[८८७] गणधर गौतम—“मुने ! उन बन्धनों को सब प्रकार से काट कर, उपायों से विनष्ट कर मैं बन्धनमुक्त और हलका होकर विचरण करता हूँ ।”

[८८८] —“गौतम ! वे बन्धन कौनसे हैं ?” केशी ने गौतम को पूछा । गौतम ने कहा—

[८८९] —“तीव्र रागद्वेषादि और स्नेह भयंकर बन्धन हैं । उन्हें काट कर धर्मनीति एवं आचार के अनुसार मैं विचरण करता हूँ ।”

[८९०-८९१] —“गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह संदेह दूर किया । मेरा एक और भी संदेह है, गौतम ! उसके विषय में भी मुझे कहें ।” —“गौतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न एक लता है । उसको विष-तुल्य फल लगते हैं । उसे तुमने कैसे उखाड़ा ?”

[८९२] गणधर गौतम—“उस लता को सर्वथा काट कर एवं जड़ से उखाड़ कर नीति के अनुसार मैं विचरण करता हूँ । अतः मैं विष-फल खाने से मुक्त हूँ ।”

[८९३-८९४] —“वह लता कौनसी है ?” केशी ने गौतम को कहा । गौतम ने कहा—“भवतृष्णा ही भयंकर लता है । उसके भयंकर परिपाक वाले फल लगते हैं । हे महामुने ! उसे जड़ से उखाड़कर मैं नीति के अनुसार विचरण करता हूँ ।”

[८९५-८९६] —“गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह संदेह दूर किया । मेरा एक और संदेह है । गौतम ! उसके विषय में भी मुझे कहें ।” “घोर प्रचण्ड अग्रियाँ प्रज्वलित हैं । वे जीवों को जलाती हैं । उन्हें तुमने कैसे बुझाया ?”

[८९७] गणधर गौतम—“महामेघ से प्रसूत पवित्र-जल को लेकर मैं उन अग्रियों का निरन्तर सिंचन करता हूँ । अतः सिंचन की गई अग्रियाँ मुझे नहीं जलाती हैं ।”

[८९८-८९९] —“वे कौन-सी अग्रियाँ हैं ?” केशी ने गौतम को कहा । गौतम ने कहा—“कषाय अग्रियाँ हैं । श्रुत, शील और तप जल है । श्रुत, शील, तप, रूप जल-धारा से बुझी हुई और नष्ट हुई अग्रियाँ मुझे नहीं जलाती हैं ।”

[९००-९०१] —“गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा संदेह दूर किया है । मेरा एक और भी संदेह है । गौतम ! उसके विषय में भी मुझे कहें ।” —“यह साहसिक, भयंकर, दुष्ट अश्व दौड़ रहा है । गौतम ! तुम उस पर चढ़े हुए हो । वह तुम्हें उन्मार्ग पर कैसे नहीं ले जाता है ?”

[९०२] गणधर गौतम—“दौड़ते हुए अश्व को मैं श्रुतरश्मि से-वश में करता हूँ । मेरे अधीन हुआ अश्व उन्मार्ग पर नहीं जाता है, अपितु सन्मार्ग पर ही चलता है ।”

[१०३-१०४] —“अश्व किसे कहा गया है ?” केशी ने गौतम को कहा । गौतम ने कहा—“मन ही साहसिक, भयंकर, दुष्ट अश्व है, जो चारों तरफ दौड़ता है । उसे मैं अच्छी तरह वश में करता हूँ । धर्मशिक्षा से वह कन्थक अश्व हो गया है ।”

[१०५-१०६] —“गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह संदेह दूर किया । मेरा एक और भी संदेह है । गौतम ! उसके विषय में भी मुझे कहें ।” —“गौतम ! लोक में कुमार्ग बहुत हैं, जिससे लोग भटक जाते हैं । मार्ग पर चलते हुए तुम क्यों नहीं भटकते हो ?”

[१०७] गणधर गौतम—“जो सन्मार्ग से चलते हैं और जो उन्मार्ग से चलते हैं, उन सबको मैं जानता हूँ । अतः हे मुने ! मैं नहीं भटकता हूँ ।

[१०८-१०९] —“मार्ग किसे कहते हैं ?” केशी ने गौतम को कहा । गौतम ने कहा—“मिथ्या प्रवचन को मानने वाले सभी पाषण्डी लोग उन्मार्ग पर चलते हैं । सन्मार्ग तो जिनोपदिष्ट है, और यही उत्तम मार्ग है ।”

[११०-१११] —“गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह संदेह दूर किया । मेरा एक और भी संदेह है । गौतम ! उसके विषय में भी मुझे कहें ।” —“मुने ! महान् जल-प्रवाह के वेग से बहते-डूबते हुए प्राणियों के लिए शरण, गति, प्रतिष्ठा और द्वीप तुम किसे मानते हो ?”

[११२] गणधर गौतम—“जल के बीच एक विशाल महाद्वीप है । वहाँ महान् जल-प्रवाह के वेग की गति नहीं है ।”

[११३-११४] —“वह महाद्वीप कौन सा है ?” केशी ने गौतम को कहा । गौतम ने कहा—“जरा-मरण के वेग से बहते-डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्म ही द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है ।”

[११५-११६] —“गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह संदेह दूर किया, मेरा एक और भी संदेह है । गौतम ! उसके विषय में भी मुझे कहें ।” —महाप्रवाह वाले समुद्र में नौका डगमगा रही है । तुम उस पर चढ़कर कैसे पार जा सकोगे ?”

[११७] गणधर गौतम—“जो नौका छिद्रयुक्त है, वह पार नहीं जा सकती है । जो छिद्ररहित है; वही नौका पार जाती है ।”

[११८-११९] “वह नौका कौन सी है ?” केशी ने गौतम को कहा । गौतम ने कहा—“शरीर नौका है, जीव नाविक है और संसार समुद्र है, जिसे महर्षि तैर जाते हैं ।”

[१२०-१२१] —“गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह संदेह दूर किया । मेरा एक और भी संदेह है । गौतम ! उसके विषय में भी मुझे कहें ।” —“भयंकर गाढ अन्धकार में बहुत से प्राणी रह रहे हैं । सम्पूर्ण लोक में प्राणियों के लिए कौन प्रकाश करेगा ?”

[१२२] गणधर गौतम—“सम्पूर्ण जगत् में प्रकाश करने वाला निर्मल सूर्य उदित हो चुका है । वह सब प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ।”

[१२३-१२४] “वह सूर्य कौन है ?” केशी ने गौतम को कहा । गौतम ने कहा—“जिसका संसार क्षीण हो गया है, जो सर्वज्ञ है, ऐसा जिन-भास्कर उदित हो चुका है । वह



सब प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ।”

[१२५-१२६] “गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह संदेह दूर किया । मेरा एक और भी संदेह है । गौतम ! उसके विषय में भी मुझे कहें ।” —“मुने ! शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित प्राणियों के लिए तुम क्षेम, शिव और अनाबाध—कौन-सा स्थान मानते हो ?”

[१२७] गणधर गौतम—“लोक के अग्र-भाग में एक ऐसा स्थान है, जहाँ जरा नहीं है, मृत्यु नहीं है, व्याधि और वेदना नहीं है । परन्तु वहाँ पहुँचना बहुत कठिन है ।”

[१२८-१३०] —“वह स्थान कौन सा है ।” केशी ने गौतम को कहा । गौतम ने कहा—“जिस स्थान को महर्षि प्राप्त करते हैं, वह स्थान निर्वाण है, अबाध है, सिद्धि है, लोकाग्र है । क्षेम, शिव और अनाबाध है ।” —“भव-प्रवाह का अन्त करने वाले मुनि जिसे प्राप्त कर शोक से मुक्त हो जाते हैं, वह स्थान लोक के अग्रभाग में शाश्वत रूप से अवस्थित है, जहाँ पहुँच पाना कठिन है ।”

[१३१] —“गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है । तुमने मेरा यह संदेह भी दूर किया । हे संशयातीत ! सर्व श्रुत के महोदधि ! तुम्हें मेरा नमस्कार है ।”

[१३२-१३३] इस प्रकार संशय के दूर होने पर घोर पराक्रमी केशीकुमार, महान् यशस्वी गौतम को वन्दना कर—प्रथम और अन्तिम जिनों के द्वारा उपदिष्ट एवं सुखावह पंचमहाव्रतरूप धर्म के मार्ग में भाव से प्रविष्ट हुए ।

[१३४-१३५] वहाँ तिन्दुक उद्यान में केशी और गौतम दोनों का जो यह सतत समागम हुआ, उसमें श्रुत तथा शील का उत्कर्ष और महान् तत्त्वों के अर्थों का विनिश्चय हुआ । समग्र सभा धर्मचर्या से संतुष्ट हुई । अतः सन्मार्ग में समुपस्थित उसने भगवान् केशी और गौतम की स्तुति की कि वे दोनों प्रसन्न रहें । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-२४-प्रवचनमाता

[१३६-१३८] समिति और गुप्ति-रूप आठ प्रवचनमाताएँ हैं । समितियाँ पाँच हैं । गुप्तियाँ तीन हैं । ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान समिति और उच्चार समिति । मनो-गुप्ति, वचन गुप्ति और आठवीं प्रवचन माता काय-गुप्ति है । ये आठ समितियाँ संक्षेप में कही गई हैं । इनमें जिनेन्द्र-कथित द्वादशांग-रूप समग्र प्रवचन अन्तर्भूत है ।

[१३९-१४३] संयती साधक आलम्बन, काल, मार्ग और यतना—इन चार कारणों से परिशुद्ध ईर्या समिति से विचरण करे । ईर्या समिति का आलम्बन—ज्ञान, दर्शन और चारित्र है । काल दिवस है । और मार्ग उत्पथ का वर्जन है । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से यतना चार प्रकार की है । उसको मैं कहता हूँ । सुनो । द्रव्य से—आँखों से देखे । क्षेत्र से—युगमात्र भूमि को देखे । काल से—जब तक चलता रहे तब तक देखे । भाव से—उपयोगपूर्वक गमन करे । इन्द्रियों के विषय और पाँच प्रकार के स्वाध्याय का कार्य छोड़कर मात्र गमन-क्रिया में ही तन्मय हो, उसी को प्रमुख महत्त्व देकर उपयोगपूर्वक चले ।

[१४४-१४५] क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, वाचालता और विकथा के प्रति सतत उपयोगयुक्त रहे । प्रज्ञावान् संयती इन आठ स्थानों को छोड़कर यथासमय निखद्य

और परिमिति भाषा बोले ।

[१४६-१४७] गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा से आहार, उपधि और शय्या का परिशोधन करे । यतनापूर्वक प्रवृत्ति करने वाला यति प्रथम एषणा में उद्गम और उत्पादन दोषों का शोधन करे । दूसरी एषणा में आहारादि ग्रहण करने से सम्बन्धित दोषों का शोधन करे । परिभोगैषणा में दोष-चतुष्क का शोधन करे ।

[१४८-१४९] मुनि ओध-उपधि और औपग्रहिक उपधि दोनों प्रकार के उपकरणों को लेने और रखने में इस विधि का प्रयोग करे । यतनापूर्वक प्रवृत्ति करने वाला यति दोनों प्रकार के उपकरणों को आँखों से प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके ले और रखे ।

[१५०-१५३] उच्चार, प्रस्रवण, श्लेष्म, सिंघानक, जल्ल, आहार, उपधि-उपकरण, शरीर तथा अन्य कोई विसर्जनयोग वस्तु को विवेकपूर्वक स्थण्डिल भूमि में उत्सर्ग करे । अनापात असंलोक—जहाँ लोगों का आवागमन न हो, और वे दूर से भी न दीखते हों । अनापात संलोक—लोगों का आवागमन न हो, किन्तु लोग दूर से दीखते हों । आपात असंलोक—लोगों का आवागमन हो, किन्तु वे दीखते न हों । आपात संलोक—लोगों का आवागमन हो और वे दिखाई भी देते हों । इस प्रकार स्थण्डिल भूमि चार प्रकार से होती है । जो भूमि अनापात-असंलोक हो, परोपघात से रहित हो, सम हो, अशुषिर हो तथा कुछ समय पहले निर्जीव हुई हो—विस्तृत हो, गाँव से दूर हो, बहुत नीचे तक अचित्त हो, बिल से रहित हो, तथा त्रस प्राणी और बीजों से रहित हो, ऐसी भूमि में उच्चार आदि का उत्सर्ग करना चाहिए ।

[१५४] ये पाँच समितियाँ संक्षेप से कही गई हैं । अब यहाँ से क्रमशः तीन गुप्तियाँ कहूँगा ।

[१५५-१५६] मनोगुप्ति के चार प्रकार हैं—सत्या, मृषा, सत्यामृषा और असत्यमृषा है, जो केवल लोकव्यवहार है । यतना-संपन्न यति संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त मन का निर्वर्तन करे ।

[१५७-१५८] वचन गुप्ति के चार प्रकार हैं—सत्या, मृषा, सत्यामृषा और असत्यामृषा यतना-संपन्न यति संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान वचन का निर्वर्तन करे ।

[१५९-१६०] खड़े होने में, बैठने में, त्वग्वर्तन में, उल्लंघन में, प्रलंघन में, शब्दादि विषयों में, इन्द्रियों के प्रयोग में—संरम्भ में, सभारम्भ में और आरम्भ में प्रवृत्त काया का निर्वर्तन करे ।

[१६१] ये पाँच समितियाँ चारित्र की प्रवृत्ति के लिए हैं । और तीन गुप्तियाँ सभी अशुभ विषयों से निवृत्ति के लिए हैं ।

[१६२] जो पण्डित मुनि इन प्रवचनमाताओं का सम्यक् आचरण करता है, वह शीघ्र ही सर्व संसार से मुक्त हो जाता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-२५-यज्ञीय

[१६३-१६५] ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, महान् यशस्वी जयघोष ब्राह्मण था, जो हिंसक यमरूप यज्ञ में अनुरक्त यायाजी था । वह इन्द्रिय-समूह का निग्रह करने वाला, मार्गगामी

महामुनि हो गया था । एक दिन ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ वाराणसी पहुँच गया । वाराणसी के बाहर मनोरम उद्यान में प्रासुक शय्या और संस्तारक लेकर ठहर गया ।

[१६६-१६७] उसी समय उस पुरी में वेदों का ज्ञाता, विजयघोष नाम का ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था । एक मास की तपश्चर्या के पारणा के समय भिक्षा के लिए वह जयघोष मुनि विजयघोष के यज्ञ में उपस्थित हुआ ।

[१६८-१७०] यज्ञकर्त्ता ब्राह्मण भिक्षा के लिए उपस्थित हुए मुनि को इन्कार करता है—“मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूँगा । भिक्षु ! अन्यत्र याचना करो ।” जो वेदों के ज्ञाता विप्र-ब्राह्मण हैं, यज्ञ करने वाले द्विज हैं और ज्योतिष के अंगों के ज्ञाता हैं एवं धर्मशास्त्रों के पारगामी हैं—“अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं, भिक्षु ! यह सर्वकामिक एवं सब को अभीष्ट अन्न उन्हीं को देना है ।”

[१७१-१७२] वहाँ इस प्रकार याजक के द्वारा इन्कार किए जाने पर उत्तम अर्थ की खोज करनेवाला वह महामुनि न क्रुद्ध हुआ, न प्रसन्न हुआ । न अन्न के लिए, न जल के लिए, न जीवन-निर्वाह के लिए, किन्तु उनके विमोक्षण के लिए मुनि ने कहा—

[१७३-१७४] “तू वेद के मुख को नहीं जानता है और न यज्ञों का, नक्षत्रों और धर्मों का जो मुख है, उसे ही जानता है ।” “जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं, उन्हें भी तू नहीं जानता है । यदि जानता है, तो बता ।”

[१७५-१७७] उसके आक्षेपों का अर्थात् उत्तर देने में असमर्थ ब्राह्मण ने अपनी समग्र परिषदा के साथ हाथ जोड़कर उस महामुनि से पूछा—“तुम कहो—वेदों का मुख क्या है ? यज्ञों का, नक्षत्रों का और धर्मों का जो मुख है, उसे भी कहिए ।” —“और अपना तथा दूसरों का उद्धार करने में जो समर्थ हैं, वे भी बतलाओ । मुझे यह सब संशय है । साधु ! मैं पूछता हूँ, आप बताइए ।”

[१७८-१७९] जयघोष मुनि—“वेदों का मुख अग्नि-होत्र है, यज्ञों का मुख यज्ञार्थी है, नक्षत्रों का मुख चन्द्र है और धर्मों का मुख काश्यप (ऋषभदेव) है ।” —“जैसे उत्तम एवं मनोहारी ग्रह आदि हाथ जोड़कर चन्द्र की वन्दना तथा नमस्कार करते हुए स्थित है, वैसे ही भगवान् ऋषभदेव हैं ।”

[१८०] “विद्या ब्राह्मण की सम्पदा है, यज्ञवादी इससे अनभिज्ञ हैं, वे बाहर में स्वाध्याय और तप से वैसे ही आच्छादित हैं, जैसे कि अग्नि राख से ढँकी हुई होती है ।”

[१८१] —“जिसे लोक में कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है, जो अग्नि के समान सदा पूजनीय है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”

[१८२] —“जो प्रिय स्वजनादि के आने पर आसक्त नहीं होता और न जाने पर शोक करता है । जो आर्य-वचन में रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”

[१८३] “कसौटी पर कसे हुए और अग्नि के द्वारा दग्धमल हुए जातरूप-सोने की तरह जो विशुद्ध है, जो राग से, द्वेष से और भय से मुक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”

[१८४] —“जो तपस्वी है, कृश है, दान्त है, जिसका मांस और रक्त अपचित हो गया है । जो सुव्रत है, शांत है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”

[१८५] —“जो त्रस और स्थावर जीवों को सम्यक् प्रकार से जानकर उनकी मन,



वचन और काया से हिंसा नहीं करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”

[१८६] —“जो क्रोध, हास्य, लोभ अथवा भय से झूठ नहीं बोलता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”

[१८७] —“जो सचित्त या अचित्त, थोड़ा या अधिक अदत्त नहीं लेता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”

[१८८-१८९] —“जो देव, मनुष्य और तिर्यञ्च-सम्बन्धी मैथुन का मन, वचन और शरीर से सेवन नहीं करता है, “जिस प्रकार जल में उत्पन्न हुआ कमल जल से लित नहीं होता, उसी प्रकार जो कामभोगों से अलित रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”

[१९०] “जो रसादि में लोलुप नहीं है, निर्दोष भिक्षा से जीवन का निर्वाह करता है, गृह-त्यागी है, अकिंचन है, गृहस्थों में अनासक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”

[१९१] —“उस दुःशील को पशुबंध के हेतु सर्व वेद और पाप-कर्मों से किए गए यज्ञ बचा नहीं सकते, क्योंकि कर्म बलवान् हैं ।”

[१९२-१९४] “केवल सिर मुँडाने से कोई श्रमण नहीं होता है, ओम् का जप करने से ब्राह्मण नहीं होता है, अरण्य में रहने से मुनि नहीं होता है, कुश का बना जीवर पहनने मात्र से कोई तपस्वी नहीं होता है ।” —“समभाव से श्रमण होता है । ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है । ज्ञान से मुनि होता है । तप से तपस्वी होता है ।” —“कर्म से ब्राह्मण होता है । कर्म से क्षत्रिय होता है । कर्म से वैश्य होता है । कर्म से ही शूद्र होता है ।”

[१९५] —“अर्हत् ने इन तत्त्वों का प्ररूपण किया है । इनके द्वारा जो साधक स्नातक होता है, सब कर्मों से मुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ।”

[१९६] “इस प्रकार जो गुण-सम्पन्न द्विजोत्तम होते हैं, वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं ।”

[१९७] इस प्रकार संशय मिट जाने पर विजयघोष ब्राह्मण ने महामुनि जयघोष की वाणी को सम्यक् रूप से स्वीकार किया ।

[१९८-१०००] संतुष्ट हुए विजयघोष ने हाथ जोड़कर कहा—“तुमने मुझे यथार्थ ब्राह्मणत्व का बहुत ही अच्छा उपदेश दिया है ।” “तुम यज्ञों के यष्टा हो, वेदों को जाननेवाले विद्वान् हो, ज्योतिष के अंगों के ज्ञाता हो, धर्मों के पारगामी हो ।” —“अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हो । अतः भिक्षुश्रेष्ठ ! भिक्षा स्वीकार कर हम पर अनुग्रह करो ।”

[१००१] —“मुझे भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं है । हे द्विज ! शीघ्र ही अभिनिष्क्रमण कर । ताकि भय के आवर्तों वाले संसार सागर में तुझे भ्रमण न करना पड़े ।”

[१००२] —“भोगों में कर्म का उपलेप होता है । अभोगी कर्मों से लित नहीं होता है । भोगी संसार में भ्रमण करता है । अभोगी उससे विप्रमुक्त हो जाता है ।”

[१००३-१००४] —“एक गीला और एक सूखा, ऐसे दो मिट्टी के गोले फेंके गये । वे दोनों दिवार पर गिरे । जो गीला था, वह वहीं चिपक गया ।” —“इसी प्रकार जो मनुष्य दुर्बुद्धि और काम-भोगों में आसक्त है, वे विषयों में चिपक जाते हैं । विस्तृत साधक सूखे गोले की भाँति नहीं लगते हैं ।”

[१००५] इस प्रकार विजयघोष, जयघोष अनगार के समीप, अनुत्तर धर्म को सुनकर

दीक्षित हो गया ।

[१००६] जयघोष और विजयघोष ने संयम और तप के द्वारा पूर्वसंचित कर्मों को क्षीण कर अनुत्तर सिद्धि प्राप्त की । —एसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-२५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-२६-सामाचारी

[१००७] सामाचारी सब दुःखों से मुक्त कराने वाली है, जिसका आचरण करके निर्ग्रन्थ संसार सागर को तैर गए हैं । उस सामाचारी का मैं प्रतिपादन करता हूँ—

[१००८-१०१०] पहली आवश्यकी, दूसरी नैषेधिकी, तीसरी आपृच्छना, चौथी प्रतिपृच्छना पाँचवी छन्दना, छठी इच्छाकार, सातवीं मिथ्याकार, आठवीं तथाकार—नौवीं अभ्युत्थान और दसवीं उपसंपदा है । इस प्रकार ये दस अंगों वाली साधुओं की सामाचारी प्रतिपादन की गई है ।

[१०११-१०१३] (१) बाहर निकलते समय “आवस्सिय” कहना, ‘आवश्यकी’ सामाचारी है । (२) प्रवेश करते समय “निस्सिहियं” कहना, ‘नैषेधिकी’ सामाचारी है । (३) अपने कार्य के लिए गुरु से अनुमति लेना, ‘आपृच्छना’ सामाचारी है । (४) दूसरों के कार्य के लिए गुरु से अनुमति लेना ‘प्रतिपृच्छना’ सामाचारी है । (५) पूर्वगृहीत द्रव्यों के लिए आमन्त्रित करना, ‘छन्दना’ सामाचारी है । (६) कार्य करने के लिए दूसरों को उनकी इच्छानुकूल विनम्र निवेदन करना, ‘इच्छाकार’ सामाचारी है । (७) दोष निवृत्ति के लिए आत्मनिन्दा ‘मिथ्याकार’ सामाचारी है । (८) गुरुजनों के उपदेश को स्वीकार करना, ‘तथाकार’ सामाचारी है । (९) गुरुजनों की पूजा के लिए आसन से उठकर खड़ा होना, ‘अभ्युत्थान’ सामाचारी है । (१०) प्रयोजन से दूसरे आचार्य के पास रहना, ‘उपसम्पदा’ सामाचारी है । इस प्रकार दशांग-सामाचारी का निरूपण किया गया है ।

[१०१४-१०१६] सूर्योदय होने पर दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में उपकरणों का प्रतिलेखन कर गुरु को वन्दना कर—हाथ जोड़कर पूछे कि—“अब मुझे क्या करना चाहिए ? भन्ते ! मैं चाहता हूँ, मुझे आप आज स्वाध्याय में नियुक्त करते हैं, अथवा वैयावृत्य में ।” वैयावृत्य में नियुक्त किए जाने पर ग्लानि से रहित होकर सेवा करे । अथवा सभी दुःखों से मुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त किए जाने पर ग्लानि से रहित होकर स्वाध्याय करे ।

[१०१७-१०१८] विचक्षण भिक्षु दिन के चार भाग करे । उन चारों भागों में स्वाध्याय आदि गुणों की आराधना करे । प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचरी और चौथे में पुनः स्वाध्याय करे ।

[१०१९-१०२१] आषाढ़ महीने में द्विपदा पौरुषी होती है । पौष महीने में चतुष्पदा और चैत्र एवं आश्विन महीने में त्रिपदा पौरुषी होती है । सात रात में एक अंगुल, पक्ष में दो अंगुल और एक मास में चार अंगुल की वृद्धि और हानि होती है । आषाढ़, भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख के कृष्ण पक्ष में एक-एक अहो रात्रि का क्षय होता है ।

[१०२२] जेष्ठ, आषाढ़ और श्रावण में छह अंगुल, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक में आठ अंगुल तथा मृगशिर, पौष और माघ-में दस अंगुल और फाल्गुन, चैत्र, वैशाख में आठ

अंगुल की वृद्धि करने से प्रतिलेखन का पौरुषी समय होता है ।

[१०२३-१०२४] विचक्षण भिक्षु रात्रि के भी चार भाग करे । उन चारों भागों में उत्तर-गुणों की आराधना करे । प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में नींद और चौथे में पुनः स्वाध्याय करे ।

[१०२५-१०२६] जो नक्षत्र जिस रात्रि की पूर्ति करता हो, वह जब आकाश के प्रथम चतुर्थ भाग में आ जाता है, तब वह 'प्रदोषकाल' होता है, उस काल में स्वाध्याय से निवृत्त हो जाना चाहिए । वही नक्षत्र जब आकाश के अन्तिम चतुर्थ भाग में आता है, तब उसे 'वैरात्रिक काल' समझकर मुनि स्वाध्याय में प्रवृत्त हो ।

[१०२७-१०२८] दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में पात्रादि उपकरणों का प्रतिलेखन कर, गुरु को वन्दना कर, दुःख से मुक्त करने वाला स्वाध्याय करे । पौन पौरुषी बीत जाने पर गुरु को वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण किए बिना ही भाजन का प्रतिलेखन करे ।

[१०२९-१०३०] मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन कर गोच्छा का प्रतिलेखन करे । अंगुलियों से गोच्छा को पकड़कर वस्त्र का प्रतिलेखन करे । सर्वप्रथम ऊकड़ू आसन से बैठे, फिर वस्त्र का ऊँचा रखे, स्थिर रखे और शीघ्रता किए बिना उसका प्रतिलेखन करे । दूसरे में वस्त्र को धीरे से झटकाए और तीसरे में वस्त्र का प्रमार्जन करे ।

[१०३१] प्रतिलेखन के समय वस्त्र या शरीर को न नचाए, न मोड़े, वस्त्र को दृष्टि से अलक्षित न करे, वस्त्र का दिवार आदि से स्पर्श न होने दे । वस्त्र के छह पूर्व और नौ खोटक करे । जो कोई प्राणी हो, उसका विशोधन करे ।

[१०३२-१०३३] प्रतिलेखन के दोष—(१) आरभटा—निर्दिष्ट विधि से विपरीत प्रतिलेखन करना, (२) सम्पर्दा—प्रतिलेखन करते समय वस्त्र को इस तरह पकड़ना कि उसके कोने हवा में हिलते रहें, (३) मोसली—प्रतिलेखन करते हुए वस्त्र को ऊपर-नीचे, इधर-उधर किसी अन्य वस्त्र या पदार्थ से संघट्टित करते रहना । (४) प्रस्फोटना—धूलिधूसरित वस्त्र को जोर से झटकना । (५) विक्षिप्ता—प्रतिलेखित वस्त्र को अप्रतिलेखित वस्त्रों में रख देना । (६) वेदिका—प्रतिलेखना करते हुए घुटनों के ऊपर-नीचे या दोनों भुजाओं के बीच घुटनों को रखना । (७) प्रशिथिल—वस्त्र को ढीला पकड़ना । (८) प्रलम्ब—वस्त्र को इस तरह पकड़ना कि उसके कोने नीचे लटकते रहें । (९) लोल—प्रतिलेख्यमान वस्त्र का भूमि से या हाथ से संघर्षण करना । (१०) एकामर्शा—वस्त्र को बीच में से पकड़ कर एक दृष्टि में ही समूचे वस्त्र को देख जाना (११) अनेकरूपधूनना—वस्त्र को अनेक बार झटकना । (१२) प्रमाणप्रमाद—प्रस्फोटन और प्रमार्जन का जो प्रमाण है, उसमें प्रमाद करना । (१३) गणनोपगणना—प्रस्फोटन और प्रमार्जन के निर्दिष्ट प्रमाण में शंका के कारण हाथ की अंगुलियों की पर्व रेखाओं से गिनती करना ।

[१०३४] प्रस्फोटन और प्रमार्जन के प्रमाण से अन्यून, अनतिरिक्त तथा अविपरीत प्रतिलेखना ही शुद्ध होती है । उक्त तीन विकल्पों के आठ विकल्प होते हैं, उनमें प्रथम विकल्प ही शुद्ध है ।

[१०३५-१०३६] प्रतिलेखन करते समय जो परस्पर वार्तालाप करता है, जनपद



कथा करता है, प्रत्याख्यान कराता है, दूसरों को पढ़ाता है अथवा स्वयं पढ़ता है—वह प्रतिलेखना में प्रमत्त मुनि पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—छहों कायों का विराधक होता है । प्रतिलेखन में अप्रमत्त मुनि छहों कायों का आराधक होता है ।

[१०३७-१०३८] छह कारणों में से किसी एक कारण के उपस्थित होने पर तीसरे प्रहर में भक्तपान की गवेषणा करे । क्षुधा-वेदना की शान्ति, वैयावृत्य, ईर्यासमिति के पालन, संयम, प्राणों की रक्षा और धर्मचिन्तन के लिए भक्तपान की गवेषणा करे ।

[१०३९-१०४०] घृति-सम्पन्न साधु और साध्वी इन छह कारणों से भक्त-पान की गवेषणा न करे, जिससे संयम का अतिक्रमण न हो । रोग होने पर, उपसर्ग आने पर, ब्रह्मचर्य गुप्ति की सुरक्षा, प्राणियों की दया, तप और शरीरविच्छेद के लिए मुनि भक्त-पान की गवेषणा न करे ।

[१०४१] सब उपकरणों का आँखों से प्रतिलेखन करे और उन्हें लेकर आवश्यक हो, तो दूसरे गाँव में मुनि आधे योजन की दूरी तक भिक्षा के लिए जाए ।

[१०४२-१०४३] चतुर्थ प्रहर में प्रतिलेखना कर सभी पात्रों को बाँध कर रख दे । उसके बाद जीवादि सब भावों का प्रकाशक स्वाध्याय करे । पौरुषी के चौथे भाग में गुरु को वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण कर शय्या का प्रतिलेखन करे ।

[१०४४-१०४८] देवसिक-प्रतिक्रमण—यतना में प्रयत्नशील मुनि फिर प्रस्रवण और उच्चार-भूमिका प्रतिलेखन करे । उसके बाद सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे । ज्ञान, दर्शन और चारित्र से सम्बन्धित दिवस-सम्बन्धी अतिचारों का अनुक्रम से चिन्तन करे । कायोत्सर्ग को पूर्ण करके गुरु को वन्दना करे । तदनन्तर अनुक्रम में दिवससम्बन्धी अतिचारों की आलोचना करे । प्रतिक्रमण कर, निःशल्य होकर गुरु को वन्दना करे । उसके बाद सब दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे । कायोत्सर्ग पूरा करके गुरु को वन्दना करे । फिर स्तुतिमंगल करके काल का प्रतिलेखन करे ।

[१०४९-१०५०] रात्रिक कृत्य एवं प्रतिक्रमण—प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में नींद और चौथे में पुनः स्वाध्याय करे । चौथे प्रहर में कालका प्रतिलेखन कर, असंयत व्यक्तियों को न जगाता हुआ स्वाध्याय करे ।

[१०५१-१०५४] चतुर्थ प्रहर के चौथे भाग में गुरु को वन्दना कर, काल का प्रतिक्रमण कर, काल का प्रतिलेखन करे । सब दुःखों से मुक्त करने वाले कायोत्सर्ग का समय होने पर सब दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे । ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप से सम्बन्धित रात्रि-सम्बन्धी अतिचारों का अनुक्रम से चिन्तन करे । कायोत्सर्ग को पूरा कर, गुरु को वन्दना करे । फिर अनुक्रम से रात्रिसम्बन्धी अतिचारों की आलोचना करे ।

[१०५५-१०५७] प्रतिक्रमण कर, निःशल्य होकर गुरु को वन्दना करे । तदनन्तर सब दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे । कायोत्सर्ग में चिन्तन करे कि 'मैं आज किस तप को स्वीकार करूँ ।' कायोत्सर्ग को समाप्त कर गुरु को वन्दना करे । कायोत्सर्ग पूरा होने पर गुरु को वन्दना करे । उसके बाद यथोचित तप को स्वीकार कर सिद्धों की स्तुति करे ।

[१०५८] संक्षेप में यह सामाचारी कही है । इसका आचरण कर बहुत से जीव संसारसागर को तैर गये हैं । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-२७-खलुंकीय

[१०५९] गर्ग कुल में उत्पन्न 'गार्ग्य' मुनि स्थविर, गणधर और विशाख थे, गुणों से युक्त थे । गणि-भाव में स्थित और समाधि में अपने को जोड़े हुए थे ।

[१०६०] शकटादि वहान को ठीक तरह वहन करने वाला बैल जैसे कान्तार को सुखपूर्वक पार करता है, उसी तरह योग में संलग्न मुनि संसार को पार कर जाता है ।

[१०६१-१०६५] जो खलुंक बैलों को जीतता है, वह उन्हें मारता हुआ क्लेश पाता है, असमाधि का अनुभव करता है और अन्ततः उसका चाबुक भी टूट जाता है । वह क्षुब्ध हुआ वाहक किसी की पूँछ काट देता है, तो किसी को बार-बार बाँधता है । और उन बैलों में से कोई एक समिला तोड़ देता है, तो दूसरा उन्मार्ग पर चल पड़ता है । कोई मार्ग के एक ओर पार्श्व में गिर पड़ता है, कोई बैठ जाता है, कोई लेट जाता है । कोई कूदता है, कोई उछलता है, तो कोई शठ तरुण गाय के पीछे भाग जाता है । कोई धूर्त बैल शिर को निढाल बनाकर भूमि पर गिर जाता है । कोई क्रोधित होकर प्रतिपथ में चला जाता है । कोई मृतक-सा पड़ा रहता है, तो कोई वेग से दौड़ने लगता है । कोई दुष्ट बैल रास को छिन्न-भिन्न कर देता है । दुर्दान्त होकर जुए को तोड़ देता है । और सू-सू आवाज करके वाहन को छोड़कर भाग जाता है ।

[१०६६-१०६९] अयोग्य बैल जैसे वाहन को तोड़ देते हैं, वैसे ही धैर्य में कमजोर शिष्यों को धर्म-यान में जोतने पर वे भी उसे तोड़ देते हैं । कोई ऋद्धि-का गौरव करता है, कोई रस का गौरव करता है, कोई सुख का गौरव करता है, तो कोई चिरकाल तक क्रोध करता है । कोई भिक्षाचरी में आलस्य करता है, कोई अपमान से डरता है, तो कोई स्तब्ध है । हेतु और कारणों से गुरु कभी किसी को अनुशासित करता है तो—वह बीच में ही बोलने लगता है, आचार्य के वचन में दोष निकालता है । तथा बार-बार उनके वचनों के प्रतिकूल आचरण करता है ।

[१०७०-१०७१] भिक्षा लाने के समय कोई शिष्य गृहस्वामिनी के सम्बन्ध में कहता है—वह मुझे नहीं जानती है, वह मुझे नहीं देगी । मैं मानता हूँ—वह घर से बाहर गई होगी, अतः इसके लिए कोई दूसरा साधु चला जाए । किसी प्रयोजनविशेष से भेजने पर वे विना कार्य किए लौट आते हैं और अपलाप करते हैं । इधर-उधर घूमते हैं । गुरु की आज्ञा को राजा के द्वारा ली जाने वाली वेष्टि की तरह मानकर मुख पर भृकुटि तान लेते हैं ।

[१०७२] जैसे पंख आने पर हंस विभिन्न दिशाओं में उड़ जाते हैं, वैसे ही शिक्षित एवं दीक्षित किए गए, भक्त-पान से पोषित किए गए कुशिष्य भी अन्यत्र चले जाते हैं ।

[१०७३-१०७४] इन से खिन्न होकर धर्मयान के सारथी आचार्य सोचते हैं—“मुझे इन दुष्ट शिष्यों से क्या लाभ ? इनसे तो मेरी आत्मा अवसन्न ही होती है ।” जैसे गलिर्दभ होते हैं, वैसे ही ये मेरे शिष्य हैं ।” यह विचार कर गार्गाचार्य गलिर्दभरूप शिष्यों को छोड़कर दृढता से तपसाधना में लग गए ।

[१०७५] वह मृदु और मार्दव से सम्पन्न, गम्भीर, सुसमाहित और शील-सम्पन्न महान् आत्मा गर्ग पृथ्वी पर विचरने लगे । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-२८-मोक्षमार्गगति

[१०७६] ज्ञानादि चार कारणों से युक्त, ज्ञानदर्शन लक्षण स्वरूप, जिनभाषित, सम्यक् मोक्ष-मार्ग की गति को सुनो ।

[१०७७-१०७८] वरदर्शी जिनवरों ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप को मोक्ष का मार्ग बतलाया है । ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के मार्ग पर आरूढ हुए जीव सद्गति को प्राप्त करते हैं ।

[१०७९-१०८०] उन में ज्ञान पांच प्रकार का है—श्रुत ज्ञान, आभिनिबोधिक ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनोज्ञान और केवल ज्ञान । यह पाँच प्रकार का ज्ञान सब द्रव्य, गुण और पर्यायों का ज्ञान है, ऐसा ज्ञानियों ने कहा है ।

[१०८१] द्रव्य गुणों का आश्रय है, जो प्रत्येक द्रव्य के आश्रित रहते हैं, वे गुण होते हैं । पर्यायों का लक्षण द्रव्य और गुणों के आश्रित रहना है ।

[१०८२] वरदर्शी जिनवरों ने धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव-यह छह द्रव्यात्मक लोक कहा है ।

[१०८३] धर्म, अधर्म और आकाश-ये तीनों द्रव्य संख्या में एक-एक हैं । काल, पुद्गल और जीव-ये तीनों द्रव्य अनन्त-अनन्त हैं ।

[१०८४-१०८५] गति धर्म का लक्षण है, स्थिति अधर्म का लक्षण है, सभी द्रव्यों का भाजन अवगाहलक्षण आकाश है । वर्तना काल का लक्षण है । उपयोग जीव का लक्षण है, जो ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख से पहचाना जाता है ।

[१०८६-१०८८] ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग—ये जीव के लक्षण हैं । शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श—ये पुद्गल के लक्षण हैं । एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, संस्थान, संयोग और विभाग—ये पर्यायों के लक्षण हैं ।

[१०८९-१०९०] जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये नौ तत्त्व हैं । इन तथ्यस्वरूप भावों के सद्भाव के निरूपण में जो भावपूर्वक श्रद्धा है, उसे सम्यक्त्व कहते हैं ।

[१०९१] सम्यक्त्व के दस प्रकार हैं—निसर्गरुचि, उपदेश-रुचि, आज्ञा-रुचि, सूत्र-रुचि, बीज-रुचि, अभिगम-रुचि, विस्तार-रुचि, क्रिया-रुचि, संक्षेप-रुचि और धर्म-रुचि ।

[१०९२-१०९३] परोपदेश के बिना स्वयं के ही यथार्थ बोध से अवगत जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव और संवर आदि तत्त्वों की जो रुचि है, वह 'निसर्ग रुचि' है । जिन दृष्ट भावों में, तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से विशिष्ट पदार्थों के विषय में—'यह ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है'—ऐसी जो स्वतः स्फूर्त श्रद्धा है, वह 'निसर्गरुचि' है ।

[१०९४] जो अन्य छद्मस्थ अथवा अर्हत् के उपदेश से जीवादि भावों में श्रद्धान् करता है, वह 'उपदेशरुचि' जानना ।

[१०९५] राग, द्वेष, मोह और अज्ञान जिसके दूर हो गये हैं, उसकी आज्ञा में रुचि रखना, 'आज्ञा रुचि' है ।

[१०९६] जो अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत का अवगाहन करता हुआ श्रुत से



सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है, वह 'सूत्ररुचि' जानना ।

[१०९७] जैसे जल में तेल की बूँद फैल जाती है, वैसे ही जो सम्यक्त्व एक पद से अनेक पदों में फैलता है, वह 'बीजरुचि' है ।

[१०९८] जिसने ग्यारह अंग, प्रकीर्णक, दृष्टिवाद आदि श्रुतज्ञान अर्थ-सहित प्राप्त किया है, वह 'अभिगमरुचि' है ।

[१०९९] समग्र प्रमाणों और नयों से जो द्रव्यों के सभी भावों को जानता है, वह 'विस्ताररुचि' है ।

[११००] दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति और गुप्ति आदि क्रियाओं में जो भाव से रुचि है, वह 'क्रियारुचि' है ।

[११०१] जो निर्ग्रन्थ-प्रवचन में अकुशल है, साथ ही मिथ्या प्रवचनों से भी अनभिज्ञ है, किन्तु कुदृष्टि का आग्रह न होने के कारण अल्प-बोध से ही जो तत्त्व श्रद्धा वाला है, वह 'संक्षेपरुचि' है ।

[११०२] जिन-कथित अस्तिकाय धर्म में, श्रुत-धर्म में और चारित्र-धर्म में श्रद्धा करता है, वह 'धर्मरुचि' वाला है ।

[११०३] परमार्थ को जानना, परमार्थ के तत्त्वद्रष्टाओं की सेवा करना, व्यापन्नदर्शन और कुदर्शन से दूर रहना, सम्यक्त्व का श्रद्धान् है ।

[११०४-११०५] चारित्र सम्यक्त्व के बिना नहीं होता है, किन्तु सम्यक्त्व चारित्र के बिना हो सकता है । सम्यक्त्व और चारित्र युगपद्-एक साथ ही होते हैं । चारित्र से पूर्व सम्यक्त्व का होना आवश्यक है । सम्यक्त्व के बिना ज्ञान नहीं होता है, ज्ञान के बिना चारित्र-गुण नहीं होता है । चारित्र-गुण के बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के बिना निर्वाण नहीं होता है ।

[११०६] निःशंका, निष्कांक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढ-दृष्टि उपबृंहण, स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना—ये आठ सम्यक्त्व के अंग हैं ।

[११०७-११०८] चारित्र के पाँच प्रकार हैं—सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय और—पाँचवाँ यथाख्यात चारित्र है, जो सर्वथा कषायरहित होता है । वह छद्मस्थ और केवली—दोनों को होता है । ये चारित्र कर्म के चय को रिक्त करते हैं, अतः इन्हें चारित्र कहते हैं ।

[११०९] तप के दो प्रकार हैं—बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य तप छह प्रकार का है, इसी प्रकार आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का है ।

[१११०] आत्मा ज्ञान से जीवादि भावों को जानता है, दर्शन से उनका श्रद्धान् करता है, चारित्र से कर्म-आश्रव का निरोध करता है, और तप से विशुद्ध होता है ।

[११११] सर्व दुःखों से मुक्त होने के लिए महर्षि संयम और तप के द्वारा पूर्व कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करते हैं । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-२९-सम्यक्त्वपराक्रम

[१११२] आयुष्यमन् ! भगवान ने जो कहा है, वह मैंने सुना है । इस 'सम्यक्त्व

पराक्रम' अध्ययन में काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान् महावीर ने जो प्ररूपणा की है, उसकी सम्यक् श्रद्धा से, प्रतीति से, रुचि से, स्पर्श से, पालन करने से, गहराई पूर्वक जानने से, कीर्तन से, शुद्ध करने से, आराधना करने से, आज्ञानुसार अनुपालन करने से बहुत से जीव सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, सब दुःखों का अन्त करते हैं ।

[१११३] उसका यह अर्थ है, जो इस प्रकार कहा जाता है । जैसे कि—संवेग, निर्वेद, धर्म श्रद्धा, गुरु और साधर्मिक की शुश्रूषा, आलोचना, निन्दा, गर्हा, सामायिक, चतुर्विंशति-स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान, स्तव-स्तुति-मंगल, कालप्रतिलेखना, प्रायश्चित्त, क्षमापना, स्वाध्याय, वाचना, प्रतिप्रच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा, श्रुत आराधना, मन की एकाग्रता, संयम, तप, व्यवदान, सुखशात, अप्रतिबद्धता, विविक्त शयनासन सेवन, विनिवर्तना, संभोगप्रत्खन, उपधि-प्रत्याख्यान, आहार-प्रत्याख्यान, कषाय-प्रत्याख्यान, योग-प्रत्याख्यान, शरीर-प्रत्याख्यान, सहाय-प्रत्याख्यान, भक्त-प्रत्याख्यान, सद्भाव-प्रत्याख्यान, प्रतिरूपता, वैयावृत्य, सर्वगुण-संपन्नता, वीतरागता, क्षान्ति, निर्लोभता, आर्जव-ऋजुता, मार्दव-मृदुता, भाव-सत्य, करण-सत्य, योग-सत्य, मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति, मनःसमाधारणा, वाक्-समाधारणा, काय-समाधारणा, ज्ञानसंपन्नता, दर्शनसंपन्नता, चारित्रसंपन्नता, श्रोत्र-इन्द्रिय-निग्रह, चक्षुष्-इन्द्रिय-निग्रह, घ्राण-इन्द्रिय-निग्रह, जिह्वा-इन्द्रिय-निग्रह, स्पर्शन-इन्द्रिय-निग्रह, क्रोधविजय, मानविजय, मायाविजय, लोभविजय, प्रेय-द्वेष-मिथ्यादर्शन विजय, शैलेशी और अकर्मता ।

[१११४] भन्ते ! संवेग से जीव को क्या प्राप्त होता है ? संवेग से जीव अनुत्तर-परम धर्म-श्रद्धा को प्राप्त होता है । परम धर्म श्रद्धा से शीघ्र ही संवेग आता है । अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का क्षय करता है । नए कर्मों का बन्ध नहीं करता है । मिथ्यात्वविशुद्धि कर दर्शन का आराधक होता है । दर्शनविशोधि के द्वारा कई जीव उसी जन्म से सिद्ध होते हैं । और कुछ तीसरे भवका अतिक्रमण नहीं करते हैं ।

[१११५] भन्ते ! निर्वेद से जीव को क्या प्राप्त होता है ? निर्वेद से जीव देव, मनुष्य और तिर्यच-सम्बन्धी काम-भोगों में शीघ्र निर्वेद को प्राप्त होता है । सभी विषयों में विरक्त होता है । आरम्भ का परित्याग करता है । आरम्भ का परित्याग कर संसार-मार्ग का विच्छेद करता है और सिद्धि मार्ग को प्राप्त होता है ।

[१११६] भन्ते ! धर्म-श्रद्धा से जीव को क्या प्राप्त होता है ? धर्मश्रद्धा से जीव सात-सुख कर्मजन्य वैषयिक सुखों की आसक्ति से विरक्त होता है । अगार-धर्म को छोड़ता है । अनगार होकर छेदन, भेदन आदि शारीरिक तथा संयोगादि मानसिक दुःखों का विच्छेद करता है, अव्याबाध सुख को प्राप्त होता है ।

[१११७] भन्ते ! गुरु और साधार्मिक की शुश्रूषा से जीव को क्या प्राप्त होता है ? गुरु और साधार्मिक की शुश्रूषा से जीव विनयप्रतिपत्ति को प्राप्त होता है । विनयप्रतिपन्न व्यक्ति गुरु की परिवादादिरूप आशातना नहीं करता । उससे वह नैरयिक, तिर्यग्, मनुष्य और देव सम्बन्धी दुर्गति का निरोध करता है । वर्ण, संज्वलन, भक्ति और बहुमान से मनुष्य और देवसम्बन्धी सुगति का बन्ध करता है । और श्रेष्ठगतिस्वरूप सिद्धि को विशुद्ध करता है ।

विनयमूलक सभी प्रशस्त कार्यों को साधता है । बहुत से अन्य जीवों को भी विनयी बनाने वाला होता है ।

[१११८] भन्ते ! आलोचना से जीव को क्या प्राप्त होता है ? आलोचना से मोक्ष-मार्ग में विघ्न डालने वाले और अनन्त संसार को बढ़ाने वाले माया, निदान और मिथ्यादर्शन रूप शल्यों को निकाल फेंकता है । ऋजु-भाव को प्राप्त होता है । जीव माया-रहित होता है । अतः वह स्त्री-वेद, नपुंसक-वेद का बन्ध नहीं करता है और पूर्वबद्ध की निर्जरा करता है ।

[१११९] भन्ते ! निन्दा से जीव को क्या प्राप्त होता है ? निन्दा से पश्चात्ताप प्राप्त होता है । पश्चात्ताप से होने वाली विरक्ति से करण-गुण-श्रेणि प्राप्त होती है । अनगार मोहनीय कर्म को नष्ट करता है ।

[११२०] भन्ते ! गर्हा से जीव को क्या प्राप्त होता है ? गर्हा से जीव को अपुरस्कार प्राप्त होता है । अपुरस्कृत होने से वह अप्रशस्त कार्यों से निवृत्त होता है । प्रशस्त कार्यों से युक्त होता है । ऐसा अनगार ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुणों का घात करनेवाले ज्ञानावरणादि कर्मों की पर्यायों का क्षय करता है ।

[११२१] भन्ते ! सामायिक से जीव को क्या प्राप्त होता है ? सामायिक से जीव सावध योगों से-विरक्ति को प्राप्त होता है ।

[११२२] भन्ते ! चतुर्विंशतिस्तव से जीव को क्या प्राप्त होता है ? चतुर्विंशति स्तव से जीव दर्शन-विशोधि को प्राप्त होता है ।

[११२३] भन्ते ! वन्दना से जीव को क्या प्राप्त होता है ? वन्दना से जीव नीचगोत्र कर्म का क्षय करता है । उच्च गोत्र का बन्ध करता है । वह अप्रतिहत सौभाग्य को प्राप्त कर सर्वजनप्रिय होता है । उसकी आज्ञा सर्वत्र मानी जाती है । वह जनता से दाक्षिण्य को प्राप्त होता है ।

[११२४] भन्ते ! प्रतिक्रमण से जीव को क्या प्राप्त होता है ? प्रतिक्रमण से जीव स्वीकृत व्रतों के छिद्रों को बंद करता है । आश्रवों का निरोध करता है, शुद्ध चारित्र का पालन करता है, समिति-गुप्ति रूप आठ प्रवचनमाताओं के आराधन में सतत उपयुक्त रहता है, संयम-योग में अपृथक्त्व होता है और सन्मार्ग में सम्यक् समाधिस्थ होकर विचरण करता है ।

[११२५] भन्ते ! कायोत्सर्ग से जीव को क्या प्राप्त होता है ? कायोत्सर्ग से जीव अतीत और वर्तमान के प्रायश्चित्तयोग्य अतिचारों का विशोधन करता है । अपने भार को हटा देनेवाले भार-वाहक की तरह निर्वृतहृदय हो जाता है और प्रशस्त ध्यान में लीन होकर सुखपूर्वक विचरण करता है ।

[११२६] भन्ते ! प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? प्रत्याख्यानसे जीव आश्रवद्वारों का निरोध करता है ।

[११२७] भन्ते ! स्तवस्तुतिमंगल से जीव को क्या प्राप्त होता है ? स्तव-स्तुति मंगल से जीव को ज्ञान-दर्शन चारित्र-स्वरूप बोधि का लाभ होता है । ज्ञान-दर्शन चारित्र स्वरूप बोधि से संपन्न जीव अन्तक्रिया के अथवा वैमानिक देवों में उत्पन्न होने के योग्य आराधना करता है ।



[११२८] भन्ते ! काल की प्रतिलेखना से जीव को क्या प्राप्त होता है ? काल की प्रतिलेखना से जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है ।

[११२९] भन्ते ! प्रायश्चित्त से जीव को क्या प्राप्त होता है ? प्रायश्चित्त से जीव पापकर्मों को दूर करता है और धर्म-साधना को निरतिचार बनाता है । सम्यक् प्रकार से प्रायश्चित्त करने वाला साधक मार्ग और मार्ग-फल को निर्मल करता है । आचार और आचार-फल की आराधना करता है ।

[११३०] भन्ते ! क्षामणा करने से जीव को क्या प्राप्त होता है ? क्षमापना करने से जीव प्रह्लाद भाव को प्राप्त होता है । प्रह्लाद भाव सम्पन्न साधक सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के साथ मैत्रीभाव को प्राप्त होता है । मैत्रीभाव को प्राप्त जीव भाव-विशुद्धि कर निर्भय होता है ।

[११३१] भन्ते ! स्वाध्याय से जीव को क्या प्राप्त होता है ? स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है ।

[११३२] भन्ते ! वाचना से जीव को क्या प्राप्त होता ? वाचना से जीव कर्मों की निर्जरा करता है, श्रुत ज्ञान की आशातना के दोष से दूर रहता है । तीर्थ धर्म का अवलम्बन करता है—तीर्थधर्म का अवलम्बन लेकर कर्मों की महानिर्जरा और महापर्यवसान करता है ।

[११३३] भन्ते ! प्रतिपृच्छना से जीव को क्या प्राप्त होता है ? प्रतिपृच्छना से जीव सूत्र, अर्थ और तदुभव-दोनों से सम्बन्धित काक्षामोहनीय का निराकरण करता है ।

[११३४] भन्ते ! परावर्तना से जीव को क्या प्राप्त होता है ? परावर्तना से व्यंजन स्थिर होता है । और जीव पदानुसारिता आदि व्यंजन-लब्धि को प्राप्त होता है ।

[११३५] भन्ते ! अनुप्रेक्षा से जीव को क्या प्राप्त होता है ? अनुप्रेक्षा से जीव आयुष् कर्म को छोड़कर शेष ज्ञानावरणादि सात कर्मों की प्रकृतियों के प्रगाढ बन्धन को शिथिल करता है । उनकी दीर्घकालीन स्थिति को अल्पकालीन करता है । उनके तीव्र रसानुभाव को मन्द करता है । बहुकर्म प्रदेशों को अल्प-प्रदेशों में परिवर्तित करता है । आयुष् कर्म का बन्ध कदाचित् करता है, कदाचित् नहीं भी करता है । असातवेदनीय कर्म का पुनः पुनः उपचय नहीं करता है । जो संसार अटवी अनादि एवं अनवद्य है, दीर्घ मार्ग से युक्त है, जिसके नरकादि गतिरूप चार अन्त हैं, उसे शीघ्र ही पार करता है ।

[११३६] भन्ते ! धर्मकथा से जीव को क्या प्राप्त होता है ? धर्म कथा से जीव कर्मों की निर्जरा करता है और प्रवचन की प्रभावना करता है । प्रवचन की प्रभावना करनेवाला जीव भविष्य में शुभ फल देने वाले कर्मों का बन्ध करता है ।

[११३७] भन्ते ! श्रुत की आराधना से जीव को क्या प्राप्त होता है ? श्रुत की आराधना से जीव अज्ञान का क्षय करता है और क्लेश को प्राप्त नहीं होता है ।

[११३८] भन्ते ! मन को एकाग्रता में संनिवेशन करने से जीव को क्या प्राप्त होता है ? मन को एकाग्रता में स्थापित करने से चित्त का निरोध होता है ।

[११३९] भन्ते ! संयम से जीव को क्या प्राप्त होता है ? संयम से आश्रव के निरोध को प्राप्त होता है ।

[११४०] भन्ते ! तप से जीव को क्या प्राप्त होता है ? तप से जीव पूर्व संचित कर्मों

का क्षय करके व्यवदान को प्राप्त होता है ।

[११४१] भन्ते ! व्यवदान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? व्यवदान से जीव को अक्रिया प्राप्त होती है । अक्रिय होने के बाद वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सब दुःखों का अन्त करता है ।

[११४२] भन्ते ! वैषयिक सुखों की स्पृहा के निवारण से जीव को क्या प्राप्त होता है ? सुख-शात से विषयों के प्रति अनुत्सुकता होती है । अनुत्सुकता से जीव अनुकम्पा करने वाला, अनुद्भट, शोकरहित होकर चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय करता है ।

[११४३] भन्ते ! अप्रतिबद्धता से जीव को क्या प्राप्त होता है ? अप्रतिबद्धता से जीव निस्संग होता है । निस्संग होने में जीव एकाकी होता है, एकाग्रचित्त होता है । दिन और रात सदा सर्वत्र विरक्त और अप्रतिबद्ध होकर विचरण करता है ।

[११४४] भन्ते ! विविक्त शयनासन से जीव को क्या प्राप्त होता है ? विविक्त शयनासन से जीव चारित्र की रक्षा करता है । चारित्र की रक्षा करने वाला विविक्ताहारी दृढ चारित्री, एकान्तप्रिय, मोक्ष भाव से संपन्न जीव आठ प्रकार के कर्मों की ग्रन्थि का निर्जरण करता है ।

[११४५] भन्ते ! विनिवर्तना से जीव को क्या प्राप्त होता है ? विनिवर्तना से—मन और इन्द्रियों को विषयों से अलग रखने की साधना से जीव पाप कर्म न करने के लिए उद्यत रहता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा से कर्मों को निवृत्त करता है । चार अन्तवाले संसार कान्तार को शीघ्र ही पार कर जाता है ।

[११४६] भन्ते ! सम्भोग के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? सम्भोग (एक-दूसरे के साथ सहभोजन आदि के संपर्क) के प्रत्याख्यान से परावलम्बन से निरालम्ब होता है । निरालम्ब होने से उसके सारे प्रयत्न आयतार्थ हो जाते हैं । स्वयं के उपार्जित लाभ से सन्तुष्ट होता है । दूसरों के लाभ का आस्वादन नहीं करता है । उसकी कल्पना, स्पृहा, प्रार्थना, अभिलाषा नहीं करता है । इस प्रकार दूसरी सुख-शय्या को प्राप्त होकर विहार करता है ।

[११४७] भन्ते ! उपधि के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? उपधि के प्रत्याख्यान से जीव निर्वघ्न स्वाध्याय को प्राप्त होता है । उपधिरहित जीव आकांक्षा से मुक्त होकर उपधि के अभाव में क्लेश को प्राप्त नहीं होता है ।

[११४८] भन्ते ! आहार के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? आहार के प्रत्याख्यान से जीव जीवन की आशंसा के प्रयत्नों को विच्छिन्न कर देता है । जीवन की कामना के प्रयत्नों को छोड़कर वह आहार के अभाव में भी क्लेश को प्राप्त नहीं होता है ।

[११४९] भन्ते ! कषाय के प्रत्याख्यान-से जीव को क्या प्राप्त होता है ? कषाय के प्रत्याख्यान से वीतरागभाव को प्राप्त होता है । वीतरागभाव को प्राप्त जीव सुख-दुःख में सम हो जाता है ।

[११५०] भन्ते ! योग के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? मन, वचन, काय से सम्बन्धित योगों-के प्रत्याख्यान से अयोगत्व को प्राप्त होता है । अयोगी जीव नए कर्मों का बन्ध नहीं करता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है ।

[११५१] भन्ते ! शरीर के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? शरीर के प्रत्याख्यान से जीव सिद्धों के विशिष्ट गुणों को प्राप्त होता है । सिद्धों के विशिष्ट गुणों से सम्पन्न जीव लोकाग्र में पहुँचकर परम सुख को प्राप्त होता है ।

[११५२] भन्ते ! सहाय-प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? सहायता के प्रत्याख्यान से जीव एकीभाव को प्राप्त होता है । एकीभाव प्राप्त साधक एकाग्रता की भावना करता हुआ विग्रहकारी शब्द, वाक्कलहङ्गगड़ा-टंटा, क्रोधादि कपाय तथा तू, तू, मैं, मैं आदि से मुक्त रहता है । संयम और संवर में व्यापकता प्राप्त कर समाधिसम्पन्न होता है ।

[११५३] भन्ते ! भक्त प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? भक्त-प्रत्याख्यान से जीव अनेक प्रकार के सैकड़ों भवों का, जन्म-मरणों का निरोध करता है ।

[११५४] भन्ते ! सद्भाव प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? सद्भाव प्रत्याख्यान से जीव अनिवृत्ति को प्राप्त होता है । अनिवृत्ति को प्राप्त अनगर केवली के शेष रहे हुए वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र—इन चार भवोपग्राही कर्मों का क्षय करता है । वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, सर्व दुःखों का अन्त करता है ।

[११५५] भन्ते ! प्रतिरूपता से जीव को क्या प्राप्त होता है ? प्रतिरूपता से—जिन-कल्प जैसे आचार के पालन से जीव उपकरणों की लघुता को प्राप्त होता है । लघुभूत होकर जीव अप्रमत्त, प्रकट लिंगवाला, प्रशस्त लिंगवाला, विशुद्ध सम्यकत्व से सम्पन्न, सत्त्व और समिति से परिपूर्ण, सर्व प्राण, भूत जीव और सत्त्वों के लिए विश्वसनीय, अल्प प्रतिलेखनवाला, जितेन्द्रिय, विपुलतप और समितियों का सर्वत्र प्रयोग करनेवाला होता है ।

[११५६] भन्ते ! वैयावृत्य से जीव को क्या प्राप्त होता है ? वैयावृत्य से जीव तीर्थकर नाम-गोत्र का उपार्जन करता है ?

[११५७] भन्ते ! सर्वगुणसंपन्नता से जीव को क्या प्राप्त होता है ? सर्वगुणसंपन्नता से जीव अपुनरावृत्ति को प्राप्त होता है । वह जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी नहीं होता है ।

[११५८] भन्ते ! वीतरागता से जीव को क्या प्राप्त होता है ? वीतरागता से जीव स्नेह और तृष्णा के अनुबन्धनों का विच्छेद करता है । मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध से विरक्त होता है ।

[११५९] भन्ते ! क्षान्ति से जीव को क्या प्राप्त होता है ? क्षान्ति से जीव परीषहों पर विजय प्राप्त करता है ।

[११६०] भन्ते ! मुक्ति से जीव को क्या प्राप्त होता है ? मुक्ति से जीव अकिंचनता को प्राप्त होता है । अकिंचन जीव अर्थ के लोभी जनों से अप्रार्थनीय हो जाता है ।

[११६१] भन्ते ! ऋजुता से जीव को क्या प्राप्त होता है ? ऋजुता से जीव काय, भाव, भाषा की सरलता और अविसंवाद को प्राप्त होता है । अविसंवाद-सम्पन्न जीव धर्म का आराधक होता है ।

[११६२] भन्ते ! मृदुता से जीव को क्या प्राप्त होता है ? मृदुता से जीव अनुद्धत भाव को प्राप्त होता है । अनुद्धत जीव मृदु-मार्दवभाव से सम्पन्न होता है । आठ मद-स्थानों



को विनष्ट करता है ।

[११६३] भन्ते ! भाव-सत्य से जीव को क्या प्राप्त होता है ? भाव-सत्य से जीव भाव-विशुद्धि को प्राप्त होता है । भाव-विशुद्धि में वर्तमान जीव अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म की आराधना में उद्यत होता है । अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म की आराधना में उद्यत होकर परलोक में भी धर्म का आराधक होता है ।

[११६४] भन्ते ! करण सत्य से जीव को क्या प्राप्त होता है ? करण सत्य से जीव करणशक्ति को प्राप्त होता है । करणसत्य में वर्तमान जीव 'यथावादी तथाकारी' होता है ।

[११६५] भन्ते ! योग-सत्य से जीव को क्या प्राप्त होता है ? योग सत्य से जीव योग को विशुद्ध करता है ।

[११६६] भन्ते ! मनोगुप्ति से जीव को क्या प्राप्त होता है ? मनोगुप्ति से जीव एकाग्रता को प्राप्त होता है । एकाग्र चित्त वाला जीव अशुभ विकल्पों से मन की रक्षा करता है, और संयम का आराधक होता है ।

[११६७] भन्ते ! वचनगुप्ति से जीव को क्या प्राप्त होता है ? वचनगुप्ति से जीव निर्विकार भाव को प्राप्त होता है । निर्विकार जीव सर्वथा वाग्गुप्त तथा अध्यात्मयोग के साधनभूतध्यान से युक्त होता है ।

[११६८] भन्ते ! कायगुप्ति से जीव को क्या प्राप्त होता है ? कायगुप्ति से जीव संवर को प्राप्त होता है । संवर से काय गुप्त होकर फिर से होनेवाले पापाश्रय का निरोध करता है ।

[११६९] भन्ते ! मन की समाधारणा से जीव को क्या प्राप्त होता है ? मन की समाधारणा से जीव एकाग्रता को प्राप्त होता है ! एकाग्रता को प्राप्त होकर ज्ञानपर्यवों को-ज्ञान के विविध तत्त्वबोधरूप प्रकारों को प्राप्त होता है । ज्ञानपर्यवों को प्राप्त होकर सम्यग्-दर्शन को विशुद्ध करता है और मिथ्या दर्शन की निर्जरा करता है ।

[११७०] भन्ते ! वाक् समाधारणा से जीव को क्या प्राप्त होता है ? वाक् समाधारणा से जीव वाणी के विषय भूत दर्शन के पर्यवों को विशुद्ध करता है । वाणी के विषयभूत दर्शन के पर्यवों को विशुद्ध करके सुलभता से बोधि को प्राप्त करता है । बोधि की दुर्लभता को क्षीण करता है ।

[११७१] भन्ते ! काय समाधारणा से जीव को क्या प्राप्त होता है ? काय समाधारणा से जीव चारित्र के पर्यवों को विशुद्ध करता है । चारित्र के पर्यवों को विशुद्ध करके यथाख्यात चारित्र को विशुद्ध करता है । यथाख्यात चारित्र को विशुद्ध करके केवलिसत्क वेदनीय आदि चार कर्मों का क्षय करता है । उसके बाद सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है । परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, सब दुःखों का अन्त करता है ।

[११७२-११७३] भन्ते ! ज्ञान-सम्पन्नता से जीव को क्या प्राप्त होता है ? ज्ञानसम्पन्नता से जीव सब भावों को जानता है । ज्ञान-सम्पन्न जीव चार गतिरूप अन्तों वाले संसार वन में नष्ट नहीं होता है । जिस प्रकार ससूत्र सुई कहीं गिर जाने पर भी विनष्ट नहीं होती, उसी प्रकार ससूत्र जीव भी संसार में विनष्ट नहीं होता । ज्ञान, विनय, तप और चारित्र के योगों को प्राप्त होता है । तथा स्वसमय और परमसमय में, प्रामाणिक माना जाता है ।

[११७४] भन्ते ! दर्शन-संपन्नता से जीव को क्या प्राप्त होता है ? दर्शन सम्पन्नता

से संसार के हेतु मिथ्यात्व का छेदन करता है, उसके बाद सम्यक्त्व का प्रकाश बुझता नहीं है । श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन से आत्मा को संयोजित कर उन्हें सम्यक् प्रकार से आत्मसात् करता हुआ विचरण करता है ।

[११७५] भन्ते ! चास्त्रि-सम्पन्नता से जीव को क्या प्राप्त होता है ? चास्त्रि-सम्पन्नता से जीव शैलेशीभाव को प्राप्त होता है । शैलेशी भाव को प्राप्त अनगार चार केवलि-सत्क कर्मों का क्षय करता है । तत्पश्चात् वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सब दुःखों का अन्त करता है ।

[११७६] भन्ते ! श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है ? श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है । फिर शब्दनिमित्तक कर्म का बन्ध नहीं करता है, पूर्व-बद्ध कर्मों की निर्जरा करता है ।

[११७७] भन्ते ! चक्षुष्-इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है ? चक्षुष्-इन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूपों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है । फिर रूपनिमित्तक कर्म का बंध नहीं करता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है ।

[११७८] भन्ते ! घ्राण-इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है ? घ्राण-इन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्धों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है । फिर गन्धनिमित्तक कर्म का बंध नहीं करता है । पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है ।

[११७९] भन्ते ! जिह्वा-इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है ? जिह्वा-इन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है । फिर रसनिमित्तक कर्म का बन्ध नहीं करता है । पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है ।

[११८०] भन्ते ! स्पर्शन-इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है ? स्पर्शन-इन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों में होने वाले राग-द्वेष का निग्रह करता है । फिर स्पर्श-निमित्तक कर्म का बन्ध नहीं करता है, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है ।

[११८१] भन्ते ! क्रोध-विजय से जीव को क्या प्राप्त होता है ? क्रोध-विजय से जीव क्षान्ति को प्राप्त होता है । क्रोध-वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं करता है । पूर्व-बद्ध कर्मों की निर्जरा करता है ।

[११८२] भन्ते ! मान-विजय से जीव को क्या प्राप्त होता है ? मान-विजय से जीव मृदुता को प्राप्त होता है । मान-वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं करता है । पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है ।

[११८३] भन्ते ! माया-विजय से जीव को क्या प्राप्त होता है ? मायाविजय से ऋजुता को प्राप्त होता है । माया-वेदनीय कर्म का बंध नहीं करता है । पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है ।

[११८४] भन्ते ! लोभ-विजय से जीव को क्या प्राप्त होता है ? लोभ-विजय से जीव सन्तोष-भाव को प्राप्त होता है । लोभ-वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं करता है । पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है ।

[११८५] भन्ते ! राग, द्वेष और मिथ्यादर्शन के विजय से जीव को क्या प्राप्त होता

है ? राग, द्वेष और मिथ्या-दर्शन के विजय से जीव ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना के लिए उद्यत होता है । आठ प्रकार की कर्म-ग्रन्थि को खोलने के लिए सर्वप्रथम मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों का क्रमशः क्षय करता है । अनन्तर ज्ञानावरणीय कर्म की पाँच, दर्शना-वरणीय कर्म की नौ और अन्तराय कर्म की पाँच—इन तीनों कर्मों की प्रकृतियों का एक साथ क्षय करता है । तदनन्तर वह अनुत्तर, अनन्त, सर्ववस्तुविषयक, प्रतिपूर्ण, निरावरण, अज्ञानतिमिर से रहित, विशुद्ध और लोकालोक के प्रकाशक केवल-ज्ञान और केवल-दर्शन को प्राप्त होता है । जब तक वह सयोगी रहता है, तब तक ऐर्या-पथिक कर्म का बन्ध होता है । वह बन्ध भी सुख-स्पर्शी है, उसकी स्थिति दो समय की है । प्रथम समय में बन्ध होता है, द्वितीय समय में उदय होता है, तृतीय समय में निर्जरा होती है । वह कर्म क्रमशः बद्ध होता है, स्पृष्ट होता है, उदय में आता है, भोगा जाता है, नष्ट होता है, फलतः अन्त में वह कर्म अकर्म हो जाता है ।

[१९८६] केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् शेष आयु को भोगता हुआ, जब अन्तर्मुहूर्तपरिणाम आयु शेष रहती है, तब वह योग निरोध में प्रवृत्त होता है । तब 'सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति' नामक शुक्ल-ध्यान को ध्याता हुआ प्रथम मनोयोग का निरोध करता है, अनन्तर वचन योग का निरोध करता है, उसके पश्चात् आनापान का निरोध करता है । श्वासोच्छ्वास का निरोध रके पाँच ह्रस्वअक्षरों के उच्चारण काल तक 'समुच्छिन्न-क्रिया-अनिवृत्ति' नामक शुक्लध्यान में लीन हुआ अनगार वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र—इन चार कर्मों का एक साथ क्षय करता है ।

[१९८७] उसके बाद वह औदारिक और कार्मण शरीर को सदा के लिए पूर्णरूप से छोड़ता है । फिर ऋजु श्रेणि को प्राप्त होता है और एक समय में अस्पृशद्गतिरूप ऊर्ध्वगति से विना मोड़ लिए सीधे लोकाग्र में जाकर साकारोपयुक्त-ज्ञानोपयोगी सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है । सभी दुःखों का अन्त करता है ।

[१९८८] श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा सम्यक्त्व-पराक्रम अध्ययन का यह पूर्वोक्त अर्थ आख्यात है, प्रज्ञापित है, प्ररूपित है, दर्शित है और उपदर्शित है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-३०-तपोमार्गगति

[१९८९] भिक्षु राग और द्वेष से अर्जित पाप-कर्म का तप के द्वारा जिस पद्धति से क्षय करता है, उस पद्धति को तुम एकाग्र मन से सुनो ।

[१९९०-१९९१] प्राण-वध, मृषावाद, अदत्त, मैथुन, परिग्रह और रात्रि भोजन की विरति से एवं पाँच समिति और तीन गुप्ति से-सहित, कषाय से रहित, जितेन्द्रिय, निरभिमानी, निःशल्य जीव अनाश्रव होता है ।

[१९९२] उक्त धर्म-साधना से विपरीत आचरण करने पर राग-द्वेष से अर्जित कर्मों को भिक्षु किस प्रकार क्षीण करता है, उसे एकाग्र मन से सुनो ।

[१९९३-१९९४] किसी बड़े तालाप का जल, जल आने के मार्ग को रोकने से, पहले के जल को उलीचने से और सूर्य के ताप से क्रमशः जैसे सूख जाता है—उसी प्रकार संयमी के करोड़ों भावों के संचित कर्म, पाप कर्म के आने के मार्ग को रोकने पर तप से नष्ट



होते हैं ।

[११९५-११९६] वह तप दो प्रकार का है—बाह्य और आभ्यन्तर । बाह्य तप छह प्रकार का है । आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का कहा है । अनशन, ऊनोदरिका, भिक्षाचर्या, रस-परित्याग, काय-क्लेश और संलीनता—यह बाह्य तप है ।

[११९७-११९९] अनशन तप के दो प्रकार हैं—इत्वरिक और मरणकाल । इत्वरिक सावकांक्ष होता है । मरणकाल निस्वकांक्ष होता है । संक्षेप से इत्वरिक-तप छह प्रकार का है—श्रेणि, तप, प्रतर तप, धन-तप, वर्ग-तप—वर्ग-वर्ग तप और छठा प्रकीर्ण तप । इस प्रकार मनोवांछित नाना प्रकार के फल को देने वाला 'इत्वरिक' अनशन तप जानना ।

[१२००-१२०१] कायचेष्टा के आधार पर मरणकालसम्बन्धी अनशन के दो भेद हैं—सविचार और अविचार अथवा मरणकाल अनशन के सपरिकर्म और अपरिकर्म ये दो भेद हैं । अविचार अनशन के निर्हाही और अनिर्हाही—ये दो भेद भी होते हैं । दोनों में आहार का त्याग होता है ।

[१२०२] संक्षेप में अवमौदर्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और पर्यायों की अपेक्षा से पाँच प्रकार का है ।

[१२०३] जो जितना भोजन कर सकता है, उसमें से कम-से-कम एक सिक्थ तथा एक ग्रास आदि के रूप में कम भोजन करना, द्रव्य से 'ऊणोदरी' तप है ।

[१२०४-१२०७] ग्राम, नगर, राजधानी, निगम, आकर, पल्ली, खेड़, कर्बट, द्रोणमुख, पत्तन, मण्डप, संबाध—आश्रम-पद, विहार, सन्निवेश, समाज, घोष, स्थली, सेना का शिबिर, सार्थ, संवर्त, कोट—पाडा, गली और घर—इन क्षेत्रों में तथा इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों में निर्धारित क्षेत्र-प्रमाण के अनुसार भिक्षा के लिए जाना, क्षेत्र से 'ऊणोदरी' तप है । अथवा पेटा, अर्ध-पेटा, गोमूत्रिका, पतंग-वीथिका, शम्बूकावर्ता और आयतगत्वा-प्रत्यागता—यह छह प्रकार का क्षेत्र से 'ऊणोदरी' तप है ।

[१२०८-१२०९] दिवस के चार प्रहर होते हैं । उन चार प्रहरों में भिक्षा का जो नियत समय है, तदनुसार भिक्षा के लिए जाना, यह काल से 'ऊणोदरी' तप है । अथवा कुछ भागन्यून तृतीय प्रहर में भिक्षा की एषणा करना, काल की अपेक्षा से 'ऊणोदरी' तप है ।

[१२१०-१२११] स्त्री अथवा पुरुष, अलंकृत अथवा अनलंकृत, विशिष्ट आयु और अमुक वर्ण के वस्त्र—अथवा अमुक विशिष्ट वर्ण एवं भाव से युक्त दाता से ही भिक्षा ग्रहण करना, अन्यथा नहीं—इस प्रकार की चर्या वाले मुनि को भाव से 'ऊणोदरी' तप है ।

[१२१२] द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में जो-जो पर्याय कथन किये हैं, उन सबसे ऊणोदरी तप करने वाला 'पर्यवचरक' होता है ।

[१२१३] आठ प्रकार के गोचराग्र, सप्तविध एषणाएं और अन्य अनेक प्रकार के अभिग्रह—'भिक्षाचर्या' तप है ।

[१२१४] दूध, दही, घी आदि प्रणीत (पौष्टिक) पान, भोजन तथा रसों का त्याग, 'रसपरित्याग' तप है ।

[१२१५] आत्मा को सुखावह अर्थात् सुखकर वीरासनादि उग्र आसनों का अभ्यास, 'कायक्लेश' तप है ।

[१२१६] एकान्त, अनापात तथा स्त्री-पशु आदि से रहित शयन एवं आसन ग्रहण करना, 'विविक्तशयनासन' तप है ।

[१२१७-१२१८] संक्षेप में यह बाह्य तप का व्याख्यान है । अब क्रमशः आभ्यन्तर तप का निरूपण करूँगा । प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग—यह आभ्यन्तर तप है ।

[१२१९] आलोचनाहर्ह आदि दस प्रकार का प्रायश्चित्त, जिसका भिक्षु सम्यक् प्रकार से पालन करता है, 'प्रायश्चित्त' तप है ।

[१२२०] खड़े होना, हाथ जोड़ना, आसन देना, गुरुजनों की भक्ति तथा भाव-पूर्वक शुश्रूषा करना, 'विनय' तप है ।

[१२२१] आचार्य आदि से सम्बन्धित दस प्रकार के वैयावृत्य का यथाशक्ति आसेवन करना, 'वैयावृत्य' तप है ।

[१२२२] वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा—यह पंचविध 'स्वाध्याय' तप है ।

[१२२३] आर्त और रौद्र ध्यान को छोड़कर सुसमाहित मुनि जो धर्म और शुक्ल ध्यान ध्याता है, ज्ञानीजन उसे ही 'ध्यान' तप कहते हैं ।

[१२२४] सीने, बैठने तथा खड़े होने में जो भिक्षु शरीर से व्यर्थ की चेष्टा नहीं करता है, यह शरीर का व्युत्सर्ग—'व्युत्सर्ग' नामक छठा तप है ।

[१२२५] जो पण्डित मुनि दोनों प्रकार के तप का सम्यक् आचरण करता है, वह शीघ्र ही सर्व संसार से विमुक्त हो जाता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

**अध्ययन-३०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण**

### अध्ययन-३१-चरणविधि

[१२२६] जीव को सुख प्रदान करने वाली उस चरण-विधि का कथन करूँगा, जिसका आचरण करके बहुत से जीव संसार-सागर को तैर गए हैं ।

[१२२७] साधक को एक ओर से निवृत्ति और एक ओर प्रवृत्ति करनी चाहिए । असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति ।

[१२२८] पाप कर्म के प्रवर्तक राग और द्वेष हैं । इन दो पाप कर्मों का जो भिक्षु सदा निरोध करता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२२९] तीन दण्ड, तीन गौरव और तीन शल्यों का जो भिक्षु सदैव त्याग करता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२३०] देव, तिर्यच और मनुष्य-सम्बन्धी उपसर्गों को जो भिक्षु सदा सहन करता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२३१] जो भिक्षु विकथाओं का, कषायों का, संज्ञाओं का और आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान का सदा वर्जन करता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२३२] जो भिक्षु व्रतों और समितियों के पालन में तथा इन्द्रिय-विषयों और क्रियाओं के परिहार में सदा यत्नशील रहता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२३३] जो भिक्षु छह लेश्याओं, पृथ्वी कायं आदि छह कायों और आहार के छह कारणों में सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२३४] पिण्डावग्रहों में, आहार ग्रहण की सात प्रतिमाओं में और सात भय-स्थानों में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२३५] मद-स्थानों में, ब्रह्मचर्य की गुप्तियों में और दस प्रकार के भिक्षु-धर्मों में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२३६] उपासकों की प्रतिमाओं में, भिक्षुओं की प्रतिमाओं में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२३७] क्रियाओं में, जीव-समुदायों में और परमाधार्मिक देवों में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२३८] गाथा-षोडशक में और असंयम में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२३९] ब्रह्मचर्य में, ज्ञातअध्ययनों में, असमाधि-स्थानों में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२४०] इक्कीस शबल दोषों में और बाईस परीषहों में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२४१] सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययनों में, रूपाधिक अर्थात् चौबीस देवों में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२४२] पच्चीस भावनाओं में, दशा आदि (दशाश्रुत स्कन्ध, व्यवहार और बृहत्कल्प) के उद्देश्यों में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२४३] अनगार-गुणों में और तथैव प्रकल्प (आचारांग) के २८ अध्ययनों में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२४४] पाप-श्रुत-प्रसंगों में और मोह-स्थानों में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२४५] सिद्धों के ३९ अतिशायी गुणों में, योग-संग्रहों में, तैंतीस आशातनाओं में जो भिक्षु सदा उपयोग रखता है, वह संसार में नहीं रुकता है ।

[१२४६] इस प्रकार जो पण्डित भिक्षु इन स्थानों में सतत उपयोग रखता है, वह शीघ्र ही सर्व संसार से मुक्त हो जाता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-३२-प्रमादस्थान

[१२४७] अनन्त अनादि काल से सभी दुःखों और उनके मूल कारणों से मुक्ति का उपाय मैं कह रहा हूँ । उसे पूरे मन से सुनो । वह एकान्त हितरूप है, कल्याण के लिए है ।

[१२४८] सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाशन से, अज्ञान और मोह की परिहार से, राग-द्वेष के पूर्ण क्षय से—जीव एकान्त सुख-रूप मोक्ष को प्राप्त करता है ।

[१२४९] गुरुजनों की और वृद्धों की सेवा करना, अज्ञानी लोगों के सम्पर्क से दूर रहना, स्वाध्याय करना, एकान्त में निवास करना, सूत्र और अर्थ का चिन्तन करना, धैर्य



खना, यह दुःखों से मुक्ति का उपाय है ।

[१२५०] अगर श्रमण तपस्वी समाधि की आकांक्षा रखता है तो वह परिमित और एषणीय आहार की इच्छा करे, तत्त्वार्थों को जानने में निपुण बुद्धिवाला साथी खोजे तथा स्त्री आदि से विवेक के योग्य-एकान्त घर में निवास करे ।

[१२५१] यदि अपने से अधिक गुणों वाला अथवा अपने समान गुणों वाला निपुण साथी न मिले, तो पापों का वर्जन करता हुआ तथा काम-भोगों में अनासक्त रहता हुआ अकेला ही विचरण करे ।

[१२५२] जिस प्रकार अण्डे से बलाका पैदा होती है और बलाका से अण्डा उत्पन्न होता है, उसी प्रकार मोह का जन्म-स्थान तृष्णा है, और तृष्णा का जन्म-स्थान मोह है ।

[१२५३] कर्म के बीज राग और द्वेष हैं । कर्म मोह से उत्पन्न होता है । वह कर्म जन्म और मरण का मूल है और जन्म एवं मरण ही दुःख है ।

[१२५४] उसने दुःख को समाप्त कर दिया है, जिसे मोह नहीं है । उसने मोह को मिटा दिया है, जिसे तृष्णा नहीं है । उसने तृष्णा का नाश कर दिया है, जिसे लोभ नहीं है । उसने लोभ को समाप्त कर दिया है, जिसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है ।

[१२५५] जो राग, द्वेष और मोह का मूल से उन्मूलन चाहता है, उसे जिन-जिन उपायों को उपयोग में लाना चाहिए, उन्हें मैं क्रमशः कहूँगा ।

[१२५६] रसों का उपयोग प्रकाम नहीं करना । रस प्रायः मनुष्य के लिए दतिकर होते हैं । विषयासक्त मनुष्य को काम वैसे ही उत्पीड़ित करते हैं, जैसे स्वादुफल वाले वृक्ष को पक्षी ।

[१२५७] जैसे प्रचण्ड पवन के साथ प्रचुर ईन्धन वाले वन में लगा दावानल शान्त नहीं होता है, उसी प्रकार प्रकामभोजी की इन्द्रियाग्नि शान्त नहीं होती । ब्रह्मचारी के लिए प्रकाम भोजन कभी भी हितकर नहीं है ।

[१२५८] जो विविक्त शय्यासन से यंत्रित हैं, अल्पभोजी हैं, जितेन्द्रिय हैं, उनके चित्त को रागद्वेष पराजित नहीं कर सकते हैं, जैसे औषधि से पराजित व्याधि पुनः शरीर को आक्रान्त नहीं करती है ।

[१२५९] जिस प्रकार बिडालों के निवास-स्थान के पास चूहों का रहना प्रशस्त नहीं है, उसी प्रकार स्त्रियों के निवास-स्थान के पास ब्रह्मचारी का रहना भी प्रशस्त नहीं है ।

[१२६०-१२६१] श्रमण तपस्वी स्त्रियों के रूप, लावण्य, विलास, हास्य, आलाप, इंगित और कटाक्ष को मन में निविष्ट कर देखने का प्रयत्न न करे । जो सदा ब्रह्मचर्य में लीन हैं, उनके लिए स्त्रियों का अवलोकन, उनकी इच्छा, चिन्तन और वर्णन न करना हितकर है, तथा सम्यक् ध्यान साधना के लिए उपयुक्त है ।

[१२६२] यद्यपि तीन गुणियों से गुप्त मुनि को अलंकृत देवियाँ भी विचलित नहीं कर सकती, तथापि एकान्त हित की दृष्टि से मुनि के लिए विविक्तवास ही प्रशस्त है ।

[१२६३] मोक्षाभिकांक्षी, संसारभीरु और धर्म में स्थित मनुष्य के लिए लोक में ऐसा कुछ भी दुस्तर नहीं है, जैसे कि अज्ञानियों के मन को हरण करने वाली स्त्रियाँ दुस्तर हैं ।

[१२६४] स्त्री-विषयक इन उपर्युक्त संसर्गों का सम्यक् अतिक्रमण करने पर शेष

सम्बन्धों का अतिक्रमण वैसे ही सुखोत्तर हो जाता है, जैसे कि महासागर को तैरने के बाद गंगा जैसी नदियों को तैर जाना आसान है ।

[१२६५-१२६६] समस्त लोक के, यहाँ तक कि देवताओं के भी, जो कुछ भी शारीरिक और मानसिक दुःख हैं, वे सब कामासक्ति से पैदा होते हैं । वीतराग आत्मा ही उन दुःखों का अन्त कर पाते हैं । जैसे किंपाक फल रस और रूप-रंग की दृष्टि से देखने और खाने में मनोरम होते हैं, किन्तु परिणाम में जीवन का अन्त कर देते हैं, काम-गुण भी अन्तिम परिणाम में ऐसे ही होते हैं ।

[१२६७] समाधि की भावनावाला तपस्वी श्रमण इन्द्रियों के शब्द-रूपादि मनोज्ञ विषयों में रागभाव न करे और इन्द्रियों के अमनोज्ञ विषयों में मन से भी द्वेषभाव न करे ।

[१२६८-१२६९] चक्षु का ग्रहण रूप है । जो रूप राग का कारण होता है, उसे मनोज्ञ कहते हैं र जो रूप द्वेष का कारण होता है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं । इन दोनों में जो सम रहता है, वह वीतराग है । चक्षु रूप का ग्रहण है । रूप चक्षु का ग्राह्य विषय है । जो राग का कारण है, उसे मनोज्ञ कहते हैं और जो द्वेष का कारण है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं ।

[१२७०-१२७१] जो मनोज्ञरूपों में तीव्र रूप से गृद्धि । आसक्ति रखता है, वह रागातुर अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है । जैसे प्रकाश-लोलुप पतंगा प्रकाश के रूप में आसक्त होकर मृत्यु को प्राप्त होता है । जो अमनोज्ञ रूप के प्रति तीव्र रूप से द्वेष करता है, वह उसी क्षण अपने दुर्दान्त (दुर्म) द्वेष से दुःख को प्राप्त होता है । इसमें रूप का कोई अपराध नहीं है ।

[१२७२] जो सुन्दर रूप में एकान्त आसक्त होता है और अतादृश में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःख की पीड़ा को प्राप्त होता है । विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता है ।

[१२७३] मनोज्ञ रूप की आशा का अनुगमन करनेवाला व्यक्ति अनेकरूप त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को ही अधिक महत्त्व देने वाला क्लिष्ट अज्ञानी विविध प्रकार से उन्हीं परिताप देता है, पीड़ा पहुँचाता है ।

[१२७४] रूप में अनुपात और परिग्रह के कारण रूप के उत्पादन में, संरक्षण में और सन्नियोग में तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कहाँ ? उसे उपभोग काल में भी तृप्ति नहीं मिलती ।

[१२७५] रूप में अतृप्त तथा परिग्रह में आसक्त और उपसक्त व्यक्ति सन्तोष को प्राप्त नहीं होता । वह असन्तोष के दोष से दुःखी एवं लोभ से आविल व्यक्ति दूसरों की वस्तुएँ चुराता है ।

[१२७६] रूप और परिग्रह में अतृप्त तथा तृष्णा से अभिभूत होकर वह दूसरों की वस्तुओं का अपहरण करता है । लोभ के दोष से उसका कपट और झूठ बढ़ता है । परन्तु कपट और झूठ का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता है ।

[१२७७] झूठ बोलने के पहले, उसके पश्चात् और बोलने के समय में भी वह दुःखी होता है । उसका अन्त भी दुःखरूप होता है । इस प्रकार रूप से अतृप्त होकर वह चोरी करने वाला दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

[१२७८] इस प्रकार रूप में अनुरक्त मनुष्य को कहाँ, कब और कितना सुख होगा ?

जिसे पाने के लिए मनुष्य दुःख उठाता है, उसके उपभोग में भी क्लेश और दुःख ही होता है ।

[१२७९] इस प्रकार रूप के प्रति द्वेष करने वाला भी उत्तरोत्तर अनेक दुःखों की परम्परा को प्राप्त होता है । द्वेषयुक्त चित्त से जिन कर्मों का उपार्जन करता है, वे विपाक के समय में दुःख के कारण बनते हैं ।

[१२८०] रूप में विरक्त मनुष्य शोकरहित होता है । वह संसार में रहता हुआ भी लिप्त नहीं होता है, जैसे जलाशय में कमल का पत्ता जल से ।

[१२८१-१२८२] श्रोत्र का ग्रहण शब्द है । जो शब्द राग में कारण है, उसे मनोज्ञ कहते हैं । जो शब्द द्वेष का कारण है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं । श्रोत्र शब्द का ग्राहक है, शब्द श्रोत्र का ग्राह्य है । जो राग का कारण है उसे मनोज्ञ कहते हैं और जो द्वेष का कारण है उसे अमनोज्ञ कहते हैं ।

[१२८३-१२८४] जो मनोज्ञ शब्दों में तीव्र रूप से आसक्त है, वह रागातुर अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है, जैसे शब्द में अतृप्त मुग्ध हरिण मृत्यु को प्राप्त होता है, जो अमनोज्ञ शब्द के प्रति तीव्र द्वेष करता है, वह उसी क्षण अपने दुर्दान्त द्वेष से दुःखी होता है । इसमें शब्द का कोई अपराध नहीं है ।

[१२८५] जो प्रिय शब्द में एकान्त आसक्त होता है और अप्रिय शब्द में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःख की पीड़ा को प्राप्त होता है । विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता है ।

[१२८६] शब्द की आशा का अनुगामी अनेकरूप चराचर जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को ही मुख्य मानने वाला क्लिष्ट अज्ञानी विविध प्रकार से उन्हें परिताप देता है, पीड़ा पहुँचाता है ।

[१२८७] शब्द में अनुराग और ममत्व के कारण शब्द के उत्पादन में, संरक्षण में, सन्नियोग में तथा व्यय और वियोग में, उसको सुख कहाँ है ? उसे उपभोग काल में भी तृप्ति नहीं मिलती है ।

[१२८८] शब्द में अतृप्त तथा परिग्रह में आसक्त और उपसक्त व्यक्ति संतोष को प्राप्त नहीं होता । वह असंतोष के दोष से दुःखी व लोभग्रस्त व्यक्ति दूसरों की वस्तुएँ चुराता है ।

[१२८९] शब्द और परिग्रह में अतृप्त, तृष्णा से पराजित व्यक्ति दूसरों की वस्तुओं का अपहरण करता है । लोभ के दोष से उसका कपट और झूठ बढ़ता है । कपट और झूठ से भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता है ।

[१२९०] झूठ बोलने के पहले, उसके बाद और बोलने के समय भी वह दुःखी होता है । उसका अन्त भी दुःखमय है । इस प्रकार शब्द में अतृप्त व्यक्ति चोरी करता हुआ दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

[१२९१] इस प्रकार शब्द में अनुरक्त व्यक्ति को कहाँ, कब और कितना सुख होगा ? जिस उपभोग के लिए व्यक्ति दुःख उठाता है, उस उपभोग में भी क्लेश और दुःख ही होता है ।

[१२९२] इसी प्रकार जो अमनोज्ञ शब्द के प्रति द्वेष करता है, वह उत्तरोत्तर अनेक



दुःखों की परम्परा को प्राप्त होता है । द्वेषयुक्त चित्त से जिन कर्मों का उपार्जन करता है, वे ही विपाक के समय में दुःख के कारण बनते हैं ।

[१२९३] शब्द में विरक्त मनुष्य शोकरहित होता है । वह संसार में रहता हुआ भी लिप्त नहीं होता है, जैसे—जलाशय में कमल का पत्ता जल से ।

[१२९४-१२९५] घ्राण का विषय गन्ध है । जो गन्ध राग में कारण है उसे मनोज्ञ कहते हैं और जो गन्ध द्वेष में कारण होती है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं । घ्राण गन्ध का ग्राहक है । गन्ध घ्राण का ग्राह्य है । जो राग का कारण है, उसे मनोज्ञ कहते हैं । और जो द्वेष का कारण है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं ।

[१२९६-१२९७] जो मनोज्ञ गन्ध में तीव्र रूप से आसक्त है, वह अकाल में विनाश को प्राप्त होता है । जैसे औषधि की गन्ध में आसक्त रागानुरक्त सर्प बिल से निकलकर विनाश को प्राप्त होता है । जो अमनोज्ञ गन्ध के प्रति तीव्र रूप से द्वेष करता है, वह जीव उसी क्षण अपने दुर्दान्त द्वेष से दुःखी होता है । इसमें गन्ध का कोई अपराध नहीं है ।

[१२९८] जो सुरभि गन्ध में एकान्त आसक्त होता है, और दुर्गन्ध में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःख की पीड़ा को प्राप्त होता है । विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता है ।

[१२९९] गन्ध की आशा का अनुगामी अनेकरूप त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है, अपने प्रयोजन को ही मुख्य माननेवाला अज्ञानी विविध प्रकार से उन्हें परिताप देता है, पीड़ा पहुँचाता है ।

[१३००] गन्ध में अनुराग और परिग्रह में ममत्त्व के कारण गन्ध के उत्पादन में, संरक्षण में और सन्नियोग में तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कहाँ ? उसे उपभोग काल में भी तृप्ति नहीं मिलती है ।

[१३०१-१३०२] गन्ध में अतृप्त तथा परिग्रह में आसक्त तथा उपसक्त व्यक्ति संतोष को प्राप्त नहीं होता है । वह असंतोष के दोष से दुःखी, लोभग्रस्त व्यक्ति दूसरों की वस्तुएँ चुराता है । दूसरों की वस्तुओं का अपहरण करता है । लोभ के दोष से उसका कपट और झूठ बढ़ता है । कपट और झूठ से भी वह दुःख से मुक्त नहीं हो पाता है ।

[१३०३] झूठ बोलने के पहले, उसके बाद और बोलने के समय वह दुःखी होता है । उसका अन्त भी दुःखमय है । इस प्रकार गन्ध से अतृप्त होकर वह चोरी करनेवाला दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

[१३०४] इस प्रकार गन्ध में अनुरक्त व्यक्ति को कहाँ, कब, कितना सुख होगा ? जिसके उपभोग के लिए दुःख उठाता है, उसके उपभोग में भी दुःख और क्लेश ही होता है ।

[१३०५] इसी प्रकार जो गन्ध के प्रति द्वेष करता है, वह उत्तरोत्तर दुःख की परम्परा को प्राप्त होता है । द्वेषयुक्त चित्त से जिन कर्मों का उपार्जन करता है, वे ही विपाक के समय में दुःख के कारण बनते हैं ।

[१३०६] गन्ध में विरक्त मनुष्य शोकरहित होता है । वह संसार में रहता हुआ भी लिप्त नहीं होता है, जैसे—जलाशय में कमल का पत्ता जल से ।

[१३०७-१३०८] जिह्वा का विषय रस है । जो रस राग में कारण है, उसे मनोज्ञ कहते हैं । और जो रस द्वेष का कारण होता है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं । जिह्वा रस की ग्राहक

है । रस जिह्वा का ग्राह्य है । जो राग का कारण है, उसे मनोज्ञ कहते हैं और जो द्वेष का कारण है उसे अमनोज्ञ कहते हैं ।

[१३०९-१३१०] जो मनोज्ञ रसों में तीव्र रूप से आसक्त है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है । जैसे मांस खाने में आसक्त रागातुर मत्स्य काँट से बाँधा जाता है । जो अमनोज्ञ रस के प्रति तीव्र रूप से द्वेष करता है, वह उसी क्षण अपने दुर्दान्त द्वेष से दुःखी होता है । इस में रस का कोई अपराध नहीं है ।

[१३११] जो मनोज्ञ रस में एकान्त आसक्त होता है और अमनोज्ञ रस में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःख की पीड़ा को प्राप्त होता है । विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता है ।

[१३१२] रस की आशा का अनुगामी अनेक रूप त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को ही मुख्य माननेवाला क्लिष्ट अज्ञानी विविध प्रकार से उन्हें परिताप देता है, पीड़ा पहुँचाता है ।

[१३१३-१३१५] रस में अनुरक्ति और ममत्त्व के कारण रस के उत्पादन में, संरक्षण में और सन्नियोग में तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कहाँ ? उसे उपभोग-काल में भी तृप्ति नहीं मिलती है । वह संतोष को प्राप्त नहीं होता । असन्तोष के दोष से दुःखी तथा लोभ से व्याकुल दूसरों की वस्तुएँ चुराता है । रस और परिग्रह में अतृप्त तथा तृष्णा से पराजित व्यक्ति दूसरों की वस्तुओं का अपहरण करता है । लोभ के दोष से उसका कपट और झूठ बढ़ता है । कपट और झूठ से भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता है ।

[१३१६] झूठ बोलने के पहले, उसके बाद और बोलने के समय भी वह दुःखी होता है । उसका अन्त भी दुःखरूप है । इस प्रकार रस में अतृप्त होकर चोरी करने वाला वह दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

[१३१७] इस प्रकार रस में अनुरक्त पुरुष को कहाँ, कब, कितना सुख होगा ? जिसे पाने के लिए व्यक्ति दुःख उठाता है, उस के उपभोग में भी क्लेश और दुःख ही होता है ।

[१३१८] इसी प्रकार जो रस के प्रति द्वेष करता है, वह उत्तरोत्तर दुःख की परम्परा को प्राप्त होता है । द्वेषयुक्त चित्त से जिन कर्मों का उपार्जन करता है, वे ही विपाक के समय दुःख के कारण बनते हैं ।

[१३१९] रस में विरक्त मनुष्य शोकरहित होता है । वह संसार में रहता हुआ भी लिप्त नहीं होता है, जैसे—जलाशय में कमल का पत्ता जल से ।

[१३२०-१३२१] काय का विषय स्पर्श है । जो स्पर्श राग में कारण है उसे मनोज्ञ कहते हैं । जो स्पर्श द्वेष का कारण होता है उसे अमनोज्ञ कहते हैं । काय स्पर्श का ग्राहक है, स्पर्श काय का ग्राह्य है । जो राग का कारण है उसे मनोज्ञ कहते हैं और जो द्वेष का कारण है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं ।

[१३२२-१३२३] जो मनोज्ञ स्पर्श में तीव्र रूप से आसक्त है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है । जैसे—वन में जलाशय के शीतल स्पर्श में आसक्त रागातुर भेंसा मगर के द्वारा पकड़ा जाता है । जो अमनोज्ञ स्पर्श के प्रति तीव्र रूप से द्वेष करता है, वह जीव उसी क्षण अपने दुर्दान्त द्वेष से दुःखी होता है । इसमें स्पर्श का कोई अपराध नहीं है ।

[१३२४] जो मनोहर स्पर्श में अत्यधिक आसक्त होता है और अमनोहर स्पर्श में द्वेष

करता है, वह अज्ञानी दुःख की पीड़ा को प्राप्त होता है । विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता है ।

[१३२५-१३२६] स्पर्श की आशा का अनुगामी अनेकरूप त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को ही मुख्य माननेवाला क्लिष्ट अज्ञानी विविध प्रकार से उन्हें परिताप देता है, पीड़ा पहुँचाता है । स्पर्श में अनुरक्ति और ममत्व के कारण स्पर्श के उत्पादन में, संरक्षण में, संनियोग में तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कहाँ ? उसे उपभोग-काल में भी तृप्ति नहीं मिलती है ।

[१३२७-१३२८] स्पर्श में अतृप्त तथा परिग्रह में आसक्त और उपसक्त व्यक्ति संतोष को प्राप्त नहीं होता है । वह असंतोष के दोष से दुःखी और लोभ से व्याकुल होकर दूसरों की वस्तुएँ चुराता है । दूसरों की वस्तुओं का अपहरण करता है । लोभ के दोष से उसका कपट और झूठ बढ़ता है । कपट और झूठ से भी वह दुःख से मुक्त नहीं हो पाता ।

[१३२९] झूठ बोलने के पहले, उसके बाद और बोलने के समय में भी वह दुःखी होता है । उसका अन्त भी दुःख रूप है । इस प्रकार रूप में अतृप्त होकर वह चोरी करने वाला दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

[१३३०] इस प्रकार स्पर्श में अनुरक्त पुरुष को कहा, कब, कितना सुख होगा ? जिसे पान के लिए दुःख उठाया जाता है, उसके उपभोग में भी क्लेश और दुःख ही होता है ।

[१३३१] इसी प्रकार जो स्पर्श के प्रति द्वेष करता है, वह भी उत्तरोत्तर अनेक दुःखों की परम्परा को प्राप्त होता है । द्वेषयुक्त चित्त से जिन कर्मों का उपार्जन करता है, वे ही विपाक के समय में दुःख के कारण बनते हैं ।

[१३३२] स्पर्श में विरक्त मनुष्य शोकरहित होता है । वह संसार में रहता हुआ भी लिप्त नहीं होता है । जैसे जलाशय में कमल का पत्ता जल से ।

[१३३३-१३३४] मन का विषय भाव है । जो भाव राग में कारण है, उसे मनोज्ञ कहते हैं और जो भाव द्वेष का कारण होता है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं । मन भाव का ग्राहक है । भाव मन का ग्राह्य है । जो राग का कारण है, उसे मनोज्ञ कहते हैं । और जो द्वेष का कारण है, उसे अमनोज्ञ कहते हैं ।

[१३३५-१३३६] जो मनोज्ञ भावों में तीव्र रूप से आसक्त है, वह अकाल में विनाश को प्राप्त होता है । जैसे हथिनी के प्रति आकृष्ट, काम गुणों में आसक्त रागातुर हाथी विनाश को प्राप्त होता है । जो अमनोज्ञ भाव के प्रति तीव्ररूप से द्वेष करता है, वह उसी क्षण अपने दुर्दान्त द्वेष से दुःखी होता है । इसमें भाव का कोई अपराध नहीं है ।

[१३३७] जो मनोज्ञ भाव में एकान्त आसक्त होता है, और अमनोज्ञ में द्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःख की पीड़ा को प्राप्त होता है । विरक्त मुनि उनमें लिप्त नहीं होता ।

[१३३८-१३३९] भाव की आशा का अनुगामी व्यक्ति अनेक रूप त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है । अपने प्रयोजन को ही मुख्य मानने वाला क्लिष्ट अज्ञानी जीव विविध प्रकार से उन्हें परिताप देता है, पीड़ा पहुँचाता है । भाव में अनुरक्त और ममत्व के कारण भाव के उत्पादन में, संरक्षण में, सन्नियोग में तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कहाँ ?



उसे उपभोगकाल में भी तृप्ति नहीं मिलती है ।

[१३४०-१३४१] भाव में अतृप्त तथा परिग्रह में आसक्त और उपसक्त व्यक्ति संतोष को प्राप्त नहीं होता । वह असंतोष के दोष से दुःखी तथा लोभ से व्याकुल होकर दूसरों की वस्तु चुराता है । दूसरों की वस्तुओं का अपहरण करता है । लोभ के दोष से उसका कपट और झूठ बढ़ाता है । कपट और झूठ से भी वह दुःख से मुक्त नहीं हो पाता है ।

[१३४२] झूठ बोलने के पहले, उसके बाद, और बोलने के समय वह दुःखी होता है । उसका अन्त भी दुःखरूप है । इस प्रकार भाव में अतृप्त होकर वह चोरी करता है, दुःखी और आश्रयहीन हो जाता है ।

[१३४३] इस प्रकार भाव में अनुरक्त पुरुष को कहाँ, कब और कितना सुख होगा ? जिसे पाने के लिए दुःख उठाता है । उसके उपभोग में भी क्लेश और दुःख ही होता है ।

[१३४४] इसी प्रकार जो भाव के प्रति द्वेष करता है, वह उत्तरोत्तर अनेक दुःखों की परम्परा को प्राप्त होता है । द्वेष-युक्त चित्त से जिन कर्मों का उपार्जन करता है, वे ही विपाक के समय में दुःख के कारण बनते हैं ।

[१३४५] भाव में विरक्त मनुष्य शोक-रहित होता है । वह संसार में रहता हुआ भी लिप्त नहीं होता है, जैसे जलाशय में कमल का पत्ता जल से ।

[१३४६] इस प्रकार रागी मनुष्य के लिए इन्द्रिय और मन के जो विषय दुःख के हेतु हैं, वे ही वीतराग के लिए कभी भी किंचित् मात्र भी दुःख के कारण नहीं होते हैं ।

[१३४७] काम-भोग न समता-समभाव लाते हैं, और न विकृति लाते हैं । जो उनके प्रति द्वेष और ममत्त्व रखता है, वह उनमें मोह के कारण विकृति को प्राप्त होता है ।

[१३४८-१३४९] क्रोध, मान, माया, लोभ, जुगुप्सा, अरति, रति, हास्य, भय, शोक, पुरुषवेद, स्त्री वेद, नपुंसक वेद तथा हर्ष विषाद आदि विविध भावों को—अनेक प्रकार के विकारों को, उनसे उत्पन्न अन्य अनेक कुपरिणामों को वह प्राप्त होता है, जो कामगुणों में आसक्त है । और वह करुणास्पद, दीन, लज्जित और अप्रिय भी होता है ।

[१३५०] शरीर की सेवारूप सहायता आदि की लिप्सा से कल्पयोग्य शिष्य की भी इच्छा न करे । दीक्षित होने के बाद अनुत्तम होकर तप के प्रभाव की इच्छा न करे । इन्द्रियरूपी चोरों के वशीभूत जीव अनेक प्रकार के अपरिमित विकारों को प्राप्त करता है ।

[१३५१] विकारों के होने के बाद मोहरूपी महासागर में डुबाने के लिए विषयासेवन एवं हिंसादि अनेक प्रयोजन उपस्थित होते हैं । तब वह सुखाभिलाषी रागी व्यक्ति दुःख से मुक्त होने के लिए प्रयत्न करता है ।

[१३५२] इन्द्रियों के जितने भी शब्दादि विषय हैं, वे सभी विरक्त व्यक्ति के मन में मनोज्ञता अथवा अमनोज्ञता उत्पन्न नहीं करते हैं ।

[१३५३] “अपने ही संकल्प-विकल्प सब दोषों के कारण हैं, इन्द्रियों के विषय नहीं”—ऐसा जो संकल्प करता है, उसके मन में समता जागृत होती है और उससे उसकी काम-गुणों की तुष्णा क्षीण होती है ।

[१३५४] वह कृतकृत्य वीतराग आत्मा क्षणभर में ज्ञानावरण का क्षय करता है । दर्शन के आवरणों को हटाता है और अन्तराय कर्म को दूर करता है ।

[१३५५] उसके बाद वह सब जानता है और देखता है, तथा मोह और अन्तराय से रहित होता है । निराश्रय और शुद्ध होता है । ध्यान-समाधि से सम्पन्न होता है । आयुष्य के क्षय होने पर मोक्ष को प्राप्त होता है ।

[१३५६] जो जीव को सदैव बाधा देते रहते हैं, उन समस्त दुःखों से तथा दीर्घकालीन कर्मों से मुक्त होता है । तब वह प्रशस्त, अत्यन्त सुखी तथा कृतार्थ होता है ।

[१३५७] अनादि काल से उत्पन्न होते आए सर्व दुःखों से मुक्ति का यह मार्ग बताया है । उसे सम्यक् प्रकार से स्वीकार कर जीव क्रमशः अत्यन्त सुखी होते हैं ।—ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-३३-कर्मप्रकृति

[१३५८] मैं अनुपूर्वी के क्रमानुसार आठ कर्मों का वर्णन करूँगा, जिनसे बँधा हुआ यह जीव संसार में परिवर्तन करता है ।

[१३५९-१३६०] ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोह, आयुकर्म—नाम-कर्म, गोत्र और अन्तराय संक्षेप से ये आठ कर्म हैं ।

[१३६१] ज्ञानावरण कर्म पाँच प्रकार का है—श्रुत-ज्ञानावरण, आभिनिबोधिक-ज्ञानावरण, अवधि-ज्ञानावरण, मनो-ज्ञानावरण और केवल-ज्ञानावरण ।

[१३६२-१३६३] निद्रा, प्रचला, निद्रा-निद्रा, प्रचला प्रचला और पाँचवीं स्त्यानगृद्धि । चक्षु-दर्शनावरण, अचक्षु-दर्शनावरण, अवधि-दर्शनावरण और केवल-दर्शनावरण ये नौ दर्शनावरण कर्म के विकल्प-भेद हैं ।

[१३६४] वेदनीय कर्म के दो भेद हैं—सातावेदनीय और असाता वेदनीय । साता और असातावेदनीय के अनेक भेद हैं ।

[१३६५-१३६८] मोहनीय कर्म के भी दो भेद हैं—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय । दर्शनमोहनीय के तीन और चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं । सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व—ये तीन दर्शन मोहनीय की प्रकृतियाँ हैं । चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं—कषाय मोहनीय और नोकषाय मोहनीय । कषाय मोहनीय कर्म के सोलह भेद हैं । नोकषाय मोहनीय कर्म के सात अथवा नौ भेद हैं ।

[१३६९] आयु कर्म के चार भेद हैं—नैरयिकआयु, तिर्यग्आयु, मनुष्यआयु और देवआयु ।

[१३७०] नाम कर्म के दो भेद हैं—शुभ नाम और अशुभ-नाम । शुभ के अनेक भेद हैं । इसी प्रकार अशुभ के भी ।

[१३७१] गोत्र कर्म के दो भेद हैं—उच्च गोत्र और नीच गोत्र । इन दोनों के आठ-आठ भेद हैं ।

[१३७२] संक्षेप से अन्तराय कर्म के पाँच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

[१३७३] ये कर्मों की मूल प्रकृतियाँ और उत्तर प्रकृतियाँ कही गई हैं । इसके आगे उनके प्रदेशाग्र—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को सूनी ।

[१३७४-१३७५] एक समय में बद्ध होने वाले सभी कर्मों का कर्मपुद्गलरूप द्रव्य अनन्त होता है । वह ग्रन्थिभेद न करनेवाले अनन्त अभव्य जीवों से अनन्त गुण अधिक और सिद्धों के अन्तवे भाग जितना होता है । सभी जीवों के लिए संग्रह-कर्म-पुद्गल छहों दिशाओं में-आत्मा से स्पृष्ट सभी आकाश प्रदेशों में है । वे सभी कर्म-पुद्गल बन्ध के समय आत्मा के सभी प्रदेशों के साथ बद्ध होते हैं ।

[१३७६-१३७७] ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटि-कोटि उदधि सट्टश-सागरोपम की है और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[१३७८] मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटि-कोटि सागरोपम की है । और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[१३७९] आयु-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है; और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

[१३८०] नाम और गोत्र-कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटि-कोटि सागरोपम की है और जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त्त की है ।

[१३८१-१३८२] सिद्धों के अनन्तवें भाग जितने कर्मों के अनुभाग हैं । सभी अनुभागों का प्रदेश-परिमाण सभी भव्य और अभव्य जीवों से अतिक्रान्त है, अधिक है । इसलिए इन कर्मों के अनुभागों को जानकर बुद्धिमान साधक इनका संवर और क्षय करने का प्रयत्न करे । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-३४-लेश्याध्ययन

[१३८३-१३८४] मैं अनुपूर्वी के क्रमानुसार लेश्याअध्ययन का निरूपण करूँगा । मुझसे तुम छहों लेश्याओं के अनुभावों—को सुनो । लेश्याओं के नाम, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयुष्य को मुझसे सुनो ।

[१३८५] क्रमशः लेश्याओं के नाम इस प्रकार हैं—कृष्ण, नील, कापोत, तेजस्, पद्म और शुक्ल ।

[१३८६-१३९१] कृष्ण लेश्या का वर्ण सजल मेघ, महिष, श्रृंग, अरिष्टक खंजन, अंजन और नेत्र-तारिका के समान (काला) है । नील लेश्या का वर्ण—नील अशोक वृक्ष, चास पक्षी के पंख और स्निग्ध वैडूर्य मणि के समान (नीला) है । कापोत लेश्या का वर्ण—अलसी के फूल, कोयल के पंख और कवूतर की ग्रीवा के वर्ण के समान (कुछ काला और कुछ लाल-जैसा मिश्रित) है । तेजोलेश्या का वर्ण—हिंगुल, गेरू, उदीयमान तरुण सूर्य, तोते की चोंच, प्रदीप की लौ के समान (लाल) होता है । पद्म लेश्या का वर्ण—हरिताल और हल्दी के खण्ड तथा सण और असन के फूल के समान (पीला) है । शुक्ल लेश्या का वर्ण—शंख, अंकरत्न, कुन्दपुष्प, दुग्ध-धारा, चांदी के हार के समान (श्वेत) है ।

[१३९२-१३९७] कड़ुवा तूम्बा, नीम तथा कड़वी रोहिणी का रस जितना कड़ुवा होता है, उससे अनन्त गुण अधिक कड़ुवा कृष्ण लेश्या का रस है । त्रिकटु और गजपीपल का रस जितना तीखा है, उससे अनन्त गुण अधिक तीखा नील लेश्या का रस है । कच्चे आम और कच्चे कपित्थ का रस जैसे कसैला होता है, उससे अनन्त गुण इधक कसैला कापोत



लेश्या का रस है । पके हुए आम और पके हुए कपित्थ का रस जितना खट-मीठा होता है, उससे अनन्त गुण अधिक खट-मीठा तेजोलेश्या का रस है । उत्तम सुरा, फूलों से बने विविध आसव, मधु तथा मैरेयक का रस जितना अम्ल होता है, उससे अनन्त गुण अधिक पद्मलेश्या का रस है । खजूर, मृद्रीका, क्षीर, खाँड और शक्कर का रस जितना मीठा होता है उससे अनन्त गुण अधिक मीठा शुक्ललेश्या का रस है ।

[१३९८-१३९९] गाय, कुत्ते और सर्प के मृतक शरीर की जैसे दुर्गन्ध होती है, उससे अनन्त गुण अधिक दुर्गन्ध तीनों अप्रशस्त लेश्याओं की होती है । सुगन्धित पुष्प और पीसे जा रहे सुगन्धित पदार्थों की जैसी गन्ध है, उससे अनन्त गुण अधिक सुगन्ध तीनों प्रशस्त लेश्याओं की है ।

[१४००-१४०१] क्रकच, गाय की जीभ और शाक वृक्ष के पत्रों का स्पर्श जैसे कर्कश होता है, उससे अनन्त गुण अधिक कर्कश स्पर्श तीनों अप्रशस्त लेश्याओं का है । बूर, नवनीत, सिरीष के पुष्पों का स्पर्श जैसे कोमल होता है, उससे अनन्त गुण अधिक कोमल स्पर्श तीनों प्रशस्त लेश्याओं का है ।

[१४०२] लेश्याओं के तीन, नौ, सत्ताईस, इक्कासी अथवा दो-सौ तैंतालीस परिणाम होते हैं ।

[१४०३-१४०४] जो मनुष्य पाँच आश्रवों में प्रवृत्त है, तीन गुणियों में अगुप्त है, पट्काय में अविरत है, तीव्र आरम्भ में संलग्न है, क्षुद्र है, अविवेकी है—निःशंक परिणामवाला है, नृशंस है, अजितेन्द्रिय है—इन सभी योगों से युक्त, वह कृष्णलेश्या में परिणत होता है ।

[१४०५-१४०६] जो ईर्ष्यालु है, अमर्ष है, अतपस्वी है, अज्ञानी है, मायावी है, लज्जारहित है, विषयासक्त है, द्वेषी है, धूर्त है, प्रमादी है, रस-लोलुप है, सुख का गवेषक है—जो आरम्भ से अविरत है, क्षुद्र है, दुःसाहसी है—इन योगों से युक्त मनुष्य नीललेश्या में पविवत होता है ।

[१४०७-१४०८] जो मनुष्य वक्र है, आचार से टेढ़ा है, कपट करता है, सरलता से रहित है, प्रति-कुञ्चक है—अपने दोषों को छुपाता है, औपधिक है—सर्वत्र छद्म का प्रयोग करता है । मिथ्यादृष्टि है, अनार्य है—उत्प्रासक है—दुष्ट वचन बोलता है, चोर है, मत्सरी है, इन सभी योगों से युक्त वह कापोत लेश्या में परिणत होता है ।

[१४०९-१४१०] जो नम्र है, अचपल है, माया से रहित है, अकुतूहल है, विनय करने में निपुण है, दान्त है, योगवान् है, उपधान करनेवाला है । प्रियधर्मी है, दृढधर्मी है, पपा-भीरु है, हितैपी है—इन सभी योगों से युक्त वह तेजो लेश्या में परिणत होता है ।

[१४११-१४१२] क्रोध, मान, माया और लोभ जिसके अत्यन्त अल्प हैं, जो प्रशान्तचित्त है, अपनी आत्मा का दमन करता है, योगवान् है, उपधान करनेवाला है—जो मित-भाषी है, उपशान्त है, जितेन्द्रिय है—इन सभी योगों से युक्त वह पद्म लेश्या में परिणत होता है ।

[१४१३-१४१४] आर्त और रौद्र ध्यानों को छोड़कर जो धर्म और शुक्लध्यान में लीन है, जो प्रशान्त-चित्त और दान्त है, पाँच समितियों से समित और तीन गुणियों से गुप्त है—सराग हो या वीतराग, किन्तु जो उपशान्त है, जितेन्द्रिय है—इन सभी योगों से युक्त वह

शुक्ल लेश्या में परिणत होता है ।

[१४१५] असंख्य अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल के जितने समय होते हैं, असंख्य योजन प्रमाण लोक के जितने आकाशप्रदेश होते हैं, उतने ही लेश्याओं के स्थान होते हैं ।

[१४१६-१४२१] कृष्ण-लेश्या की जघन्य स्थिति मुहूर्त्तार्ध है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त्त-अधिक तेतीस सागर है । नील लेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागर है । कापोत लेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर है । तेजो लेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर है । पद्मलेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट एक मुहूर्त्त-अधिक दस सागर है । शुक्ललेश्या की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट मुहूर्त्त-अधिक तेतीस सागर है ।

[१४२२] गति की अपेक्षा के बिना यह लेश्याओं की ओघ-सामान्य स्थिति है । अब चार गतियों की अपेक्षा से लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूँगा ।

[१४२३-१४२५] कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार-वर्ष है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर है । नील लेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागर है । कृष्ण-लेश्या की जघन्य-स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागर है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर है ।

[१४२६] नैरयिक जीवों की लेश्याओं की स्थिति का यह वर्णन किया है । इसके बाद तिर्यच, मनुष्य और देवों की लेश्या-स्थिति का वर्णन करूँगा ।

[१४२७-१४२८] केवल शुक्ल लेश्या को छोड़कर मनुष्य और तिर्यचों की जितनी भी लेश्याएँ हैं, उन सब की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त है । शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त है और उत्कृष्ट स्थिति नौ वर्ष न्यून एक करोड़ पूर्व है ।

[१४२९] मनुष्य और तिर्यचों की लेश्याओं की स्थिति का यह वर्णन है । इससे आगे देवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूँगा ।

[१४३०-१४३२] कृष्ण लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है । कृष्णलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है, उससे एक समय अधिक नील लेश्या की जघन्य स्थिति, और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग अधिक है । नील लेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है, उससे एक समय अधिक कापोत लेश्या की जघन्य स्थिति है, और पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग अधिक उत्कृष्ट है ।

[१४३३] इससे आगे भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों की तेजोलेश्या की स्थिति का निरूपण करूँगा ।

[१४३४-१४३५] तेजोलेश्या को जघन्य स्थिति एक पल्योपम है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग अधिक दो सागर है । तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग अधिक दो सागर है ।

[१४३६-१४३७] तेजोलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है, उससे एक समय अधिक पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त्त अधिक दस सागर है । जो पद्म

लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है, उससे एक समय अधिक शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति है, और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त-अधिक तेतीस सागर है ।

[१४३८-१४३९] कृष्ण, नील और कापोत—ये तीनों अधर्म लेश्याएँ हैं । इन तीनों से जीव अनेक बार दुर्गति को प्राप्त होता है । तेजो-लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ललेश्या—ये तीनों धर्म लेश्याएँ हैं । इन तीनों से जीव अनेक बार सुगति को प्राप्त होता है ।

[१४४०-१४४२] प्रथम समय में परिणत सभी लेश्याओं से कोई भी जीव दूसरे भव में उत्पन्न नहीं होता । अन्तिम समय में परिणत सभी लेश्याओं से कोई भी जीव दूसरे भव में उत्पन्न नहीं होता । लेश्याओं को परिणति होने पर अन्तर् मुहूर्त व्यतीत हो जाता है और जब अन्तर्मुहूर्त शेष रहता है, उस समय जीव परलोक में जाते हैं ।

[१४४३] अतः लेश्याओं के अनुभाग को जानकर अप्रशस्त लेश्याओं का परित्याग कर प्रशस्त लेश्याओं में अधिष्ठित होना चाहिए ।—ऐसा मैं कहता हूँ ।

### अध्ययन-३५-अनगारमार्गगति

[१४४४] मुझ से ज्ञानियों द्वारा उपदिष्ट मार्ग को एकाग्र मन से सुनो, जिसका आचरण कर भिक्षु दुःखों का अन्त करता है ।

[१४४५] गृहवास का परित्याग कर प्रव्रजित हुआ मुनि, इन संगों को जाने, जिनमें मनुष्य आसक्त होते हैं ।

[१४४६] संयत भिक्षु हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य, इच्छा-काम और लोभ से दूर रहे ।

[१४४७-१४४८] मनोहर चित्रों से युक्त, माल्य और धूप से सुवासित, किवाड़ों तथा सफेद चंदोवा से युक्त—ऐसे चित्ताकर्षक स्थान की मन से भी इच्छा न करे । काम-राग को बढ़ाने वाले इस प्रकार के उपाश्रय में इन्द्रियों का निरोध करना भिक्षु के लिए दुष्कर है ।

[१४४९-१४५०] अतः एकाकी भिक्षु श्मशान में, शून्य गृह में, वृक्ष के नीचे तथा परकृत एकान्त स्थान में रहने की अभिरुचि रखे । परम संयत भिक्षु प्रासुक, अनावध, स्त्रियों के उपद्रव से रहित स्थान में रहने का संकल्प करे ।

[१४५१-१४५२] भिक्षु न स्वयं घर बनाए और न दूसरों से बनवाए । चूँकि गृह-कर्म के समारंभ में प्राणियों का वध देखा जाता है । त्रस और स्थावर तथा सूक्ष्म और बादर जीवों का वध होता है, अतः संयत भिक्षु गृह-कर्म के समारंभ का परित्याग करे ।

[१४५३-१४५४] इसी प्रकार भक्त-पान पकाने और पकवाने में हिंसा होती है । अतः प्राण और भूत जीवों की दया के लिए न स्वयं पकाए न दूसरे से पकवाए । भक्त और पान के पकाने में जल, धान्य, पृथ्वी और काष्ठ के आश्रित जीवों का वध होता है—अतः भिक्षु न पकवाए ।

[१४५५] अग्नि के समान दूसरा शस्त्र नहीं है, वह सभी ओर से प्राणिनाशक तीक्ष्ण धार से युक्त है, बहुत अधिक प्राणियों की विनाशक है, अतः भिक्षु अग्नि न जलाए ।

[१४५६-१४५८] क्रय-विक्रय से विरक्त भिक्षु सुवर्ण और मिट्टी को समान समझनेवाला है, अतः वह सोने और चाँदी की मन से भी इच्छा न करे । वस्तु को खरीदने वाला क्रयिक—



होता है और बेचने वाला वणिक् अतः क्रय-विक्रय में प्रवृत्त साधु 'साधु' नहीं है । भिक्षा-वृत्ति से ही भिक्षु को भि७ करनी चाहिए, क्रय-विक्रय से नहीं । क्रय-विक्रय महान् दोष है । भिक्षा-वृत्ति सुखावह है ।

[१४५९-१४६०] मुनि श्रुत के अनुसार अनिन्दित और सामुदायिक उज्ज की एषणा करे । वह लाभ और अलाभ में सन्तुष्ट रहकर भिक्षा-चर्या करे । अलोलुप, रस में अनासक्त, रसनेन्द्रिय का विजेता, अमूर्च्छित महामुनि यापनार्थ-जीवन-निर्वाह के लिए ही खाए, रस के लिए नहीं ।

[१४६१] मुनि अर्चना, रचना, पूजा, ऋद्धि, सत्कार और सम्मान की मन से भी प्रार्थना न करे ।

[१४६२] मुनि शुक्ल ध्यान में लीन रहे । निदानरहित और अकिंचन रहे । जीवन-पर्यन्त शरीर की आसक्ति को छोड़कर विचरण करे ।

[१४६३] अन्तिम काल-धर्म उपस्थित होने पर मुनि आहार का परित्याग कर और मनुष्य-शरीर को छोड़कर दुःखों से मुक्तप्रभु हो जाता है ।

[१४६४] निर्मम, निरहंकार, वीतराग और अनाश्रव मुनि केवल-ज्ञान को प्राप्त कर शाश्वत परिनिर्वाण को प्राप्त होता है । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

अध्ययन-३५-का मुनिदीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

### अध्ययन-३६-जीवाजीवविभक्ति

[१४६५] जीव और अजीव के विभाग का तुम एकाग्र मन होकर मुझसे सुनो, जिसे जानकर भिक्षु सम्यक् प्रकार से संयम में यत्नशील होता है ।

[१४६६] यह लोक जीव और अजीवमय कहा गया है और जहाँ अजीव का एक देश केवल आकाश है, वह अलोक कहा जाता है ।

[१४६७] द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से जीव और अजीव की प्ररूपणा होती है ।

[१४६८] अजीव के दो प्रकार हैं—रूपी और अरूपी । अरूपी दस प्रकार का है, और रूपी चार प्रकार का ।

[१४६९-१४७०] धर्मास्तिकाय और उसका देश तथा प्रदेश । अधर्मास्तिकाय और उसका देश तथा प्रदेश । आकाशास्तिकाय और उसका देश तथा प्रदेश । और एक अद्धा समय ये दस भेद अरूपी अजीव के हैं ।

[१४७१-१४७२] धर्म और अधर्म लोक-प्रमाण हैं । आकाश लोक और अलोक में व्याप्त है । काल केवल समय-क्षेत्र में ही है । धर्म, अधर्म, आकाश—ये तीनों द्रव्य अनादि, अपर्यवसित और सर्वकाल है ।

[१४७३] प्रवाह की अपेक्षा से समय भी अनादि अनन्त है । प्रतिनियत व्यक्ति रूप एक-एक क्षण की अपेक्षा से सादि सान्त है ।

[१४७४-१४७६] रूपी द्रव्य के चार भेद हैं—स्कन्ध, स्कन्ध-देश, स्कन्ध-प्रदेश और परमाणु । परमाणुओं के एकत्व होने से स्कन्ध होते हैं । स्कन्ध के पृथक् होने से परमाणु होते

हैं । यह द्रव्य की अपेक्षा से है । क्षेत्र की अपेक्षा से वे स्कन्ध आदि लोक के एक देश से लेकर सम्पूर्ण लोक तक में भाज्य हैं—यहाँ से आगे स्कन्ध और परमाणु के काल की अपेक्षा से चार भेद कहता हूँ । स्कन्ध आदि प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि सान्त हैं ।

[१४७७] रूपी अजीवों—पुद्गल द्रव्यों की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल की बताई गई है ।

[१४७८] रूपी अजीवों का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है ।

[१४७९] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से स्कन्ध आदि का परिणमन पाँच प्रकार का है ।

[१४८०] जो स्कन्ध आदि पुद्गल वर्ण से परिणत हैं, वे पाँच प्रकार के हैं—कृष्ण, नील, लोहित, हरिद्र और शुक्ल ।

[१४८१] जो पुद्गल गन्ध से परिणत हैं, वे दो प्रकार के हैं—सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध ।

[१४८२] जो पुद्गल रस से परिणत हैं, वे पाँच प्रकार के हैं—तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और मधुर ।

[१४८३-१४८४] जो पुद्गल स्पर्श से परिणत हैं, वे आठ प्रकार के हैं—कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष । इस प्रकार ये स्पर्श से परिणत पुद्गल कहे गये हैं ।

[१४८५] जो पुद्गल संस्थान से परिणत हैं, वे पाँच प्रकार के हैं—परिमण्डल, वृत्त, त्रिकोण, चौकोर और दीर्घ ।

[१४८६-१४९०] जो पुद्गल वर्ण से कृष्ण है, या वर्ण से नील है, या रक्त है, या पीत है, या वर्ण से शुक्ल हैं वह गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य है ।

[१४९१-१४९२] जो पुद्गल गन्ध से सुगन्धित है, या दुर्गन्धित है, वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य है ।

[१४९३-१४९७] जो पुद्गल रस से तिक्त है, कटु है, कसैला है, खट्टा है या मधुर है वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य है ।

[१४९८-१५०५] जो पुद्गल स्पर्श से कर्कश है - मृदु है - गुरु है - लघु है - शीत है - उष्ण है - स्निग्ध है या रूक्ष है वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भाज्य है ।

[१५०६-१५१०] जो पुद्गल संस्थान से परिमण्डल है-वृत्त है - त्रिकोण है - चतुष्कोण है या आयत है वह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य है ।

[१५११] यह संक्षेप से अजीव विभाग का निरूपण किया गया है । अब क्रमशः जीवविभाग का निरूपण करूँगा ।

[१५१२] जीव के दो भेद हैं—संसारी और सिद्ध । सिद्ध अनेक प्रकार के हैं । उनका कथन करता हूँ, सुनो ।

[१५१३] स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरुषलिंग सिद्ध, नपुंसकलिंग सिद्ध और स्वलिंग सिद्ध, अन्यलिंग सिद्ध तथा गृहलिंग सिद्ध ।

[१५१४] उत्कृष्ट, जघन्य और मध्यम अवगाहना में तथा ऊर्ध्व लोक में, तिर्यक् लोक में एवं समुद्र और अन्य जलाशय में जीव सिद्ध होते हैं ।

[१५१५-१५१८] एक समय में दस नपुंसक, बीस स्त्रियाँ और एक-सौ आठ पुरुष एवं गृहस्थलिंग में चार, अन्यलिंग में दस, स्वलिंग में एक-सौ आठ एवं उत्कृष्ट अवगाहना में दो, जघन्य अवगाहना में चार और मध्यम अवगाहना में एक-सौ आठ एवं ऊर्ध्व लोक में चार, समुद्र में दो, जलाशय में तीन, अधो लोक में बीस, तिर्यक् लोक में एक-सौ आठ जीव सिद्ध हो सकते हैं ।

[१५१९-१५२०] सिद्ध कहाँ रुकते हैं ? कहाँ प्रतिष्ठित हैं ? शरीर को कहाँ छोड़कर, कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ? सिद्ध अलोक में रुकते हैं । लोक के अग्रभाग में प्रतिष्ठित हैं । मनुष्यलोक में शरीर को छोड़कर लोक के अग्रभाग में जाकर सिद्ध होते हैं ।

[१५२१-१५२३] सर्वार्थ-सिद्ध विमान से बारह योजन ऊपर ईषत्-प्राग्भारा पृथ्वी है । वह छत्राकार है । उसकी लम्बाई पैंतालीस लाख योजन है । चौड़ाई उतनी ही है । परिधि उससे तिगुनी है । मध्यम में वह आठ योजन स्थूल है । क्रमशः पतली होती होती अन्तिम भाग में मक्खी के पंख से भी अधिक पतली हो जाती है ।

[१५२४-१५२५] जिनवरों ने कहा है—वह पृथ्वी अर्जुन स्वर्णमयी है, स्वभाव से निर्मल है और उत्तान छत्राकार है । शंख, अंकरत्न और कुन्द पुष्प के समान श्वेत है, निर्मल और शुभ है । इस सीता नाम की ईषत्-प्राग्भारा पृथ्वी से एक योजन ऊपर लोक का अन्त है ।

[१५२६-१५२७] उस योजन के ऊपर का जो कोस है, उस कोस के छठे भाग में सिद्धों की अवगाहना होती है । भवप्रपंच से मुक्त, महाभाग, परम गति 'सिद्धि' को प्राप्त सिद्ध वहाँ अग्रभाग में स्थित हैं ।

[१५२८] अन्तिम भव में जिसकी जितनी ऊँचाई होती है, उससे त्रिभागहीन सिद्धों की अवगाहना होती है ।

[१५२९] एक की अपेक्षा से सिद्ध सादिअनन्त है । और बहुत्व की अपेक्षा से सिद्ध अनादि, अनन्त हैं ।

[१५३०] वे अरूप हैं, सघन हैं, ज्ञान-दर्शन से संपन्न हैं । जिसकी कोई उपमा नहीं है, ऐसा अतुल सुख उन्हें प्राप्त है ।

[१५३१] ज्ञान-दर्शन से युक्त, संसार के पार पहुँचे हुए, परम गति सिद्धि को प्राप्त वे सभी सिद्ध लोक के एक देश में स्थित हैं ।

[१५३२] संसारी जीव के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर । उनमें स्थावर तीन प्रकार के हैं ।

[१५३३] पृथ्वी, जल और वनस्पति—ये तीन प्रकार के स्थावर हैं । अब उनके भेदों को मुझसे सुनो ।

[१५३४-१५३६] पृथ्वीकाय जीव के दो भेद हैं—सूक्ष्म और बादर । पुनः दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त दो-दो भेद हैं । बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय जीव के दो भेद हैं—श्लक्ष्ण और खर । मृदु के सात भेद हैं—कृष्ण, नील, रक्त, पीत, श्वेत, पाण्डु और पनक । कठोर पृथ्वी के छत्तीस प्रकार हैं—

[१५३७-१५४०] शुद्ध पृथ्वी, शर्करा, बालू, उपल-पत्थर, शिला, लवण, क्षाररूप



नौनी मिट्टी, लोहा, ताम्बा, त्रपुक, शीशा, चाँदी, सोना, वज्र, हरिताल, हिंगुल, मैन्सिल, सस्यक, अंजन, प्रवाल, अभ्र-पटल, अभ्रबालुक-अभ्रक की पड़तों से मिश्रित बालू । और विविध मणि भी बादर पृथ्वी काय के अन्तर्गत हैं—गोमेदक, रुचक, अंक, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारागल्ल, भुजमोचक, इन्द्रनील, चन्दन, गेरुक एवं हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रप्रभ, वैडूर्य, जलकान्त और सूर्यकान्त ।

[१५४१] ये कठोर पृथ्वीकाय के छत्तीस भेद हैं । सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीव एक ही प्रकार के हैं, अतः वे अनानात्व हैं ।

[१५४२] सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीव सम्पूर्ण लोक में और बादर पृथ्वीकाय के जीवलोक के एक देश में व्याप्त हैं । अब चार प्रकार से पृथ्वीकायिक जीवों के काल-विभाग का कथन करूँगा ।

[१५४३-१५४६] पृथ्वीकायिक जीव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि सान्त हैं । उनकी २२०० वर्ष की उत्कृष्ट और अन्तर्मुहूर्त की जघन्य स्थिति है । उनकी असंख्यात कालकी उत्कृष्ट और अन्तर्मुहूर्त की जघन्य काय-स्थिति है । पृथ्वी के शरीर को न छोड़कर निरन्तर पृथ्वीकाय में ही पैदा होते रहना, काय-स्थिति है । पृथ्वी के शरीर को एकबार छोड़कर फिर वापस पृथ्वी के शरीरमें उत्पन्न होने के बीचका अन्तरकाल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल है ।

[१५४७] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के आदेश से तो पृथ्वी के हजारों भेद होते हैं ।

[१५४८-१५५०] अप् काय जीव के दो भेद हैं—सूक्ष्म और बादर । पुनः दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त दो-दो भेद हैं । बादर पर्याप्त अप्काय जीवों के पाँच भेद हैं—शुद्धोदक, ओस, हस्तनु, महिका और हिम । सूक्ष्म अप्काय के जीव एक प्रकार के हैं, उनके भेद नहीं हैं । सूक्ष्म अप्काय के जीव सम्पूर्ण लोक में और बादर अप्कायके जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं ।

[१५५१-१५५४] अप्कायिक जीव प्रवाह की अपेक्षा से अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं । उनकी ७००० वर्ष की उत्कृष्ट और अन्तर्मुहूर्त की जघन्य आयुस्थिति है । उनकी असंख्यात काल की उत्कृष्ट और अन्तर्मुहूर्त की जघन्य कायस्थिति है । अप्काय को छोड़कर निरन्तर अप्काय में ही पैदा होना, काय स्थिति है । अप्काय को छोड़कर पुनः अप्काय में उत्पन्न होने का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त-काल का है ।

[१५५५] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से अप्काय के हजारों भेद हैं ।

[१५५६-१५५७] वनस्पति काय के जीवों के दो भेद हैं—सूक्ष्म और बादर । पुनः दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त दो-दो भेद हैं । बादर पर्याप्त वनस्पतिकाय के जीवों के दो भेद हैं—साधारण-शरीर और प्रत्येक-शरीर ।

[१५५८-१५५९] प्रत्येक-शरीर वनस्पति काय के जीवों के अनेक प्रकार हैं । जैसे—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली और तृण । लता-वलय, पर्वज, कुहण, जलरुह, औषधि,

धान्य, तृण और हरितकाय—ये सभी प्रत्येक शरीरी हैं ।

[१५६०-१५६३] साधारणशरीरी अनेक प्रकार के हैं—आलुक, मूल, शृंगवेर, हिरिलीकन्द, सिरिलीकन्द, सिस्सिरिलीकन्द, जावईकन्द, केद-कंदलीकन्द, प्याज, लहसुन, कन्दली, कुस्तुम्बक, लोही, स्निहु, कुहक, कृष्ण, वज्रकन्द और सूरण-कन्द, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, मुसुंठी और हरिद्रा इत्यादि ।

[१५६४-१५६८] सूक्ष्म वनस्पति काय के जीव एक ही प्रकार के हैं, उनके भेद नहीं हैं । सूक्ष्म वनस्पतिकाय के जीव सम्पूर्ण लोक में और बादर वनस्पति काय के जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । वे प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादिसान्त हैं । उनकी दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट और अन्तर्मुहूर्त की जघन्य आयु-स्थिति है । उनकी अनन्त काल की उत्कृष्ट और अन्तर्मुहूर्त की जघन्य काय-स्थिति है । वनस्पति के शरीर को न छोड़कर निरन्तर वनस्पति के शरीर में ही पैदा होना, कायस्थिति है । वनस्पति के शरीर को छोड़कर पुनः वनस्पति के शरीर में उत्पन्न होने में जो अन्तर होता है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट असंख्यात काल का है ।

[१५६९] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से वनस्पतिकाय के हजारों भेद हैं ।

[१५७०] इस प्रकार संक्षेप से तीन प्रकार के स्थावर जीवों का निरूपण किया गया । अब क्रमशः तीन प्रकार के त्रस जीवों का निरूपण करूँगा ।

[१५७१] तेजस्, वायु और उदार त्रस—ये तीन त्रसकाय के भेद हैं . उनके भेदों को मुझसे सुनो ।

[१५७२-१५७४] तेजस् काय जीवों के दो भेद हैं—सूक्ष्म और बादर । पुनः दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त दो-दो भेद हैं । बादर पर्याप्त तेजस् काय जीवों के अनेक प्रकार हैं—अंगार, मुर्मुर, अग्नि, अर्चि—ज्वाला, उल्का, विद्युत् इत्यादि । सूक्ष्म तेजस्काय के जीव एक प्रकार के हैं, उनके भेद नहीं हैं ।

[१५७५-१५७९] सूक्ष्म तेजस्काय के जीव सम्पूर्ण लोक में और बादर तेजस्काय के जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । इस निरूपण के बाद चार प्रकार से तेजस्काय जीवों के काल-विभाग का कथन करूँगा । वे प्रवाही की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादिसान्त हैं । तेजस्काय की आयु-स्थिति उत्कृष्ट तीन अहोरात्र की है और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है । तेजस्काय की काय-स्थिति उत्कृष्ट असंख्यात काल की है और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है । तेजस् के शरीर को छोड़ कर निरन्तर तेजस् के शरीर में ही पैदा होना, काय-स्थिति है । तेजस् के शरीर को छोड़कर पुनः तेजस् के शरीर में उत्पन्न होने में जो अन्तर है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है ।

[१५८०] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से तेजस् के हजारों भेद हैं ।

[१५८१-१५८३] वायुकाय जीवों के दो भेद हैं—सूक्ष्म और बादर । पुनः उन दोनों के पर्याप्त और अपर्याप्त दो-दो भेद हैं । बादर पर्याप्त वायुकाय जीवों के पाँच भेद हैं—उत्कलिका, मण्डलिका, धनवात, गुंजावात और शुद्धवात । संवर्तक-वात आदि और भी

अनेक भेद हैं । सूक्ष्म वायुकाय के जीव एक प्रकार के हैं, उनके भेद नहीं हैं ।

[१५८४-१५८८] सूक्ष्म वायुकाय के जीव सम्पूर्ण लोक में और बादर वायुकाय के जीव लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । इस निरूपण के बाद चार प्रकार से वायुकायिक जीवों के काल-विभाग का कथन करूँगा । वे प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से आदि सान्त हैं । उनकी आयु-स्थिति उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है और जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की । उनकी कायस्थिति उत्कृष्ट असंख्यातकाल की है और जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है । वायु के शरीर को छोड़कर निरन्तर वायु के शरीर में ही पैदा होना, कायस्थिति है । वायु के शरीर को छोड़कर पुनः वायु के शरीर में उत्पन्न होने में जो अन्तर है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है ।

[१५८९] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से वायुकाय के हजारों भेद होते हैं ।

[१५९०] उदार त्रसों के चार भेद हैं—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ।

[१५९१-१५९४] द्वीन्द्रिय जीव के दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । उनके भेदों को मुझ से सुनो । कृमि, सौमंगल, अलस, मातृवाहक, वासीमुख, सीप, शंक, शंखनक—पल्लोय, अणुल्लक, वराटक, जौक, जालक और चन्दनिया—इत्यादि अनेक प्रकार के द्वीन्द्रिय जीव हैं । वे लोक के एक भाग में व्याप्त हैं, सम्पूर्ण लोक में नहीं ।

[१५९५-१५९८] प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से आदि सान्त हैं । उनकी आयु-स्थिति उत्कृष्ट बारह वर्ष की और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है । उनकी काय-स्थिति उत्कृष्ट संख्यात काल की और जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है । द्वीन्द्रिय के शरीर को न छोड़कर निरन्तर द्वीन्द्रिय शरीर में ही पैदा होना, कायस्थिति है । द्वीन्द्रिय के शरीर को छोड़कर पुनः द्वीन्द्रिय शरीर में उत्पन्न होने में जो अन्तर है, वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है ।

[१५९९] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से उनके हजारों भेद होते हैं ।

[१६००-१६०३] त्रीन्द्रिय जीवों के दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । उनके भेदों को मुझ से सुनो । कुंथु, चींटी, खटमल, मकड़ी, दीमक, तृणाहारक, घुम, मालुक, पत्राहारक—मिंजक, तिन्दुक, त्रपुषमिंजक, शतावरी, कान-खजूरा, इन्द्रकायिक—इन्द्रगोपक इत्यादि त्रीन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के हैं । वे लोक के एक भाग में व्याप्त हैं, सम्पूर्ण लोक में नहीं ।

[१६०४-१६०७] प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से आदि सान्त हैं । उनकी आयु-स्थिति उत्कृष्ट उन पचास दिनों की और जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है । उनकी काय-स्थिति उत्कृष्ट संख्यात काल की और जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है । त्रीन्द्रिय शरीर को न छोड़कर, निरन्तर त्रीन्द्रिय शरीर में ही पैदा होना कायस्थिति है । त्रीन्द्रिय शरीर को छोड़कर पुनः त्रीन्द्रिय के शरीर में उत्पन्न होने में अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है ।

[१६०८] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से उनके हजारों भेद हैं ।

[१६०९-१६१३] चतुरिन्द्रिय जीव के दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । उनके भेद



तुम मुझ से सुनो । अन्धिका, पोतिका, मक्षिका, मशकमच्छर, भ्रमर, कीट, पतंग, ढिंकुण, कुंकुण-कुक्कुड, श्रृंगिरीटी, नन्दावर्त, बिच्छू, डोल, भृंगरीटक, विरली, अक्षिवेधक-अक्षिल, मागध, अक्षिरोडक, विचित्र, चित्र-पत्रक, ओहिंजलिया, जलकारी, नीचक, तन्तवक-इत्यादि चतुरिन्द्रिय के अनेक प्रकार हैं । वे लोक के एक भाग में व्याप्त हैं, सम्पूर्ण लोक में नहीं ।

[१६१४-१६१७] प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि-अनन्त और स्थिति की अपेक्षा से सादि सान्त हैं । उनकी आयु-स्थिति उत्कृष्ट छह मास की और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है । उनकी काय-स्थिति उत्कृष्ट संख्यातकाल की और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है । चतुरिन्द्रिय के शरीर को न छोड़कर निरन्तर चतुरिन्द्रिय के शरीर में ही पैदा होते रहना, काय-स्थिति है । चतुरिन्द्रिय शरीर को छोड़कर पुनः चतुरिन्द्रिय शरीर में उत्पन्न होने में अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है ।

[१६१८] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से उनके हजारों भेद हैं ।

[१६१९] पंचेन्द्रिय जीव के चार भेद हैं—नैरयिक, तिर्यच, मनुष्य और देव ।

[१६२०-१६२१] नैरयिक जीव सात प्रकार के हैं—रत्नाभा, शर्कराभा, बालुकाभा । पंकभा, धूमाभा, तमःप्रभा और तमस्तमा—इस प्रकार सात पृथ्वियों में उत्पन्न होने वाले नैरयिक सात प्रकार के हैं ।

[१६२२-१६२३] वे लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । इस निरूपण के बाद चार प्रकार से नैरयिक जीवों के काल-विभाग का कथन करूँगा । वे प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं । और स्थिति की अपेक्षा से सादिसान्त है ।

[१६२४-१६३०] पहली पृथ्वी में नैरयिक जीवों की आयु-स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम की दूसरी पृथ्वी में उत्कृष्ट तीन सागरोपम की और जघन्य एक सागरोपम की तीसरी पृथ्वी में उत्कृष्ट सात सागरोपम और जघन्य तीन सागरोपम । चौथी पृथ्वी उत्कृष्ट दस सागरोपम और जघन्य सात सागरोपम । पाँचवीं पृथ्वी में उत्कृष्ट सतरह सागरोपम और जघन्य दस सागरोपम है । छठी पृथ्वी में उत्कृष्ट बाईस सागरोपम और जघन्य सतरह सागरोपम है । सातवीं पृथ्वी में नैरयिक जीवों की आयु-स्थिति उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम और जघन्य बाईस सागरोपम है ।

[१६३१-१६३२] नैरयिक जीवों की जो आयु-स्थिति है, वही उनकी जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति है । नैरयिक शरीर को छोड़कर पुनः नैरयिक शरीर में उत्पन्न होने में अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है ।

[१६३३] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से उनके हजारों भेद हैं ।

[१६३४-१६३५] पंचेन्द्रिय-तिर्यञ्च जीव के दो भेद हैं—सम्पूर्च्छिम-तिर्यञ्च और गर्भजतिर्यञ्च । इन दोनों के पुनः जलचर, स्थलचर और खेचर—ये तीन-तीन भेद हैं । उनको तुम मुझसे सुनो ।

[१६३६-१६४१] जलचर पाँच प्रकार के हैं—मत्स्य, कच्छप, ग्राह, मकर और सुंसुमार । वे लोक के एक भाग में व्याप्त हैं, सम्पूर्ण लोक में नहीं । इस निरूपण के बाद चार प्रकार से उनके कालविभाग का कथन करूँगा । वे प्रवाह की अपेक्षा से अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादिसान्त हैं । जलचरों की आयु-स्थिति उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की और

जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है । जलचरों की काय-स्थिति उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की है और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है । जलचर के शरीर को छोड़कर पुनः जलचर के शरीर में उत्पन्न होने में अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है ।

[१६४२] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से उनके हजारों भेद हैं ।

[१६४३-१६४५] स्थलचर जीवों के दो भेद हैं—चतुष्पद और परिसर्प । चतुष्पद चार प्रकार के हैं, एकखुर, द्विखुर, गण्डीपद और सनखपद । परिसर्प दो प्रकार के हैं—भुजपरिसर्प, उरःपरिसर्प इन दोनों के अनेक प्रकार हैं ।

[१६४६-१६५०] वे लोक के एक भाग में व्याप्त हैं, सम्पूर्ण लोक में नहीं । इस निरूपण के बाद चार प्रकार से स्थलचर जीवों के काल-विभाग का कथन करूँगा । प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि अनन्त हैं । स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त हैं । उनकी आयु स्थिति उत्कृष्ट तीन पल्योपम की और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है । उत्कृष्टतः पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक तीन पल्योपम और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त—स्थलचर जीवों की कायस्थिति है । और उनका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है ।

[१६५१-१६५६] खेचर जीव के चार प्रकार हैं—चर्मपक्षी, रोम पक्षी, समुद्ग पक्षी और विततपक्षी । वे लोक के एक भाग में व्याप्त हैं, सम्पूर्ण लोक में नहीं । इस निरूपण के बाद चार प्रकार से खेचर जीवों के कालविभाग का कथन करूँगा । प्रवाह की अपेक्षा से वे अनादि अनन्त हैं । स्थिति की अपेक्षा से सादि सान्त हैं । उनकी आयु स्थिति उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है और जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टतः पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त—खेचर जीवों की काय-स्थिति है । और उनका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है ।

[१६५७] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से उनके हजारों भेद हैं ।

[१६५८-१६६१] मनुष्य दो प्रकार के हैं—संमूर्च्छिम और गर्भोत्पन्न । अकर्म-भूमिक, कर्म-भूमिक और अन्तर्द्वीपक—ये तीन भेद गर्भ से उत्पन्न मनुष्यों के हैं । कर्म-भूमिक मनुष्यों के पन्द्रह, अकर्म-भूमिक मनुष्यों के तीस और अन्तर्द्वीपक मनुष्यों के अट्ठाईस भेद हैं । संमूर्च्छिम मनुष्यों के भेद भी इसी प्रकार हैं । वे सब भी लोक के एक भाग में व्याप्त हैं ।

[१६६२-१६६५] उक्त मनुष्य प्रवाह की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं, स्थिति की अपेक्षा से सादि सान्त हैं । मनुष्यों की आयु-स्थिति उत्कृष्ट तीन पल्योपम और जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है । उत्कृष्टतः पृथक्त्व करोड़ पूर्व अधिक तीन पल्योपम और जघन्य अन्तर्मुहूर्त—मनुष्यों की काय-स्थिति है उनका अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का है ।

[१६६६] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से उनके हजारों भेद हैं ।

[१६६७-१६६८] भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक—ये देवों के चार भेद हैं । भवनवासी देवों के दस, व्यन्तर देवों के आठ, ज्योतिष्क देवों के पाँच और वैमानिक देवों के दो भेद हैं ।

[१६६९] असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिक्कुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार—ये दस भवनवासी देव हैं ।

[१६७०] पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गन्धर्व—ये आठ

व्यन्तर देव हैं ।

[१६७१] चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और तारा—ये पाँच ज्योतिष्क देव हैं । ये दिशा-विचारी हैं ।

[१६७२] वैमानिक देवों के दो भेद हैं—कल्प से सहित और कल्पातीत ।

[१६७३-१६७४] कल्पोपग देव के बारह प्रकार हैं—सौधर्म, ईशानक, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत आरण और अच्युत ।

[१६७५-१६७९] कल्पातीत देवों के दो भेद हैं—ग्रैवेयक और अनुत्तर । ग्रैवेयक नौ प्रकार के हैं—अधस्तन-अधस्तन, अधस्तन-मध्यम, अधस्तन-उपरितन, मध्यम-अधस्तन—मध्यम-मध्यम, मध्यम-उपरितन, उपरितन-अधस्तन, उपरितन-मध्यम—और उपरितन-उपरितन—ये नौ ग्रैवेयक हैं । विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धक—ये पाँच अनुत्तर देव हैं । इस प्रकार वैमानिक देव अनेक प्रकार के हैं ।

[१६८०-१६८१] वे सभी लोक के एक भाग में व्याप्त हैं । इस निरूपण के बाद चार प्रकार से उनके काल-विभाग का कथन करूँगा । वे प्रवाह की अपेक्षा से अनादिअनन्त हैं । स्थिति की अपेक्षा से सादिसान्त हैं ।

[१६८२-१६८४] भवनवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति किंचित् अधिक एक सागरोपम की और जघन्य दस हजार वर्ष की है । व्यन्तर देवों की उत्कृष्ट आयु-स्थिति एक पल्योपम की और जघन्य दस हजार वर्ष की है । ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की और जघन्य पल्योपमक का आठवाँ भाग है ।

[१६८५-१६९६] सौधर्म देवों की उत्कृष्ट आयु-स्थिति दो सागरोपम और जघन्य एक पल्योपम । ईशान देवों की उत्कृष्ट किंचित् अधिक सागरोपम और जघन्य किंचित् अधिक एक पल्योपम । सनत्कुमार की उत्कृष्ट सात सागरोपम और जघन्य दो सागरोपम । माहेन्द्रकुमार की उत्कृष्ट किंचित् अधिक सात सागरोपम, और जघन्य किंचित् अधिक दो सागरोपम । ब्रह्मलोक देवों की उत्कृष्ट दस सागरोपम और जघन्य सात सागरोपम । लान्तक देवों की उत्कृष्ट चौदह सागरोपम, जघन्य दस सागरोपम । महाशुक्र देवों की उत्कृष्ट सतरह सागरोपम और जघन्य चौदह सागरोपम । सहस्रार देवों की उत्कृष्ट अठारह सागरोपम, जघन्य सतरह सागरोपम । आनत देवों की उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम, जघन्य अठारह सागरोपम । प्राणत देवों की उत्कृष्ट बीस सागरोपम और जघन्य उन्नीस सागरोपम । आरण देवों की उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम, जघन्य बीस सागरोपम और अच्युत देवों की आयु-स्थिति उत्कृष्ट बाईस सागरोपम, जघन्य इक्कीस सागरोपम है ।

[१६९७-१७१५] प्रथम ग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति तेईस जघन्य बाईस सागरोपम । द्वितीय ग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट चौबीस जघन्य तेईस सागरोपम । तृतीय ग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट पच्चीस, जघन्य चौबीस सागरोपम । चतुर्थ ग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट छब्बीस, जघन्य पच्चीस सागरोपम । पंचम ग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट सत्ताईस, जघन्य छब्बीस सागरोपम । षष्ठ ग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट अट्ठाईस सागरोपम और जघन्य सत्ताईस सागरोपम । सप्तम ग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट उनतीस और जघन्य अट्ठाईस सागरोपम है । अष्टम ग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट तीस और जघन्य उनतीस सागरोपम है । और नवम ग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति



इकतीस सागरोपम और जघन्य तीस सागरोपम है ।

[१७०६-१७०७] विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों की उत्कृष्ट आयु-स्थिति तैंतीस सागरोपम और जघन्य इकतीस सागरोपम है । महाविमान सर्वार्थसिद्ध के देवों की अजघन्य-अनुत्कृष्ट आयु-स्थिति तैंतीस सागरोपम है ।

[१७०८-१७०९] देवों की पूर्व-कथित जो आयु-स्थिति है, वही उनकी जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति है । देव के शरीर को छोड़कर पुनः देव के शरीर में उत्पन्न होने में अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल का है ।

[१७१०] वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से उनके हजारों भेद होते हैं ।

[१७११-१७१२] इस प्रकार संसारी और सिद्ध जीवों का व्याख्यान किया गया । रूपी और अरूपी के भेद से दो प्रकार के अजीवों का भी व्याख्यान हो गया । जीव और अजीव के व्याख्यान को सुनकर और उसमें श्रद्धा करके ज्ञान एवं क्रिया आदि सभी नयों से अनुमत संयम में मुनि रमण करे ।

[१७१३-१७१४] तदनन्तर अनेक वर्षों तक श्रामण्य का पनल करके मुनि इस अनुक्रम से आत्मा की संलेखना-विकारों से क्षीणता करे । उत्कृष्ट संलेखना बारह वर्ष की होती है । मध्यम एक वर्ष की और जघन्य छह मास की है ।

[१७१५-१७१८] प्रथम चार वर्षों में दुग्ध आदि विकृतियों का त्याग करे, दूसरे चार वर्षों में विविध प्रकार का तप करे । फिर दो वर्षों तक एकान्तर तप करे । भोजन के दिन आचाम्ल करे । उसके बाद ग्यारहवें वर्ष में पहले छह महिनों तक कोई भी अतिविकृष्ट तप न करे । उसके बाद छह महिने तक विकृष्ट तप करे । इस पूरे वर्ष में परिमित आचाम्ल करे । बारहवें वर्ष में एक वर्ष तक निरन्तर आचाम्ल करके फिर मुनि पक्ष या एक मास का अनशन करे ।

[१७१९] कांदर्पी, आभियोगी, किल्बिपिकी, मोही और आसुरी भावनाएँ दुर्गति देने वाली हैं । ये मृत्यु के समय में संयम की विराधना करती है ।

[१७२०-१७२२] जो मरते समय मिथ्या-दर्शन में अनुरक्त हैं, निदान से युक्त हैं और हिंसक हैं, उन्हें बोधि बहुत दुर्लभ है । जो सम्यग्-दर्शन में अनुरक्त हैं, निदान से रहित हैं, शुक्ल लेश्या में अवगाढ-प्रविष्ट हैं, उन्हें बोधि सुलभ है । जो मरते समय मिथ्या-दर्शन में अनुरक्त हैं, निदान सहित हैं, कृष्ण लेश्या में अवगाढ हैं, उन्हें बोधि बहुत दुर्लभ है ।

[१७२३-१७२४] जो जिन-वचन में अनुरक्त हैं, जिनवचनों का भावपूर्वक आचरण करते हैं, वे निर्मल और रागादि से असंक्लिष्ट होकर परीतसंसारी होते हैं । जो जीव जिन-वचन से अपरिचित हैं, वे बेचारे अनेक बार बाल-मरण तथा अकाम-मरण से मरते रहेंगे ।

[१७२५] जो अनेक शास्त्रों के वेत्ता, आलोचना करने वालों को समाधि उत्पन्न करने वाले और गुणग्राही होते हैं, वे इसी कारण आलोचना सुनने में समर्थ होते हैं ।

[१७२६-१७२९] जो कन्दर्प, कौत्कुच्य करता है, तथा शील, स्वभाव, हास्य और विकथा से दूसरों को हँसाता है, वह कांदर्पी भावना का आचरण करता है । जो सुख, घृतादि रस और समृद्धि के लिए मंत्र, योग और भूति कर्म का प्रयोग करता है, वह अभियोगी भावना

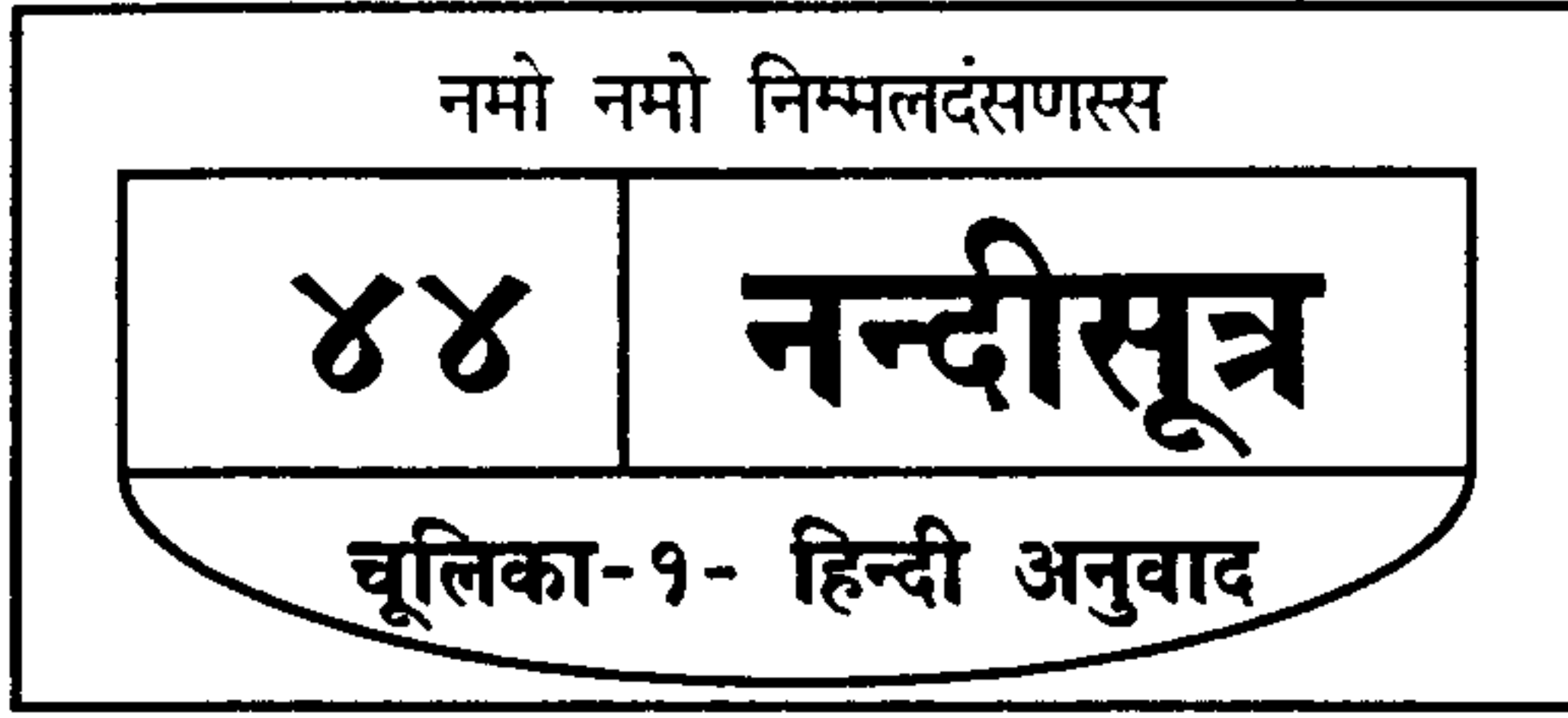
का आचरण करता है । जो ज्ञान की, केवल-ज्ञानी की, धर्माचार्य की, संघ की तथा साधुओं की निन्दा करता है, वह मायावी किल्बिषिकी भावना का आचरण करता है । जो निरन्तर क्रोध को बढ़ाता रहता है और निमित्त विद्या का प्रयोग करता है, वह आसुरी भावना का आचरण करता है ।

[१७३०] जो शस्त्र से, विषभक्षण से, अथवा अग्नि में जलकर तथा पानी में डूबकर आत्महत्या करता है, जो साध्वाचार से विरुद्ध भाण्ड रखता है, वह अनेक जन्म-मरणों का बन्धन करता है ।

[१७३१] इस प्रकार भव्य-जीवों को अभिप्रेत छत्तीस उत्तराध्ययनों को—उत्तम अध्यायों को प्रकट कर बुद्ध, ज्ञातवंशीय, भगवान् महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए । —ऐसा मैं कहता हूँ ।

४३

उत्तराध्ययन-मूलसूत्र-४-हिन्दी अनुवाद पूर्ण



[१] संसार के तथा जीवोत्पत्तिस्थानों के ज्ञाता, जगद्गुरु, जीवों के लिए नन्दप्रदाता, प्राणियों के नाथ, विश्वबन्धु, लोक में पितामह स्वरूप अरिहन्त भगवान् सदा जयवन्त हैं ।

[२] समग्र श्रुतज्ञान के मूलस्रोत, वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थकरों में अन्तिम, लोकों के गुरु महातमा महावीर सदा जयवन्त हैं ।

[३] विश्व में ज्ञान का उद्योत करने वाले, राग-द्वेष रूप शत्रुओं के विजेता, देवों-दानवों द्वारा वन्दनीय, कर्म-रज से विमुक्त भगवान् महावीर का सदैव भद्र हो ।

[४] गुणरूपी भवनों से व्याप्त, श्रुत रत्नों से पूरित, विशुद्ध सम्यक्त्व रूप वीथियों से युक्त, अतिचार रहित चारित्र के परकोटे से सुरक्षित, संघ-नगर ! तुम्हारा कल्याण हो ।

[५] संयम जिसकी नाभि है । तप आरक हैं, तथा सम्यक्त्व जिस की परिधि है; ऐसे संघचक्र को नमस्कार हो, जो अतुलनीय है । उस संघ चक्र की सदा जय हो ।

[६] अठारह सहस्र शीलांग रूप ऊंची पताका से युक्त, तप और संयम रूप अश्व जिसमें जुते हुए हैं, स्वाध्याय का मंगलमय मधुर घोष जिससे निकल रहा है, ऐसे भगवान् संघ-स्थ का कल्याण हो ।

[७-८] जो संघ रूपी पद्म, कर्म-रज तथा जल-राशि से ऊपर उठा हुआ है—जिसका धार श्रुतरत्नमय दीर्घ नाल है, पाँच महाव्रत जिसकी सुदृढ़ कर्णिकाएँ हैं, उत्तरगुण जिसका पराग है, जो भावुक जनरूपी मधुकरों से घिरा हुआ है, तीर्थकर रूप सूर्य के केवलज्ञान रूप तेज से विकसित है, श्रमणगण रूप हजार पाँखुड़ी वाले उस संघ-पद्म का सदा कल्याण हो ।

[९] हे तप प्रधान ! संयम रूप मृगचिह्नमय ! अक्रियावाद रूप राहु के मुख से सदैव दुर्द्धर्ष ! निरतिचार स्यक्त्व चाँदनी से युक्त ! हे संघचन्द्र ! प सदा जय प्राप्त करें ।

[१०] एकान्तवादी, दुर्नयी परवादी रूप ग्रहाभा को निस्तेज करनेवाले, तप तेज से सदैव देदीप्यमान, सम्यग्ज्ञान से उजागर, उपशम-प्रधान संघ रूप सूर्य का कल्याण हो ।

[११] वृद्धिगत आत्मिक परिणाम रूप बढ़ते हुए जल की वेला से परिव्याप्त है, जिसमें स्वाध्याय और शुभ योग रूप मगरमच्छ हैं, जो कर्मविदारण में महाशक्तिशाली है, निश्चल है तथा समस्त ऐश्वर्य से स्पन्न एवं विस्तृत है, ऐसे संघ समुद्र का भद्र हो ।

[१२-१७] संघमेरु की भूपीठिका सम्यग्दर्शन रूप श्रेष्ठ वज्रमयी है । सम्यक्-दर्शन सुदृढ़ आधार-शिला है । वह शंकादि दूषण रूप विवरों से रहित है । विशुद्ध अध्यवसायों से चिरंतन है । तत्त्व अभिरुचि से ठोस है, जीव आदि नव तत्त्वों में निमग्न होने के कारण गहरा है । उसमें उत्तर गुण रूप रत्न और मूल गुण स्वर्ण मेखला है । उससे संघ-मेरु अलंकृत है । इन्द्रिय दमन रूप नियम ही उज्ज्वल स्वर्णमय शिलातल हैं । उदात्त चित्त हो उन्नत कूट हैं



एवं शील रूपी सौरभ से परिव्याप्त संतोपरूपी मनोहर नन्दनवन है । संघ-सुमेरु में जीव-दया ही सुन्दर कन्दराएँ हैं । वे कन्दराएँ कर्मशत्रुओं को पराजित करने वाले तेजस्वी मुनिगण रूपी सिंहों से आकीर्ण हैं और कुबुद्धि के निरास से सैंकड़ों हेतु रूप धातुओं से संघ रूप सुमेरु भास्वर है तथा व्याख्यान-शाला रूप कन्दराएँ देदीप्यमान हो रही हैं । संघ-मेरु में संवर रूप जल के सतत प्रवहमान झरने ही शोभायमान हार हैं । तथा संघ-सुमेरु के श्रावकजन रूपी मयूरों के द्वारा आनन्द-विभोर मधुर ध्वनि से कंदरा रूप प्रवचनस्थल मुखरित हैं । विनय गुण से विनम्र उत्तम मुनिजन रूप विद्युत् की चमक से संघ-मेरु के शिखर सुशोभित हो रहे हैं । गुणों से सम्पन्न मुनिवर ही कल्पवृक्ष हैं, जो धर्म रूप फलों और ऋद्धि-रूप फूलों से युक्त हैं । ऐसे मुनिवरों से गच्छ-रूप वन परिव्याप्त हैं । मेरु पर्वत समान संघ की सम्यक्ज्ञान रूप श्रेष्ठ रत्न हो देदीप्यमान, मनोज्ञ, विमल वैडूर्यमयी चूलिका है । उस संघ रूप महामेरु गिरि के माहात्म्य को मैं विनयपूर्वक नम्रता के साथ वन्दना करता हूँ ।

[१८-१९] ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शांति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्द्धमान को वन्दन करता हूँ ।

[२०-२१] श्रमण भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर हुए हैं, इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डितपुत्र, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास ।

[२२] निर्वाण पथ का प्रदर्शक, सर्व भावों का प्ररूपक, कुदर्शनों के अहंकार का मर्दक जिनेन्द्र भगवान् का शासन सदा जयवन्त है ।

[२३] भगवान् महावीर के पट्टधर शिष्य अग्निवेश्यायन गोत्रीय श्रीसुधर्मास्वामी काश्यपगोत्रीय श्रीजम्बूस्वामी, कात्यायनगोत्रीय श्रीप्रभव स्वामी तथा वत्सगोत्रीय श्री शय्यम्भ-वाचार्य को मैं वन्दना करता हूँ ।

[२४] तुंगिक गोत्रीय गोत्रीय यशोभद्र, माढरगोत्रीय भद्रबाहु तथा गौतम गोत्रीय स्थूलभद्र को वन्दन करता हूँ ।

[२५] एलापत्य गोत्रीय आचार्य महागिरि और सुहस्ती तथा कौशिक-गोत्र वाले बहुल मुनि के समान वय वाले बलिस्सह को भी वन्दन करता हूँ ।

[२६] हारीत गोत्रीय स्वाति एवं श्यामार्य को तथा कौशिक गोत्रीय आर्य जीतधर शाण्डिल्य को वन्दन करता हूँ ।

[२७] तीनों दिशाओं में, समुद्र पर्यन्त, प्रसिद्ध कीर्तिवाले, विविध द्वीप समुद्रों में प्रामाणिकता प्राप्त, अक्षुब्ध समुद्र समान गंभीर आर्य समुद्र को वन्दन करता हूँ ।

[२८] अध्ययन-अध्यापन में रत, क्रिया युक्त, ध्याता, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि का उद्योत करने वाले तथा श्रुत-रूप सागर के पारगामी धीर आर्य मंगु को वन्दन करता हूँ ।

[२९] आर्य धर्म, भद्रगुप्त, तप नियमादि गुणों से सम्पन्न वज्रवत् सुदृढ आर्य वज्र को वन्दन करता हूँ ।

[३०] जिन्होंने स्वयं के एवं अन्य सभी संयमियों के चारित्र सर्वस्व की रक्षा की तथा जिन्होंने रत्नों की पेटी के समान अनुयोग की रक्षा की, उन क्षपण-तपस्वीराज आर्यरक्षित को वन्दन करता हूँ ।

[३१] ज्ञान, दर्शन, तप और विनयादि गुणों में सर्वदा उद्यत तथा रग-द्वेष विहीन प्रसन्नमना, अनेक गुणों से सम्पन्न आर्य नन्दिल क्षपण को सिर नमाकर वन्दन करता हूँ ।

[३२] व्याकरण निपुण, कर्मप्रकृति की प्ररूपणा करने में प्रधान, ऐसे आर्य नन्दिलक्षपण के पट्टधर शिष्य आर्य नागहस्ती का वाचक वंश मूर्तिमान् यशोवंश की तरह अभिवृद्धि को प्राप्त हो ।

[३३] उत्तम जाति के अंजन धातु के सदृश प्रभावोत्पादक, परिपक्व द्राक्षा और नील कमल के समान कांतियुक्त आर्य रेवतिनक्षत्र का वाचक वंश वृद्धि प्राप्त करे ।

[३४] जो अचलपुर में दीक्षित हुए और कालिक श्रुत की व्याख्या में से दक्ष तथा धीर थे, उत्तम वाचक पद को प्राप्त ऐसे ब्रह्मद्वीपिक शाखा के आर्य सिंह को वन्दन करता हूँ ।

[३५] जिनका यह अनुयोग आज भी दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र में प्रचलित है, तथा अनेकानेक नगरों में जिनका सुयश फैला हुआ है, उन स्कन्दिलाचार्य को मैं वन्दन करता हूँ ।

[३६] हिमवंत के सदृश विस्तृत क्षेत्र में विचरण करनेवाले महान् विक्रमशाली, अनन्त धैर्यवान् और पराक्रमी, अनन्त स्वाध्याय के धारक आर्य हिमवान् को मस्तक नमाकर वन्दन करता हूँ ।

[३७] कालिक सूत्र सम्बन्धी अनुयोग और उत्पाद आदि पूर्वों के धारक, ऐसे हिमवन्त क्षमाश्रमण को और नागार्जुनाचार्य को वन्दन करता हूँ ।

[३८] मृदु, मार्दव, आर्जव आदि भावों से सम्पन्न, क्रम से वाचक पद को प्राप्त तथा ओघश्रुत का समाचरण करने वाले नागार्जुन वाचक को वन्दन करता हूँ ।

[३९-४१] तपे हुए स्वर्ण, चम्पक पुष्प या खिले हुए उत्तम जातीय कमल के गर्भ तुल्य गौर वर्ण युक्त, भव्यों के हृदय-वल्लभ, जन-मानस में करुणा भाव उत्पन्न करने में निपुण, धैर्यगुण सम्पन्न, दक्षिणार्द्ध भरत में युग प्रधान, बहुविध स्वाध्याय के परिज्ञाता, संयमी पुरुषों को यथा योग्य स्वाध्याय में नियुक्तिकर्ता तथा नागेन्द्र कुल की परम्परा की अभिवृद्धि करने वाले, सभी प्राणियों को उपदेश देने में निपुण और भव-भीति के विनाशक नागार्जुन ऋषि के शिष्य भूतदिन्न को मैं वन्दन करता हूँ ।

[४२] नित्यानित्य रूप से द्रव्यों को समीचीन रूप से जानने वाले, सम्यक् प्रकार से समझे हुए सूत्र ओर अर्थ के धारक तथा सर्वज्ञ-प्ररूपित सद्भावों का यथाविधि प्रतिपादन करने वाले लोहित्याचार्य को नमस्कार करता हूँ ।

[४३] शास्त्रों के अर्थ और महार्थ की खान के सदृश सुसाधुओं को आगमों की वाचना देते समय संतो, व समाधि का अनुभव करने वाले, प्रकृति से मधुर, श्री दूष्यगणी को सम्मानपूर्वक वन्दन करता हूँ ।

[४४] प्रशस्त लक्षणों से सम्पन्न, सुकुमार, सुन्दर तलवे वाले और सैकड़ों प्रातच्छिकों द्वारा नमस्कृत, प्रवचनकार श्री दूष्यगणि के पूज्य चरणों को प्रणाम करता हूँ ।

[४५] इस अनुयोगधर स्थविरों और आचार्यों से अतिरिक्त अन्य जो भी कालिक सूत्रों के ज्ञाता और अनुयोगधर धीर आचार्य भगवन्त हुए हैं, उन सभी को प्रणाम करके (मैं देव वाचक) ज्ञान की प्ररूपणा करूँगा ।

[४६] शेलघन-कुटक, चालनी, परिपूर्णक, हंस, महिष, मेष, मशक, जौंक, बिल्ली,

जाहक, गौ, भेरी और आभीरी इनके समान श्रोताजन होते हैं ।

[४७] वह श्रोतासमूह तीन प्रकार की है । विज्ञपरिषद् अविज्ञपरिषद् और दुर्विदग्ध परिषद् । विज्ञ-परिषद् इस प्रकार है—

[४८] जैसे उत्तम जाति के राजहंस पानी को छोड़कर दूध का पान करते हैं, वैसे ही गुणसम्पन्न श्रोता दोषों को छोड़कर गुणों को ग्रहण करते हैं । हे शिष्य ! इसे ही ज्ञायिका परिषद् समझना ।

[४९] अज्ञायिका परिषद् इस प्रकार है—

[५०] जो श्रोता मृग, शेर और कुक्कुट के अबोध शिशुओं के सदृश स्वभाव से मधुर, भद्रहृदय होते हैं, उन्हें जैसी शिक्षा दी जाए वे उसे ग्रहण कर लेते हैं । वे असंस्कृत होते हैं । रत्नों को चाहे जैसा बनाया जा सकता है । ऐसे ही अनभिज्ञ श्रोताओं में यथेष्ट संस्कार डाले जा सकते हैं । हे शिष्य ! ऐसे अबोध जनों के समूह को अज्ञायिका परिषद् जानो ।

[५१] दुर्विदग्धा परिषद् का लक्षण—

[५२] अल्पज्ञ पंडित ज्ञान में अपूर्ण होता है, किन्तु अपमान के भय से किसी विद्वान् से कुछ पूछता नहीं । फिर भी अपनी प्रशंसा सुनकर मिथ्याभिमान से वस्ति की तरह फूला हुआ रहता है । ऐसे लोगो की सभा को, हे शिष्य ! दुर्विदग्धा सभा समझना ।

[५३] ज्ञान पाँच प्रकार का है । जैसे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान ।

[५४] ज्ञान पांच प्रकार के ज्ञान के संक्षिप्त में दो प्रकार है, प्रत्यक्ष और परोक्ष ।

[५५] —प्रत्यक्षज्ञान के दो भेद हैं, यथा—इन्द्रिय-प्रत्यक्ष और नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष ।

[५६] —इन्द्रियप्रत्यक्ष पाँच प्रकार का है । यथा—श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष, चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष है, घ्राणेन्द्रिय प्रत्यक्ष, जिह्वेन्द्रिय प्रत्यक्ष और स्पर्शनिन्द्रिय प्रत्यक्ष ।

[५७] नोइन्द्रियप्रत्यक्षज्ञान तीन प्रकार का है । अवधिज्ञान प्रत्यक्ष, मनःपर्यवज्ञानप्रत्यक्ष, केवलज्ञानप्रत्यक्ष ।

[५८] अवधिज्ञान प्रत्यक्ष के दो भेद हैं—भवप्रत्ययिक, क्षायोपशमिक ।

[५९] भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान किन्हे होता है ? वह देवों एवं नारकों को होता है ।

[६०] क्षायोपशमिक अवधिज्ञान मनुष्यों को तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों को होता है । भगवन् ! क्षायोपशमिक अवधिज्ञान की उत्पत्ति का हेतु क्या है ? —जो कर्म अवधिज्ञान में रुकावट उत्पन्न करने वाले हैं, उनमें से उदयगत का क्षय होने से तथा अनुदित कर्मों का उपशम होने से जो उत्पन्न होता है ।

[६१] गुण-सम्पन्न मुनि को जो क्षायोपशमिक अवधिज्ञान समुत्पन्न होता है, वह संक्षेप में छह प्रकार का है । यथा—आनुगामिक, अनानुगामिक, वर्द्धमान, हीयमान, प्रतिपातिक और अप्रतिपातिक—

[६२] भगवन् ! वह आनुगामिक अवधिज्ञान कितने प्रकार का है ? दो प्रकार का है । अन्तगत, मध्यगत । अन्तगत अवधिज्ञान तीन प्रकार का है—पुरतःअन्तगत, मार्गतः अन्तगत, पार्श्वतःअन्तगत—

आगे से अन्तगत अवधिज्ञान कैसा है । जैसे कोई व्यक्ति दीपिका, घासफूस की



पूलिका अथवा जलते हुए काष्ठ, मणि, प्रदीप या किसी पात्र में प्रज्वलित अग्नि रखकर हाथ अथवा दण्ड से उसे आगे करके क्रमशः आगे चलता है और मार्ग में स्थित वस्तुओं को देखता जाता है । इसी प्रकार पुरतःअन्तगत अवधिज्ञान भी आगे के प्रदेश में प्रकाश करता हुआ साथ-साथ चलता है । मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान किस प्रकार का है ? जैसे कोई व्यक्ति उल्का, तृणपूलिका, अग्रभाग से जलते हुए काष्ठ यावत् दण्ड द्वारा पीछे करके उक्त वस्तुओं के प्रकाश से पीछे-स्थित पदार्थों को देखता हुआ चलता है, उसी प्रकार जो ज्ञान पीछे के प्रदेश को प्रकाशित करता है वह मार्गतः अन्तगत अवधिज्ञान है । पार्श्व से अन्तगत अवधिज्ञान किसे कहते हैं ? जैसे कोई पुरुष दीपिका, चटुली, अग्रभाग से जलते हुए काष्ठ को, मणि, प्रदीप या अग्नि को पार्श्वभाग से परिकर्षण करते हुए चलता है, इसी प्रकार यह अवधिज्ञान पार्श्ववर्ती पदार्थों का ज्ञान कराता हुआ आत्मा के साथ-साथ चलता है । यह अन्तगत अवधिज्ञान का कथन हुआ ।

भगवन् ! मध्यगत अवधिज्ञान कौन सा है ? भद्र ! जैसे कोई पुरुष उल्का, तृणों की पूलिका, यावत् शरावादि में रखी हुई अग्नि को मस्तक पर रखकर चलता है । इसी प्रकार चारों ओर के पदार्थों का ज्ञान कराते हुए जो ज्ञान ज्ञाता के साथ चलता है वह मध्यगत अवधिज्ञान है ।

अन्तगत और मध्यगत अवधिज्ञान में क्या अन्तर है ? पुरतः अवधिज्ञान से ज्ञाता सामने संख्यात अथवा असंख्यात योजनों में स्थित रूपी द्रव्यों को जानता और देखता है । मार्ग से—पीछे से अन्तगत अवधिज्ञान द्वारा पीछे से तथा पार्श्वतः अन्तगत अवधिज्ञान से पार्श्व में स्थित द्रव्यों को संख्यात अथवा असंख्यात योजनों तक जानता व से देखता है । यह आनुगामिक अवधिज्ञान हुआ ।

[६३] भगवन् ! अनानुगामिक अवधिज्ञान किस प्रकार का है ? जैसे कोई भी व्यक्ति एक बहुत बड़ा अग्नि का स्थान बनाकर उसमें अग्नि को प्रज्वलित करके उस अग्नि के चारों ओर सभी दिशाविदिशाओं में घूमता है तथा उस ज्योति से प्रकाशित क्षेत्र को ही देखता है, अन्यत्र न जानता है और न देखता है । इसी प्रकार अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस क्षेत्र में उत्पन्न होता है, उसी क्षेत्र में स्थित होकर संख्यात एवं असंख्यात योजन तक, स्वावगाढ क्षेत्र से सम्बन्धित तथा असम्बन्धित द्रव्यों को जानता व देखता है । अन्यत्र जाने पर नहीं देखता ।

[६४] —गुरुदेव ! वर्द्धमान अवधिज्ञान किस प्रकार का है ? अध्यवसायस्थानों या विचारों के विशुद्ध एवं प्रशस्त होने पर और चारित्र की वृद्धि होने पर तथा विशुद्धमान चारित्र के द्वारा मल-कलङ्क से रहित होने पर आत्मा का ज्ञान दिशाओं एवं विदिशाओं में चारों ओर बढ़ता है उसे वर्द्धमान अवधिज्ञान कहते हैं ।

[६५] तीन समय के आहारक सूक्ष्म-निगोद के जीव की जितनी जघन्य अवगाहना होती है—उतने परिमाण में जघन्य अवधिज्ञान का क्षेत्र है ।

[६६] समस्त सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त अग्रिकाय के सर्वाधिक जीव सर्वदिशाओं में निरन्तर जितना क्षेत्र परिपूर्ण करें, उतना ही क्षेत्र परमावधिज्ञान का निर्दिष्ट किया गया है ।

[६७] क्षेत्र और काल के आश्रित-अवधिज्ञानी यदि क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें

या-संख्यातवें भाग को जानता है तो काल से भी आवलिका के असंख्यातवें या संख्यातवें भाग को जानता है । यदि अंगुलप्रमाण क्षेत्र देखे तो काल से आवलिका से कुछ कम देखे और यदि सम्पूर्ण आवलिका प्रमाण काल देखे तो क्षेत्र से अंगुलपृथक्त्व प्रमाण देखे ।

[६८]—यदि क्षेत्र से एक हस्तपर्यन्त देखे तो काल से एक मुहूर्त्त से कुछ न्यून देखे और काल से दिन से कुछ कम देखे तो क्षेत्र से एक गव्यूति परिमाण देखता है । यदि ७त्र से योजन परिमाण देखता है तो काल से दिवस पृथक्त्व देखता है । यदि काल से किञ्चित् न्यून पक्ष देखे तो क्षेत्र से पच्चीस योजन पर्यन्त देखता है ।

[६९] यदि क्षेत्र से सम्पूर्ण भरतक्षेत्र को देखे तो काल से अर्धमास परिमित भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान, तीनों कालों को जाने । यदि क्षेत्र से जम्बूद्वीप पर्यन्त देखता है तो काल से एक मास से भी अधिक देखता है । यदि क्षेत्र से मनुष्यलोक परिमाण क्षेत्र देखे तो काल से एक वर्ष पर्यन्त भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल देखता है । यदि क्षेत्र से रुचक क्षेत्र पर्यन्त देखता है तो काल से पृथक्त्व भूत और भविष्यत् काल को जानता है ।

[७०] अवधिज्ञानी यदि काल से संख्यात काल को जाने तो क्षेत्र से भी संख्यात द्वीप-समुद्र पर्यन्त जानता है और असंख्यात काल जानने पर क्षेत्र से द्वीपों एवं समुद्रों की भजना जानना ।

[७१] काल की वृद्धि होने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चारों की अवश्य वृद्धि होती है । क्षेत्र की वृद्धि होने पर काल की भजना है । द्रव्य और पर्याय की वृद्धि होने पर क्षेत्र और काल भजनीय होते हैं ।

[७२] काल सूक्ष्म होता है किन्तु क्षेत्र उससे भी सूक्ष्म होता है, क्योंकि एक अङ्गुल मात्र श्रेणी रूप क्षेत्र में आकाश के प्रदेश असंख्यात अवसर्पिणियों के समय जितने होते हैं ।

[७३] यह वर्द्धमानक अवधिज्ञान का वर्णन है ।

[७४] भगवन् ! हीयमान अवधिज्ञान किस प्रकार का है ? अप्रशस्त-विचारों में वर्तने वाले अविरति सम्यक्दृष्टि जीव तथा अप्रशस्त अध्यवसाय में वर्तमान देशविरति और सर्वविरति-चारित्र वाला श्रावक या साधु जब अशुभ विचारों से संक्लेश को प्राप्त होता है तथा उसके चारित्र में संक्लेश होता है तब सब ओर से तथा सब प्रकार से अवधिज्ञान का पूर्व अवस्था से हास होता है । इस प्रकार हानि को प्राप्त अवधिज्ञान हीयमान अवधिज्ञान हैं ।

[७६] अप्रतिपाति अवधिज्ञान क्या है ? जिस ज्ञान से ज्ञाता अलोक के एक भी आकाश-प्रदेश को जानता है—वह अप्रतिपाति अवधिज्ञान है ।

[७७] अवधिज्ञान संक्षिप्त में चार प्रकार का है । यथा-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से—अवधिज्ञानी जघन्यतः अनन्त रूपी द्रव्यों को और है । उत्कृष्ट समस्त रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है । क्षेत्र से—अवधिज्ञानी जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र क्षेत्र को और उत्कृष्ट अलोक में लोकपरिमित असंख्यात खण्डों को जानता-देखता है । काल से—अवधिज्ञानी जघन्य—एक आवलिका के असंख्यातवें भाग काल को और उत्कृष्ट—अतीत और अनागत—असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी परिमाण काल को जानता व देखता है । भाव से—अवधिज्ञानी जघन्यतः और उत्कृष्ट भी अनन्त भावों को जानता-देखता है । किन्तु सर्व भावों के अनन्तवें भाग को ही जानता-देखता है ।

[७८]—यह अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक और गुणप्रत्ययिक दो प्रकार से है । और उसके भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप से बहुत-से विकल्प हैं ।

[७९] नारक, देव एवं तीर्थकर अवधिज्ञान से युक्त ही होते हैं और वे सब दिशाओं तथा विदिशाओं में देखते हैं । मनुष्य एवं तिर्यच ही देश से देखते हैं ।

[८०] यहाँ प्रत्यक्ष अवधिज्ञान का वर्णन सम्पूर्ण ।

[८१] भंते ! मनःपर्यवज्ञान का स्वरूप क्या है ? यह ज्ञान मनुष्यों को उत्पन्न होता है या अमनुष्यों को ? हे गौतम ! मनःपर्यवज्ञान मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है, अमनुष्यों को नहीं । यदि मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या समूर्छिम को या गर्भव्युत्क्रान्तिक को ? गौतम ! वह गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है । यदि गर्भज मनुष्यों को मनःपर्यवज्ञान होता है तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों की होता है, अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है अथवा अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्यों को होता है ? गौतम ! कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही होता है । यदि कर्मभूमिज मनुष्यों को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है तो क्या संख्यात वर्ष की अथवा असंख्यात वर्ष की आयु प्राप्त कर्मभूमिज मनुष्यों को होता है ? गौतम ! संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है । यदि संख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है तो क्या पर्याप्त० को या अपर्याप्तसंख्यात वर्ष की आयुवाले को होता है ? गौतम ! पर्याप्त संख्यात वर्ष को आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही होता है ।

यदि मनःपर्यवज्ञान पर्याप्त, संख्यात वर्ष की आयु वाले, कर्मभूमिज, गर्भज, मनुष्यों को होता है तो क्या वह सम्यग्दृष्टि० या मिथ्यादृष्टि० अथवा मिश्रदृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है ? सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही होता है । प्रश्न—यदि सम्यग्दृष्टि पर्याप्त, संख्यातवर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है, तो क्या संयत० को होता है, अथवा असंयत० को या संयतासंयत—सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को होता है ? गौतम ! संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही उत्पन्न होता है । यदि संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को उत्पन्न होता है तो क्या प्रमत्त संयत० को होता है या अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यातवर्ष-आयुष्क को ? गौतम ! अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यातवर्ष की आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही होता है । —यदि अप्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले, कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है तो क्या ऋद्धिप्राप्त० को होता है अथवा लब्धिरहित अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयु वाले को होता है ? गौतम ! ऋद्धिप्राप्त अप्रमाद सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्यात की वर्ष आयुवाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों को ही मनःपर्यवज्ञान की प्राप्ति होती है ।

[८२] मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार से उत्पन्न होता है । ऋजुमति, विपुलमति । यह संक्षेप से चार प्रकार से है । द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से । द्रव्य से—ऋजुमति अनन्त अनन्तप्रदेशिक स्कन्धों को जानता व देखता है, और विपुलमति उन्हीं स्कन्धों को कुछ अधिक



विपुल, विशुद्ध और निर्मल रूप से जानता व देखता है । क्षेत्र से—ऋजुमति जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र क्षेत्र को तथा उत्कर्ष से नीचे, इस रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरितन-अधस्तन क्षुल्लक प्रतर को और ऊँचे ज्योतिषचक्र के उपरितल को और तिरछे लोक में मनुष्य क्षेत्र के अन्दर अढाई द्वीप समुद्र पर्यत, पन्द्रह कर्मभूमियों, तीस अकर्मभूमियों और छप्पन अन्तरद्वीपों में वर्तमान संज्ञिपंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मनोगत भावों को जानता व देखता है । और उन्हीं भावों को विपुलमति अढाई अंगुल अधिक विपुल, विशुद्ध और तिमिररहित क्षेत्र को जानता व देखता है । काल से—ऋजुमति जघन्य और उत्कृष्ट भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग भूत और भविष्यत् काल को जानता व देखता है । उसी काल को विपुलमति उससे कुछ अधिक, विपुल, विशुद्ध और वितिमिर जानता व देखता है । भाव से—ऋजुमति अनन्त भावों को जानता व देखता है, परन्तु सब भावों के अनन्तवें भाग को ही जानता व देखता है । उन्हीं भावों को विपुलमति कुछ अधिक, विपुल, विशुद्ध और निर्मल रूप से जानता व देखता है ।

[८३] मनःपर्यवज्ञान मनुष्य क्षेत्र में रहे हुए प्राणियों के मन द्वारा परिचिन्तित अर्थ को प्रगट करनेवाला है । क्षान्ति, संयम आदि गुण इस ज्ञान की उत्पत्ति के कारण हैं और यह चारित्रसम्पन्न अप्रमत्तसंयत को ही होता है ।

[८४] यह हुआ मनःपर्यवज्ञान का कथन ।

[८५] भगवन् ! केवलज्ञान का स्वरूप क्या है ? गौतम ! केवलज्ञान दो प्रकार का है, भवस्थ-केवलज्ञान और सिद्ध-केवलज्ञान । भवस्थ-केवलज्ञान दो प्रकार का है । यथा—सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान एवं अयोगिभवस्थ केवलज्ञान । गौतम ! सयोगिभवस्थ-केवलज्ञान भी दो प्रकार का है, प्रथमसमय-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान । इसे अन्य दो प्रकार से भी बताया है । चरमसमय-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान और अचरम समय-सयोगिभवस्थ केवलज्ञान—अयोगिभवस्थ केवलज्ञान दो प्रकार का है । उसे सयोगिभवस्थ के समान जान लेना ।

[८६] सिद्ध केवलज्ञान कितने प्रकार का है ? दो प्रकार का है, अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान और परंपरसिद्ध केवलज्ञान ।

[८७] अनन्तरसिद्ध केवलज्ञान १५ प्रकार से वर्णित है । यथा—तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध, तीर्थकरसिद्ध, अतीर्थकरसिद्ध, स्वयंबुद्ध सिद्ध, प्रत्येकबुद्धसिद्ध, बुद्धबोधितसिद्ध, स्त्रीलिंगसिद्ध, पुरुषलिंगसिद्ध, नपुंसकलिंगसिद्ध, स्वलिंगसिद्ध, अन्यलिंगसिद्ध, गृहिलिंगसिद्ध, एकसिद्ध और अनेकसिद्ध ।

[८८] वह परम्परसिद्ध-केवलज्ञान कितने प्रकार का है ? अनेक प्रकार से है । यथा—अप्रथमसमयसिद्ध, द्विसमयसिद्ध, त्रिसमयसिद्ध, चतुःसमयसिद्ध, यावत् दससमयसिद्ध, संख्यातसमयसिद्ध, असंख्यातसमयसिद्ध और अनन्तसमयसिद्ध । इस प्रकार परम्परसिद्ध केवलज्ञान का वर्णन है ।

[८९] संक्षेप में वह चार प्रकार का है—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । केवलज्ञानी द्रव्य से सर्वद्रव्यों को, क्षेत्र से सर्व लोकालोक क्षेत्र को, काल से भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालों को और भाव से सर्व द्रव्यों के सर्व भावों—पर्यायों को जानता व देखता है ।

[९०] केवलज्ञान सम्पूर्ण द्रव्यों को, उत्पाद आदि परिणामों को तथा भाव-सत्ता को

अथवा वर्ण, गन्ध, रस आदि को जानने का कारण है । वह अनन्त, शाश्वत तथा अप्रतिपाति है । ऐसा यह केवलज्ञान एक प्रकार का ही है ।

[११] केवलज्ञान के द्वारा सब पदार्थों को जानकर उनमें जो पदार्थ वर्णन करने योग्य होते हैं, उन्हें तीर्थकर देव अपने प्रवचनों में प्रतिपादन करते हैं । वह उनका वचनयोग होता है अर्थात् वह अप्रदान द्रव्यश्रुत है ।

[१२] केवलज्ञान का विषय सम्पूर्ण हुआ और प्रत्यक्ष भी समाप्त हुआ ।

[१३] वह परोक्षज्ञान कितने प्रकार का है ? दो प्रकार का । यथा—आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान । जहाँ आभिनिबोधिक ज्ञान है वहाँ पर श्रुतज्ञान भी होता है । जहाँ श्रुतज्ञान है वहाँ आभिनिबोधिक ज्ञान भी होता है । ये दोनों ही अन्योन्य अनुगत हैं । जो सन्मुख आए हुए पदार्थों को प्रमाणपूर्वक अभिगत करता है वह आभिनिबोधिक ज्ञान है, किन्तु जो सुना जाता है वह श्रुतज्ञान है । श्रुतज्ञान मतिपूर्वक ही होता है किन्तु मतिज्ञान श्रुत-पूर्वक नहीं होता ।

[१४] सामान्य रूप से मति, मतिज्ञान और मति-अज्ञान दोनों प्रकार का है । परन्तु विशेष रूप से वही मति सम्यक्दृष्टि का मतिज्ञान है और मिथ्यादृष्टि की मति, मति-अज्ञान होता है । इसी प्रकार विशेषता रहित श्रुत, श्रुतज्ञान और श्रुत-अज्ञान उभय रूप है । विशेषता प्राप्त वही सम्यक्दृष्टि का श्रुत, श्रुतज्ञान और मिथ्यादृष्टि का श्रुत-अज्ञान होता है ।

[१५] भगवन् ! वह आभिनिबोधिक ज्ञान किस प्रकार का है ? दो प्रकार का, श्रुतनिश्चित और अश्रुतनिश्चित । अश्रुतनिश्चित चार प्रकार का है । यथा—

[१६] औत्पत्तिकी:—सहसा जिसकी उत्पत्ति हो, वैनयिकी:—विनय से उत्पन्न, कर्मजा, अभ्यास से उत्पन्न, पारिणामिकी—उम्र के परिपाक से उत्पन्न । ये चार प्रकार की बुद्धियाँ शास्त्रकारों ने वर्णित की हैं ।

[१७] जिस बुद्धि के द्वारा पहले बिना देखे और बिना सुने ही पदार्थों के विशुद्ध अर्थ को तत्काल ही ग्रहण कर लिया जाता है और जिससे अव्याहत-फल का योग होता है, वह औत्पत्तिकी बुद्धि है ।

[१८-१००] भरत, शिला, कुर्कुट, तिल, बाल, हस्ति, अगड, वनखंड, पायस, अतिम, पत्र, खाडहिल, पंचपियर, प्रणितवृक्ष, क्षुल्लक, पट, काकीडा, कौआ, उच्चारपरिक्षा, हाथी, भांड, गोलक, स्तम्भ, खुड्डा, मार्ग, स्त्री, पति, पुत्र, मधुसिक्थ, मुद्रिका, अंक, सुवर्णमहोर, भिक्षुचेटक, निधान, शिक्षा, अर्थशास्त्र, इच्छामह, लाख-यह सर्व औत्पात्तिकी बुद्धि के दृष्टान्त हैं । (कथाविस्तार वृत्तिग्रन्थो से जानना ।)

[१०१] विनय से पैदा हुई बुद्धि कार्य भार वहन करने में समर्थ होती है । धर्म, अर्थ, काम का प्रतिपादन करने वाले सूत्र तथा अर्थ का प्रमाण-सार ग्रहण करनेवाली है तथा वह विनय से उत्पन्न बुद्धि इस लोक और परलोक में फल देनेवाली होती है ।

[१०२-१०३] निमित्त, अर्थशास्त्र, लेख, गणित, कूप, अश्व, गर्दभ, लक्षण, ग्रंथि, अगड, रथिक, गणिका, शीताशाटी, नीब्रोदक, बैलों की चोरी, अश्व का मरण, वृक्ष से गिरना । ये वैनयिकी बुद्धि के उदाहरण हैं ।

[१०४]—उपयोग से जिसका सार देखा जाता है, अभ्यास और विचार से जो विस्तृत

बनती है और जिससे प्रशंसा प्राप्त होती है, वह कर्मजा बुद्धि है ।

[१०५] सुवर्णकार, किसान, जुलाहा, दर्वीकार, मोती, घी, नट, दर्जी, बढई, हलवाई, घट तथा चित्रकार । इन सभी के उदाहरण कर्म से उत्पन्न बुद्धि के हैं ।

[१०६] —अनुमान, हेतु और दटान्त से कार्य को सिद्ध करने वाली, आयु के परिपक्व होने से पुष्ट, लोकहितकारी तथा मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाली बुद्धि पारिणामिकी है ।

[१०७-१०९] अभयकुमार, सेठ, कुमार, देवी, उदितोदय, साधु, नन्दिघोष, धनदत्त, श्रावक, अमात्य, क्षपक, अमात्यपुत्र, चाणक्य, स्थूलभद्र, नासिक का सुन्दरीनन्द, वज्रस्वामी, चरणाहत, आंबला, मणि, सर्प, गेंडा, स्तूपभेदन—यह सब पारिणामिक बुद्धि के दृष्टान्त है ।

[११०] यह हुआ अश्रुतनिश्चित मतिज्ञान ।

[१११] श्रुतिनिश्चित मतिज्ञान कितने प्रकार का है ? चार प्रकार का—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ।

[११२] —अवग्रह कितने प्रकार का है ? दो प्रकार से है । अर्थावग्रह, व्यंजनावग्रह ।

[११३] —व्यंजनावग्रह कितने प्रकार का है ? चार प्रकार का है । श्रोत्रेन्द्रियव्यंजनावग्रह, घ्राणेन्द्रियव्यंजनावग्रह, जिह्वेन्द्रियव्यंजनावग्रह, स्पर्शेन्द्रियव्यंजनावग्रह ।

[११४] —अर्थावग्रह कितने प्रकार का है ? छह प्रकार का, श्रोत्रेन्द्रियअर्थावग्रह, चक्षुरिन्द्रियअर्थावग्रह, घ्राणेन्द्रियअर्थावग्रह, जिह्वेन्द्रियअर्थावग्रह, स्पर्शेन्द्रियअर्थावग्रह और नोइन्द्रियअर्थावग्रह ।

[११५] —अर्थावग्रह के एक अर्थवाले, नाना घोष तथा नाना व्यञ्जन वाले पाँच नाम हैं । यथा—अवग्रहणता, उपधारणता, श्रवणता, अवलम्बनता और मेधा ।

[११६] ईहा छह प्रकार की, श्रोत्रेन्द्रिय-ईहा, चक्षु-इन्द्रिय-ईहा, घ्राण-इन्द्रिय-ईहा, जिह्वा-इन्द्रिय-ईहा, स्पर्श-इन्द्रिय-ईहा और नोइन्द्रिय-ईहा । ईहा के एकार्थक, नानाघोष और नाना व्यंजन वाले पाँच नाम हैं—आभोगनता, मार्गणता, गवेषणता, चिन्ता तथा विमर्श ।

[११७] —अवाय मतिज्ञान कितने प्रकार का है ? छह प्रकार का, श्रोत्रेन्द्रिय-अवाय, चक्षुरिन्द्रिय-अवाय, घ्राणेन्द्रिय-अवाय, रसनेन्द्रिय-अवाय, स्पर्शेन्द्रिय-अवाय, नोइन्द्रिय-अवाय । अवाय के एकार्थक, नानाघोष और नानाव्यंजन वाले पाँच नाम हैं—आवर्त्तनता, प्रत्यावर्त्तनता, अवाय, बुद्धि, विज्ञान ।

[११८] धारणा छह प्रकार की, श्रोत्रेन्द्रिय-धारणा, चक्षुरिन्द्रिय-धारणा, घ्राणेन्द्रिय-धारणा, रसनेन्द्रिय-धारणा, स्पर्शेन्द्रिय-धारणा, नोइन्द्रिय-धारणा । धारणा के एक अर्थवाले, नाना घोष और नाना व्यंजन वाले पाँच नाम हैं—धारणा, साधारणा, स्थापना, प्रतिष्ठा और कोष्ठ ।

[११९] अवग्रह ज्ञान का काल एक समय मात्र का है । ईहा का अन्तर्मुहूर्त्त, अवाय भी अन्तर्मुहूर्त्त तथा धारणा का काल संख्यात अथवा असंख्यात काल है ।

[१२०] —चार प्रकार का व्यंजनावग्रह, छह प्रकार का अर्थावग्रह, छह प्रकार की ईहा, छह प्रकार का अवाय और छह प्रकार की धारणा, इस प्रकार अट्ठाईसविध मतिज्ञान के व्यंजन अवग्रह की प्रतिबोधक और मल्लक के उदाहरण से प्ररूपणा करूँगा । कोई व्यक्ति किसी गुप्त पुरुष को—“हे अमुक ! हे अमुक !” इस प्रकार कह कर जगाए । “भगवन् ! क्या ऐसा संबोधन करने पर उस पुरुष के कानों में एक समय में प्रवेश किए हुए पुद्गल ग्रहण करने



में आते हैं या दो समय में अथवा दस समयों में, संख्यात समयों में या असंख्यात समयों में प्रविष्ट पुद्गल ग्रहण करने में आते हैं ?” “एक समय में प्रविष्ट हुए पुद्गल ग्रहण करने में नहीं आते, यावत् न ही संख्यात समय में, अपितु असंख्यात समयों में प्रविष्ट हुए शब्द पुद्गल ग्रहण करने में आते हैं ।” इस तरह यह प्रतिबोधक के दटान्त से व्यंजन अवग्रह का स्वरूप वर्णित किया गया ।

‘मल्लक के दृष्टान्त से व्यंजनावग्रह का स्वरूप किस प्रकार है ?’ जिस प्रकार कोई व्यक्ति आपाकशीर्ष लेकर उसमें पानी की एक बूँद डाले, उसके नष्ट हो जाने पर दूसरी, फिर तीसरी, इसी प्रकार कई बूँदे नष्ट हो जाने पर भी निरन्तर डालता रहे तो पानी की कोई बूँद ऐसी होगी जो उस प्याले को गीला करेगी । तत्पश्चात् कोई बूँद उसमें ठहरेगी और किसी बूँद से प्याला भर जाएगा और भरने पर किसी बूँद से पानी बाहर गिरने लगेगा । इसी प्रकार वह व्यंजन अनन्त पुद्गलों से क्रमशः पूरित होता है, तब वह पुरुष हुंकार करता है, किन्तु यह नहीं जानता कि यह किस व्यक्ति का शब्द है ? तत्पश्चात् ईहा में प्रवेश करता है तब जानता है कि यह अमुक व्यक्ति का शब्द है । तत्पश्चात् अवाय में प्रवेश करता है, तब शब्द का ज्ञान होता है । इसके बाद धारणा में प्रवेश करता है और संख्यात अथवा असंख्यातकाल पर्यन्त धारण किये रहता है ।

किसी पुरुष ने अव्यक्त शब्द को सुनकर ‘यह कोई शब्द है’ इस प्रकार ग्रहण किया किन्तु वह यह नहीं जानता कि ‘यह शब्द किसका है ?’ तब वह ईहा में प्रवेश करता है, फिर जानता है कि ‘यह अमुक शब्द है ।’ फिर अवाय में प्रवेश करता है । तत्पश्चात् उसे उपगत हो जाता है और फिर धारणा में प्रवेश करता है, और उसे संख्यातकाल और असंख्यातकाल पर्यन्त धारण किये रहता है ।

कोई व्यक्ति अस्पष्ट रूप को देखे, उसने यह कोई ‘रूप है’ इस प्रकार ग्रहण किया, परन्तु यह नहीं जान पाया कि ‘किसका रूप है ?’ तब वह ईहा में प्रविष्ट होता है तथा छानबीन करके यह ‘अमुक रूप है’ इस प्रकार जानता है । तत्पश्चात् अवाय में प्रविष्ट होकर उपगत हो जाता है, फिर धारणा में प्रवेश करके उसे संख्यात काल अथवा असंख्यात तक धारणा कर रखता है ।

कोई पुरुष अव्यक्त गंध को सूँघता है, उसने ‘कोई गंध है’ इस प्रकार ग्रहण किया, किन्तु वह यह नहीं जानता कि ‘किस प्रकार की गंध है ?’ तदनन्तर ईहा में प्रवेश करके जानता है कि ‘यह अमुक गंध है ।’ फिर अवाय में प्रवेश करके गंध से उपगत हो जाता है । तत्पश्चात् धारणा करके उसे संख्यात व असंख्यात काल तक धारण किये रहता है ।

कोई व्यक्ति किसी रस का आस्वादन करता है । रस को ग्रहण करता है किन्तु यह नहीं जानता कि ‘कौन सा रस है ?’ तब ईहा में प्रवेश करके वह जान लेता है कि ‘यह अमुक प्रकार का रस है ।’ तत्पश्चात् अवाय में प्रवेश करता है । तब उसे उपगत हो जाता है । तदनन्तर धारणा करके संख्यात एवं असंख्यात काल तक धारण किये रहता है ।

—कोई पुरुष अव्यक्त स्पर्श को स्पर्श करता है, ‘कोई स्पर्श है’ इस प्रकार ग्रहण किया किन्तु ‘यह नहीं जाना कि स्पर्श किस प्रकार का है ?’ तब ईहा में प्रवेश करता है और जानता है कि ‘अमुक का स्पर्श है ।’ तत्पश्चात् अवाय में प्रवेश करके वह उपगत होता है । फिर

धारणा में प्रवेश करने के बाद संख्यात अथवा असंख्यात काल पर्यन्त धारण किये रहता है ।

—कोई पुरुष अव्यक्त स्वप्न को देखे, 'स्वप्न है' इस प्रकार ग्रहण किया, परन्तु यह नहीं जानता कि 'कैसा स्वप्न है ?' तब ईहा में प्रवेश करके जानता है कि 'यह अमुक स्वप्न है ।' उसके बाद अवाय में प्रवेश करके उपगत होता है । तत्पश्चात् वह धारणा में प्रवेश करके संख्यात या असंख्यात काल तक धारण करता है । इस प्रकार मल्लक के दृष्टांत से अवग्रह का स्वरूप हुआ ।

[१२१] —वह मतिज्ञान संक्षेप में चार प्रकार का है । —द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । मतिज्ञानी द्रव्य से सामान्यतः सर्व द्रव्यों को जानता है, किन्तु देखता नहीं । क्षेत्र से सामान्यतः सर्व क्षेत्र को जानता है, किन्तु देखता नहीं । काल से सामान्यतः तीनों कालों को जानता है, किन्तु देखता नहीं । भाव से सामान्यतः सब भावों को जानता है, पर देखता नहीं ।

[१२२] मतिज्ञान के संक्षेप में अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा क्रम से ये चार विकल्प हैं ।

[१२३] अर्थों के अवग्रहण को अवग्रह, अर्थों के पर्यालोचन को ईहा, अर्थों के निर्णयात्मक ज्ञान को अवाय और उपयोग की अविच्युति, वासना तथा स्मृति को धारणा कहते हैं ।

[१२४] —अवग्रह ज्ञान का काल एक समय, ईहा और अवायज्ञान का समय अर्द्धमुहूर्त तथा धारणा का काल-परिमाण संख्यात व असंख्यात काल पर्यन्त समझना ।

[१२५] —श्रोत्रेन्द्रिय के साथ स्पष्ट होने पर ही शब्द सुना जाता है, किन्तु नेत्र रूप को विना स्पष्ट हुए ही देखते हैं । चक्षुरिन्द्रिय अप्राप्यकारी ही है । घ्राण, रसन और स्पर्शन इन्द्रियों से बद्धस्पष्ट हुए—पुद्गल जाने जाते हैं ।

[१२६] —वक्ता द्वारा छोड़े गए जिन भाषारूप पुद्गल-समूह को समश्रेणि में स्थित श्रोता सुनता है, उन्हें नियम से अन्य शब्द द्रव्यों से मिश्रित ही सुनता है । विश्रेणि में स्थित श्रोता शब्द को नियम से पराघात होने पर ही सुनता है ।

[१२७] ईहा, अपोह, विमर्श, मार्गणा, गवेषणा, संज्ञा, स्मृति, मति और प्रज्ञा, ये सब आभिनिबोधिकज्ञान के पर्यायवाची नाम हैं ।

[१२८] यह आभिनिबोधिक ज्ञान-परोक्ष का विवरण पूर्ण हुआ । मतिज्ञान भी सम्पूर्ण हुआ ।

[१२९] —श्रुतज्ञान-परोक्ष कितने प्रकार का है ? चौदह प्रकार का, अक्षरश्रुत, अनक्षरश्रुत, संज्ञिश्रुत, असंज्ञिश्रुत, सम्यक्श्रुत, मिथ्याश्रुत, सादिकश्रुत, अनादिकश्रुत, सपर्यवसितश्रुत, अपर्यवसितश्रुत, गमिकश्रुत, अगमिकश्रुत, अङ्गप्रविष्टश्रुत और अनङ्गप्रविष्टश्रुत ।

[१३०] —अक्षरश्रुत कितने प्रकार का है । तीन प्रकार से है, संज्ञा-अक्षर, व्यञ्जन-अक्षर और लब्धि-अक्षर । अक्षर की आकृति आदि, जो विभिन्न लिपियों में लिखे जाते हैं, वे संज्ञा-अक्षर हैं । उच्चारण किए जानेवाले अक्षर व्यञ्जन-अक्षर हैं । अक्षर-लब्धि वाले जीव को लब्धि-अक्षर उत्पन्न होता है अर्थात् भावरूप श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । जैसे—श्रोत्रेन्द्रियलब्धि-अक्षर, यावत् स्पर्शनिन्द्रियलब्धि-अक्षर और नोइन्द्रियलब्धि-अक्षर । इस प्रकार अक्षरश्रुत का

वर्णन है ।

[१३१] —अनक्षरश्रुत कितने प्रकार का है ? अनेक प्रकार का, ऊपर श्वास लेना, नीचे श्वास लेना, थूकना, खाँसना, छींकना, निःसिंघना तथा अन्य अनुस्वार युक्त चेष्टा करना आदि ।

[१३२] यह सभी अनक्षरश्रुत है ।

[१३३] —संज्ञिश्रुत कितने प्रकार का है ? तीन प्रकार का, कालिका-उपदेश से, हेतु-उपदेश से और दृष्टिवाद-उपदेश से । कालिका-उपदेश से जिसे ईहा, अपोह, निश्चय, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता, विमर्श । उक्त प्रकार से जिस प्राणी की विचारधारा हो, वह संज्ञी है । जिसके ईहा, अपाय, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता और विमर्श नहीं हों, वह असंज्ञी होता है । संज्ञी जीव का श्रुत संज्ञी-श्रुत और असंज्ञी का असंज्ञी-श्रुत कहलाता है । यह कालिका-उपदेश से संज्ञी एवं असंज्ञीश्रुत है । हेतु-उपदेश से जिस जीव की अव्यक्त या व्यक्त विज्ञान के द्वारा आलोचना पूर्वक क्रिया करने की शक्ति है, वह संज्ञी है । जिस की विचारपूर्वक क्रिया करने में प्रवृत्ति नहीं है, वह असंज्ञी है । दृष्टिवाद-उपदेश की अपेक्षा से संज्ञिश्रुत के क्षयोपशम से संज्ञी है । असंज्ञिश्रुत के क्षयोपशम से 'असंज्ञी' है । यह दृष्टिवादोपदेश से संज्ञी है । इस प्रकार संज्ञी और असंज्ञिश्रुत हुआ ।

[१३४] —सम्यक्श्रुत किसे कहते हैं ? सम्यक्श्रुत उत्पन्न ज्ञान और दर्शन को धारण करनेवाले, त्रिलोकवर्ती जीवों द्वारा आदर-सन्मानपूर्वक देखे गये तथा यथावस्थित उत्कीर्तित, भावयुक्त नमस्कृत, अतीत, वर्तमान और अनागत को जाननेवाले, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अर्हन्त-तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा प्रणीत-अर्थ से कथन किया हुआ—जो यह द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक है, जैसे—आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृतदशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत और दृष्टिवाद, यह सम्यक्श्रुत है । यह द्वादशाङ्ग गणिपिटक चौदह पूर्वधारी का सम्यक्श्रुत ही होता है । सम्पूर्ण दस पूर्वधारी का भी सम्यक्श्रुत ही होता है । उससे कम अर्थात् कुछ कम दस पूर्व और नव आदि पूर्व का ज्ञान होने पर विकल्प है, अर्थात् सम्यक्श्रुत हो और न भी हो । इस प्रकार यह सम्यक्श्रुत का वर्णन पूरा हुआ ।

[१३५] —मिथ्याश्रुत का स्वरूप क्या है ? मिथ्याश्रुत अज्ञानी एवं मिथ्यादृष्टियों द्वारा स्वच्छन्द और विपरीत बुद्धि द्वारा कल्पित किये हुए ग्रन्थ हैं, यथा—भारत, रामायण, भीमासुरोक्त, कौटिल्य, शकटभद्रिका, घोटकमुख, कार्पासिक, नाग-सूक्ष्म, कनकसप्तति, वैशेषिक, बुद्धवचन, त्रैराशिक, कापिलीय, लोकायत, षष्टितंत्र, माठर, पुराण, व्याकरण, भागवत, पातञ्जलि, पुष्यदैवत, लेख, गणित, शकुनिरुत, नाटक । अथवा बहत्तर कलाएं और चार वेद अंगोपाङ्ग सहित । ये सभी मिथ्यादृष्टि के लिए मिथ्यारूप में ग्रहण किये हुए मिथ्याश्रुत हैं । यही ग्रन्थ सम्यक्दृष्टि द्वारा सम्यक् रूप में ग्रहण किए हुए सम्यक्-श्रुत हैं । अथवा मिथ्यादृष्टि के लिए भी यही ग्रन्थ-शास्त्र सम्यक्श्रुत हैं, क्योंकि ये उनके सम्यक्त्व में हेतु हो सकते हैं, कई मिथ्यादृष्टि इन ग्रन्थों से प्रेरित होकर अपने मिथ्यात्व को त्याग देते हैं । यह मिथ्याश्रुत का स्वरूप है ।

[१३६] —सादि सपर्यवसित और अनादि अपर्यवसितश्रुत का क्या स्वरूप है ? यह



द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से सादि-सान्त है, और द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से आदि अन्त रहित है । यह श्रुतज्ञान संक्षेप में चार प्रकार से वर्णित किया गया है, जैसे—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से, एक पुरुष की अपेक्षा से सादि-सपर्यवसित है । बहुत से पुरुषों की अपेक्षा अनादि अपर्यवसित है । क्षेत्र से पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रों की अपेक्षा सादि-सान्त है । पाँच महाविदेह की अपेक्षा से अनादि-अनन्त है । काल से सम्यक्श्रुत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल की अपेक्षा सादि-सान्त है । अवस्थित काल की अपेक्षा अनादि-अनन्त है । भाव से सर्वज्ञ—सर्वदर्शी जिन-तीर्थकरों द्वारा जो भाव-पदार्थ जिस समय सामान्यरूप या विशेष रूप से कथन किये जाते हैं, हेतु-दृष्टान्त के उपदर्शन से जो स्पष्टतर किये जाते हैं और उपनय तथा निगमन से जो स्थापित किये जाते हैं, तब उन भावों की अपेक्षा से सादि-सान्त है । क्षयोपशम भाव की अपेक्षा से सम्यक्-श्रुत अनादि-अनन्त है । अथवा भवसिद्धिक प्राणी का श्रुत सादि-सान्त है, अभवसिद्धिक का मिथ्या-श्रुत अनादि और अनन्त है ।

सम्पूर्ण आकाश-प्रदेशों का समस्त आकाश प्रदेशों के साथ अनन्त बार गुणाकार करने से पर्याय अक्षर निष्पन्न होता है । सभी जीवों के अक्षर-श्रुतज्ञान का अनन्तवाँ भाग सदैव उद्घाटित रहता है । यदि वह भी आवरण को प्राप्त हो जाए तो उससे जीवात्मा अजीवभाव को प्राप्त हो जाए । बादलों का अत्यधिक पटल ऊपर आ जाने पर भी चन्द्र और सूर्य की कुछ न कुछ प्रभा तो रहती ही है । इस प्रकार सादि-सान्त और अनादि-अनन्त श्रुत का वर्णन है ।

[१३७]—गमिक-श्रुत क्या है ? आदि, मध्य या अवसान में कुछ शब्द-भेद के साथ उसी सूत्र को बार-बार कहना गमिक-श्रुत है । दृष्टिवाद गमिक-श्रुत है । गमिक से भिन्न आचाराङ्ग आदि कालिकश्रुत अंगमिक-श्रुत हैं । अथवा श्रुत संक्षेप में दो प्रकार का है अङ्गप्रविष्ट और अङ्गबाह्य । अङ्गबाह्य दो प्रकार का है—आवश्यक, आवश्यक से भिन्न । आवश्यक-श्रुत छह प्रकार का है—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान ।

— आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत कितने प्रकार का है ? दो प्रकार का, कालिक—जिस श्रुत का रात्रि व दिन के प्रथम और अन्तिम प्रहर में स्वाध्याय किया जाता है । उत्कालिक—जो कालिक से भिन्न काल में भी पढ़ा जाता है । उत्कालिक श्रुत अनेक प्रकार का है, जैसे—दशवैकालिक, कल्पाकल्प, चुल्लकल्पश्रुत, महाकल्पश्रुत, औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, प्रमादाप्रमाद, नन्दी, अनुयोगद्वार, देवेन्द्रस्तव, तन्दुलवैचारिक, चन्द्रविद्या, सूर्यप्रज्ञप्ति, पौरुषीमंडल, मण्डलप्रदेश, विद्याचरणविनिश्चय, गणिविद्या, ध्यानविभक्ति, मरणविभक्ति, आत्मविशुद्धि, वीतरागश्रुत, संलेखनाश्रुत, विहारकल्प, चरणविधि, आतुरप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान इत्यादि । यह उत्कालिक श्रुत का वर्णन हुआ ।

कालिक-श्रुत कितने प्रकार का है ? अनेक प्रकार का, उत्तराध्ययन, दशा, कल्प, व्यवहार, निशीथ, महानिशीथ, ऋषिभाषित, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, क्षुद्रिकाविमानविभक्ति, महल्लिकाविमानप्रविभक्ति, अङ्गचूलिका, वर्गचूलिका, विवाहचूलिका, अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रमणोपपात, वेलन्धरोपपात, देवेन्द्रोपपात,

उत्थानश्रुत, समुत्थानश्रुत, नागपरिज्ञापनिका, निरयावलिका, कल्पिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिता, पुष्पचूलिका और वृष्णिदशा आदि ।

८४००० प्रकीर्णक अर्हत् भगवान् श्रीऋषभदेव स्वामी आदि तीर्थंकर के हैं तथा संख्यात सहस्र प्रकीर्णक मध्यम तीर्थंकरों के हैं । १४००० प्रकीर्णक भगवान् महावीर स्वामी के हैं । इनके अतिरिक्त जिस तीर्थंकर के जितने शिष्य औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और पारिणामिकी बुद्धि से युक्त हैं, उनके उतने ही हजार प्रकीर्णक होते हैं । प्रत्येकबुद्ध भी उतने ही होते हैं । यह कालिकाश्रुत है । इस प्रकार आवश्यक-व्यतिरिक्त श्रुत और अनङ्ग-प्रविष्ट श्रुत का स्वरूप भी सम्पूर्ण हुआ ।

[१३८] —अङ्गप्रविष्टश्रुत कितने प्रकार का है ? बारह प्रकार का—आचार, सूत्रकृत, स्थान, समवाय, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृत्दशा, अनुत्तरौपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत और दृष्टिवाद ।

[१३९] —आचार नामक अंगसूत्र का क्या स्वरूप है ? उसमें बाह्य—आभ्यन्तर परिग्रह से रहित श्रमण निर्ग्रन्थों का आचार, गोचर-भिक्षा के ग्रहण करने की विधि, विनय, विनय का फल, ग्रहण और आसेवन रूप शिक्षा, बोलने योग्य एवंत्याज्य भाषा, चरण-व्रतादि, करण-पिण्डविशुद्धि आदि, संयम का निर्वाह और अभिग्रह धारण करके विचरण करना इत्यादि विषयों का वर्णन है । वह आचार संक्षेप में पाँच प्रकार का है, जैसे—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार । आचारश्रुत में सूत्र और अर्थ से परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेद-छन्द, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ वर्णित हैं । आचार अर्थ से प्रथम अंग है । उसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं, पच्चीस अध्ययन हैं । पच्चासी उद्देशनकाल हैं, पच्चासी समुद्देशनकाल हैं । पदपरिमाण से अठारह हजार पद हैं । संख्यात अक्षर हैं । अनन्त गम और अनन्त पर्यायें हैं । परिमित त्रस और अनन्त स्थावर जीवों का वर्णन है । शाश्वत-धर्मास्तिकाय आदि, कृत-प्रयोगज-घटादि, विश्रसा-स्वाभाविक-स्रध्या, बादलों आदि का रंग, ये सभी आचार सूत्र में स्वरूप से वर्णित हैं । निर्युक्ति, संग्रहणी, हेतु, उदाहरण आदि अनेक प्रकार से जिन-प्रज्ञप्त भाव-पदार्थ, सामान्य रूप से कहे गए हैं । नामादि से प्रज्ञप्त हैं । विस्तार से कथन किये गये हैं । उपमान आदि से पुष्ट किये गए हैं । आचार को ग्रहण करने वाला, उसके अनुसार क्रिया करने वाला, आचार की साक्षात् मूर्ति बन जाता है । वह भावों का ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार आचारांग सूत्र में चरण-करण की प्ररूपणा की गई है । यह आचार सूत्र का स्वरूप है ।

[१४०] —सूत्रकृत में किस विषय का वर्णन है ? सूत्रकृत में षड्रव्यात्मक लोक, केवल आकाश द्रव्यमय अलोक, लोकालोक दोनों सूचित किये जाते हैं । इसी प्रकार जीव, अजीव और जीवाजीव की सूचना है । स्वमत, परमत और स्व-परमत की है । सूत्रकृत में १८० क्रियावादियों के, ८४ अक्रियावादियों के, ६७ अज्ञानवादियों और ३२ विनयवादियों के, इस प्रकार ३६३ पाखंडियों का निराकरण करके स्वसिद्धांत की स्थापना की जाती है । सूत्रकृत में परिमित वाचनाएँ हैं, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात छन्द, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह अङ्ग अर्थ की दृष्टि से दूसरा है । इसमें दो श्रुतस्कन्ध और तेईस अध्ययन हैं । तेतीस उद्देशनकाल और तेतीस समुद्देशनकाल

हैं । पद-परिणाम ३६०० है । इसमें संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं । धर्मास्तिकाय आदि शाश्वत, प्रयत्नजन्य, या प्रकृतिजन्य, निबद्ध एवं हेतु आदि द्वारा सिद्ध किए गए जिन-प्रणीत भाव कहे जाते हैं तथा इनका प्रज्ञापन, प्ररूपण, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है । सूत्रकृत का अध्ययन करने वाला तद्रूप अर्थात् सूत्रगत विषयों में तल्लीन होने से तदाकार आत्मा, ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार से इस सूत्र में चरण-करण की प्ररूपणा कही जाती है ।

[१४१] —भगवन् ! स्थानाङ्गश्रुत क्या है ? स्थान में अथवा स्थान के द्वारा जीव, अजीव और जीवाजीव की स्थापना की जाती है । स्वसमय, परसमय एवं उभय पक्षों की स्थापना की जाती है । लोक, अलोक और लोकालोक की स्थापना की जाती है । स्थान में या स्थान के द्वारा टङ्क, पर्वत, कूट, पर्वत, शिखर वाले पर्वत, पर्वत के ऊपर हस्तिकुम्भ की आकृति सदृश्य कुब्ज, कुण्ड, हृद, नदियों का कथन है । स्थान में एक से लेकर दस तक वृद्धि करते हुए भावों की प्ररूपणा है । स्थान सूत्र में परिमित वाचनाएं, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेद-छन्द, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । वह तृतीय अङ्ग है । इसमें एक श्रुतस्कंध और दस अध्ययन हैं तथा इक्कीस उद्देशनकाल और इक्कीस ही समुद्देशनकाल हैं । पदों की संख्या ७२००० है । संख्यात अक्षर तथा अनन्त गम हैं । अनन्त पर्याय, परिमित-त्रस और अनन्त स्थावर हैं । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनकथित भाव कहे जाते हैं । उनका प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया गया है । स्थानसूत्र का अध्ययन करनेवाला तदात्मरूप, ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार उक्त अङ्ग में चरण-करणानुयोग की प्ररूपणा की गई है ।

[१४२] —समवायश्रुत का विषय क्या है ? समवाय सूत्र में यथावस्थित रूप से जीवों, अजीवों और जीवाजीवों का आश्रयण किया गया है । स्वदर्शन, परदर्शन और स्व-परदर्शन का आश्रयण किया गया है । लोक अलोक और लोकालोक आश्रयण किये जाते हैं । समवाय में एक से लेकर सौ स्थान तक भावों की प्ररूपणा है और द्वादशाङ्ग गणिपिटक का संक्षेप में परिचय-आश्रयण है । समवाय में परिमित वाचना, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ तथा संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह चौथा अङ्ग है । एक श्रुतस्कंध, एक अध्ययन, एक उद्देशनकाल और एक समुद्देशनकाल है । इसका पदपरिमाण १४४००० हजार है । संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस, अनन्त स्थावर तथा शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिन-प्ररूपित भाव, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन से स्पष्ट किये गए हैं । समवाय का अध्ययन करने वाला तदात्मरूप, ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार समवाय में चरण-करण की प्ररूपणा है ।

[१४३] व्याख्याप्रज्ञप्ति में क्या वर्णन है ? व्याख्याप्रज्ञप्ति में जीवों की, अजीवों की तथा जीवाजीवों की व्याख्या है । स्वसमय, परसमय और स्व-पर-उभय सिद्धान्तों की तथा लोक अलोक और लोकालोक के स्वरूप का व्याख्यान है । परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेद-श्लोक विशेष, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह पाँचवाँ अंग है । एक श्रुतस्कंध, कुछ अधिक एक सौ अध्ययन हैं । १०००० उद्देश, १०००० समुद्देश, ३६००० प्रश्नोत्तर और २२८००० पद परिमाण है ।



संख्यात अक्षर, अनन्त गम और अनन्त पर्याय हैं । परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनप्रज्ञत भावों का कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन तथा उपदर्शन किया गया है । व्याख्याप्रज्ञति का अध्येता तदात्मरूप एवं ज्ञाता-विज्ञाता बन जाता है । इस प्रकार इसमें चरण-करण की प्ररूपणा की गई है ।

[१४४] भगवन् ! ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में क्या वर्णन है ? ज्ञाताधर्मकथा में ज्ञातों के नगरों, उद्यानों, चैत्यों, वनखण्डों व भगवान् के समवसरणों का तथा राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक और परलोक संबंधी ऋद्धि विशेष, भोगों का परित्याग, दीक्षा, पर्याय, श्रुत का अध्ययन, उपधान-तप, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, पादपोपगमन, देवलोक-गमन, पुनः उत्तमकुल में जन्म, पुनःसम्यक्त्व की प्राप्ति, तत्पश्चात् अन्तक्रिया कर मोक्ष की उपलब्धि इत्यादि विषयों का वर्णन है । धर्मकथा के दस वर्ग हैं और एक-एक धर्मकथा में पाँच-पाँच सौ आख्यायिकाएँ हैं । एक-एक आख्यायिका में पाँच-पाँच सौ उपाख्यायिकाएँ और एक-एक उपाख्यायिका में पाँच-पाँच सौ आख्यायिका-उपाख्यायिकाएँ हैं । इस प्रकार पूर्वापर कुल साढ़े तीन करोड़ कथानक हैं । परिमित वाचना, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेद, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । छठा अंग है । इसमें दो श्रुतस्कन्ध, १९ अध्ययन, १९ उद्देशनकाल, १९ समुद्देशनकाल तथा संख्यात सहस्रपद हैं । संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिन-प्रतिपादित भाव, कथन, प्रज्ञापन, प्ररूपणा, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन से स्पष्ट किए गए हैं । प्रस्तुत अङ्ग का पाठक तदात्मरूप, ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार ज्ञाताधर्मकथा में चरण-करण की विशिष्ट प्ररूपणा की गई है ।

[१४५] —वह उपासकदशा नामक अंग किस प्रकार का है ? उपासकदशा में श्रमणोपासकों के नगर, उद्यान, व्यन्तरायतन, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक और परलोक की ऋद्धिविशेष, भोग-परित्याग, दीक्षा, संयम की पर्याय, श्रुत का अध्ययन, उपधानतप, शीलव्रत-गुणव्रत, विस्मणव्रत-प्रत्याख्यान, पौषधोपवास का धारण करना, प्रतिमाओं का धारण करना, उपसर्ग, संलेखना, अनशन, पादपोपगमन, देवलोक-गमन, पुनः सुकुल में उत्पत्ति, पुनः बोधि-सम्यक्त्व का लाभ और अन्तक्रिया इत्यादि विषयों का वर्णन है । परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेद (छन्द विशेष) संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह सातवाँ अंग है । उसमें एक श्रुतस्कन्ध, दस अध्ययन, दस उद्देशनकाल और दस समुद्देशनकाल हैं । पद-परिमाण से संख्यात-सहस्र पद हैं । संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस तथा अनन्त स्थावर हैं । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिन प्रतिपादित भावों का सामान्य और विशेष रूप से कथन, प्ररूपण, प्रदर्शन, निदर्शन और उपदर्शन किया है । इसका सम्यक् रूपेण अध्ययन करने वाला तद्रूप-आत्म ज्ञाता और विज्ञाता बन जाता है । उपासकदशांग में चरण-करण की प्ररूपणा की गई है ।

[१४६] —अन्तकृद्दशा-श्रुत किस प्रकार का है ? अन्तकृद्दशा में अन्तकृत् महापुरुषों के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इस

लोक और परलोक की ऋद्धि विशेष, भोगों का परित्याग, प्रव्रज्या और दीक्षापर्याय, श्रुत का अध्ययन, उपधानतप, संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, पादपोषण, अन्तक्रिया-शैलेशी अवस्था आदि विषयों का वर्णन है । परिमित वाचनाएँ, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात छन्द, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह आठवाँ अंग है । इसमें एक श्रुतस्कंध, आठ उद्देशनकाल और आठ समुद्देशन काल हैं । पद परिमाण से संख्यात सहस्र पद हैं । संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय तथा परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिन प्रज्ञप्त भाव हैं तथा प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन हैं । इस सूत्र का अध्ययन करनेवाला तदात्मरूप, ज्ञाता और विज्ञाता हो जाता है । इस तरह प्रस्तुत अङ्ग में चरण-करण की प्ररूपणा की गई है ।

[१४७] भगवन् ! अनुत्तरौपपातिक-दशा सूत्र में क्या वर्णन है ? अनुत्तरौपपातिक दशा में अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होनेवाले आत्माओं के नगर, उद्यान, व्यन्तरायन, वनखण्ड, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऋद्धिविशेष, भोगों का परित्याग, दीक्षा, संयमपर्याय, श्रुत का अध्ययन, उपधानतप, प्रतिमाग्रहण, उपसर्ग, अंतिम संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोषण तथा अनुत्तर विमानों में उत्पत्ति । पुनः वहाँ से चक्कर सुकुल की प्राप्ति, फिर बोधिलाभ और अन्तक्रिया इत्यादि का वर्णन है । परिमित वाचना, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेद, संख्यात श्लोक संख्यात निर्युक्तियाँ, संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं । यह नवमा अंग है । इसमें एक श्रुतस्कंध, तीन वर्ग, तीन उद्देशनकाल और तीन समुद्देशनकाल हैं । पदाग्र परिमाण से संख्यात सहस्र पद हैं । संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस तथा अनन्त स्थावरों का वर्णन है । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिन प्रणीत भाव हैं । प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन से सुस्पष्ट किए गए हैं । इसका सम्यक् रूपेण अध्ययन करने वाला तद्रूप आत्मा, ज्ञाता एवं विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार चरण-करण की प्ररूपणा उक्त अंग में की गई है ।

[१४८] प्रश्नव्याकरण किस प्रकार है ? प्रश्नव्याकरण सूत्र में १०८ प्रश्न हैं, १०८ अप्रश्न हैं, १०८ प्रश्नाप्रश्न हैं । अंगुष्ठप्रश्न, बाहुप्रश्न तथा आदर्शप्रश्न । इनके अतिरिक्त अन्य भी विचित्र विद्यातिशय कथन हैं । नागकुमारों और सुपर्णकुमारों के साथ हुए मुनियों के दिव्य संवाद भी हैं । परिमित वाचनाएँ हैं । संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेद, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियाँ और संख्यात संग्रहणियाँ तथा प्रतिपत्तियाँ हैं । यह दसवाँ अंग है । इनमें एक श्रुतस्कंध, ४५ अध्ययन, ४५ उद्देशनकाल और ४५ समुद्देशनकाल हैं । पद परिमाण से संख्यात सहस्र पद हैं । संख्यात अक्षर, अनन्त अर्थगम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस और अनन्त स्थावर हैं । शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित, जिन प्रतिपादित भाव हैं, प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन तथा उपदर्शन द्वारा स्पष्ट किए गये हैं । प्रश्नव्याकरण का पाठक तदात्मकरूप एवं ज्ञाता, विज्ञाता हो जाता है । इस प्रकार उक्त अंग में चरण-करण की प्ररूपणा की गई है ।

[१४९] भगवन् ! विपाकश्रुत किस प्रकार का है ? विपाकश्रुत में शुभाशुभ कर्मों के फल-विपाक हैं । उस विपाकश्रुत में दस दुःखविपाक और दस सुखविपाक अध्ययन हैं । दुःखविपाक में दुःखरूप फल भोगने वालों के नगर, उद्यान, वनखण्ड चैत्य, राजा, माता-पिता,

धर्माचार्य, धर्मकथा, इह-परलौकिक ऋद्धि, नरकगमन, भवभ्रमण, दुःखपरम्परा, दुष्कूल में जन्म तथा दुर्लभबोधिता की प्ररूपणा है । सुखविपाक श्रुत में सुखरूप फल भोगनेवाले के नगर, उद्यान, वनखण्ड, व्यन्तरायतन, समवसरण, राजा, माता-पिता, धर्मोचार्य, धर्मकथा, ऋद्धि विशेष भोगों का परित्याग, प्रवज्या, दीक्षापर्याय, श्रुत ग्रहण, उपधानतप, संलेखना, भक्तप्रत्याख्यान, पादपोषण, देवलोकगमन, सुखों की परम्परा, पुनः बोधिलाभ, अन्तक्रिया इत्यादि विषयों है । इस में परिमित वाचना, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेद, संख्यात श्लोक, संख्यात निर्युक्तियां संख्यात संग्रहणियाँ और संख्यात प्रतिपत्तियां हैं । वह ग्यारहवाँ अंग है । इसके दो श्रुतस्कंध, बीस अध्ययन, बीस उद्देशनकाल और बीस समुद्देशनकाल हैं । पद परिमाण से संख्यात सहस्र पद हैं, संख्यात अक्षर, अनन्त गम, अनन्त पर्याय, परिमित त्रस, अनन्त स्थावर, शाश्वत-कृत-निबद्ध-निकाचित जिनप्ररूपित भाव हेतु आदि से निर्णीत, प्ररूपित, निदर्शित और उपदर्शित किए गए हैं । विपाकश्रुत का अध्ययन करनेवाला एवंभूत आत्मा, ज्ञाता तथा विज्ञाता बन जाता है । इस तरह से चरण-करण की प्ररूपणा की गई है ।

[१५०] दृष्टिवाद क्या है ? दृष्टिवाद—सब नयदृष्टियों का कथन करने वाले श्रुत में समस्त भावों की प्ररूपणा है । संक्षेप में पाँच प्रकार का है । परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका ।

परिकर्म सात प्रकार का है, सिद्ध-श्रेणिकापरिकर्म, मनुष्य-श्रेणिकापरिकर्म, पृष्ट-श्रेणिकापरिकर्म, अवगाढ-श्रेणिकापरिकर्म, उपसम्पादन-श्रेणिकापरिकर्म, विप्रजहत् श्रेणिकापरिकर्म और च्युताच्युतश्रेणिका-परिकर्म ।

सिद्धश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का है । यथा—मातृकापद, एकार्थपद, अर्थपद, पृथगाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसारप्रतिग्रह, नन्दावर्त, सिद्धावर्त ।

मनुष्यश्रेणिका परिकर्म चौदह प्रकार का है, जैसे—मातृकापद, एकार्थक पद, अर्थपद, पृथगाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एक गुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसारप्रतिग्रह, नन्दावर्त और मनुष्यावर्त ।

पृष्टश्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है, पृथगाकाशपद, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसारप्रतिग्रह, नन्दावर्त और अवगाढावर्त ।

उपसम्पादन श्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है । पृथगाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसार प्रतिग्रह, नन्दावर्त और उपसम्पादनावर्त ।

विप्रजहत्श्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है । पृथगाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसारप्रतिग्रह, नन्दावर्त, विप्रजहदावर्त । च्युताच्युत श्रेणिका परिकर्म ग्यारह प्रकार का है, पृथगाकाशपद, केतुभूत, राशिबद्ध, एकगुण, द्विगुण, त्रिगुण, केतुभूत, प्रतिग्रह, संसार-प्रतिग्रह, नन्दावर्त और च्युताच्युतावर्त । इन ग्यारह भेदों में से प्रारम्भ के छह परिकर्म चार नयों के आश्रित हैं और अंतिम सात में त्रैशिक मत का दिग्दर्शन कराया गया है ।

सूत्र रूप दृष्टिवाद बाईस प्रकार से है । ऋजुसूत्र, परिणतापरिणत, बहुभंगिक, विजयचरित, अनन्तर, परम्पर, आसान, संयूथ, सम्भिन्न, यथावाद, स्वस्तिकावर्त, नन्दावर्त, बहुल, पृष्टापृष्ट,



व्यावर्त, एवंभूत, द्विकावर्त, वर्तमानपद, समभिरूढ, सर्वतोभद्र, प्रशिष्य, दुष्प्रतिग्रह । ये बाईस सूत्र छिन्नच्छेद-नयवाले, स्वसमय सूत्र परिपाटी के आश्रित हैं । यह ही बाईस सूत्र आजीविक गोशालक के दर्शन की दृष्टि से अच्छिन्नच्छेद नय वाले हैं । इसी प्रकार से ये ही सूत्र त्रैशिक सूत्र परिपाटी से तीन नय वाले हैं, स्वसमयसिद्धान्त की दृष्टि से चतुष्क नय वाले हैं । इस प्रकार पूर्वापर सर्व मिलकर ८८ सूत्र हो जाते हैं । यह कथन तीर्थंकर और गणधरों ने किया है ।

पूर्वगत-दृष्टिवाद चौदह प्रकार का है, उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यप्रवादपूर्व, अस्तिनास्ति प्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानप्रवादपूर्व, विद्यानुवादप्रवादपूर्व, अब्रध्यपूर्व, प्राणायुपूर्व, क्रियाविशालपूर्व और लोकविन्दुसारपूर्व । उत्पादपूर्व में दस वस्तु और चार चूलिका वस्तु, अग्रायणीय में चौदह वस्तु और बारह चूलिका वस्तु, वीर्यप्रवाद में आठ वस्तु और आठ चूलिका वस्तु, अस्तिनास्तिप्रवाद में अठारह वस्तु और दस चूलिका वस्तु, ज्ञानप्रवाद में बारह वस्तु, सत्यप्रवाद में दो वस्तु हैं, आत्मप्रवाद में सोलह वस्तु, कर्मप्रवाद में तीस वस्तु, प्रत्याख्यान में बीस वस्तु, विद्यानुवाद में पन्द्रह वस्तु, अब्रध्य में बारह वस्तु, प्राणायु में तेरह वस्तु, क्रियाविशाल में तीस वस्तु और लोकविन्दुसारपूर्व में पच्चीस वस्तु है ।

[१५१-१५३] पहले में १०, दूसरे में १४, तीसरे में ८, चौथे में १८, पाँचवें में १२, छठे में २, सातवें में १६, आठवें में ३०, नवमें में २०, दसवें में १५, ग्यारहवें में १२, बारहवें में १३, तेरहवें में ३० और चौदहवें में २५ वस्तु हैं । आदि के चार पूर्वों में क्रम से—प्रथम में ४, द्वितीय में १२, तृतीय में ८ और चतुर्थ पूर्व में १० चूलिकाएँ हैं । शेष पूर्वों में चूलिकाएँ नहीं हैं ।

[१५४] भगवन् ! अनुयोग कितने प्रकार का है ? दो प्रकार का है, मूलप्रथमानुयोग और गण्डिकानुयोग । मूलप्रथमानुयोग में अरिहन्त भगवन्तों के पूर्व भवों, देवलोक में जाना, आयुष्य, च्यवनकर तीर्थंकर रूप में जन्म, जन्माभिषेक तथा राज्याभिषेक, राज्यलक्ष्मी, प्रव्रज्या, घोर तपश्चर्या, केवलज्ञान की उत्पत्ति, तीर्थ की प्रवृत्ति, शिष्य-समुदाय, गण, गणधर, आर्यिकाएँ, प्रवर्तिनीएँ, चतुर्विध संघ का परिमाण, जिन, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी एवं सम्यक्श्रुतज्ञानी, वादी, अनुत्तरगति और उत्तरवैक्रियधारी मुनि यावन्मात्र मुनि सिद्ध हुए, मोक्ष-मार्ग जैसे दिखाया, जितने समय तक पादपोषगमन संथारा किया, जिस स्थान पर जितने भक्तों का छेदन किया, अज्ञान अंधकार के प्रवाह से मुक्त होकर जो महामुनि मोक्ष के प्रधान सुख को प्राप्त हुए इत्यादि । इनके अतिरिक्त अन्य भाव भी मूल प्रथमानुयोग में प्रतिपादित किये गए हैं ।

गण्डिकानुयोग में कुलकरगण्डिका, तीर्थंकरगण्डिका, चक्रवर्तीगण्डिका, दशारगण्डिका, बलदेवगण्डिका, वासुदेवगण्डिका, गणधरगण्डिका, भद्रबाहुगण्डिका, तपःकर्मगण्डिका, हरिवंशगण्डिका, उत्सर्पिणीगण्डिका, अवसर्पिणीगण्डिका, चित्रान्तरगण्डिका, देव, मनुष्य, तिर्यच, नरकगति, इनमें गमन और विविध प्रकार से संसार में पर्यटन इत्यादि गण्डिकाएँ हैं ।

चूलिका क्या है ? आदि के चार पूर्वों में चूलिकाएँ हैं, शेष पूर्वों में चूलिकाएँ नहीं हैं ।

दृष्टिवाद की संख्यात वाचनाएं, संख्यात अनुयोगद्वार, संख्यात वेद, संख्यात प्रतिपत्तियाँ,

संख्यात निर्युक्तियाँ और संख्यात संग्रहणियाँ हैं । वह बारहवाँ अंग है । एक श्रुतस्कन्ध है और चौदह पूर्व हैं । संख्यात वस्तु, संख्यात चूलिकावस्तु, संख्यात प्राभृत, संख्यात प्राभृतप्राभृत, संख्यात प्राभृतिकाएं, संख्यात प्राभृतिकाप्राभृतिकाएं हैं । संख्यात सहस्रपद हैं । संख्यात अक्षर और अनन्त गम हैं । अनन्त पर्याय, परिमित त्रस तथा अनन्त स्थावरों का वर्णन है । शाश्वत, कृत-निबद्ध, निकाचित जिन-प्रणीत भाव कहे गए हैं । प्रज्ञापन, प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन से स्पष्ट किए गए हैं । दृष्टिवाद का अध्येता तद्रूप आत्मा और भावों का सम्यक् ज्ञाता तथा विज्ञाता बन जाता है । इस प्रकार चरण-करण की प्ररूपणा इस अङ्ग में की गई है ।

[१५५] इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक में अनन्त जीवादि भाव, अनन्त अभाव, अनन्त हेतु, अनन्त अहेतु, अनन्त कारण, अनन्त अकारण, अनन्त जीव, अनन्त अजीव, अनन्त भवसिद्धिक, अनन्त अभवसिद्धिक, अनन्त सिद्ध और अनन्त असिद्ध कथन हैं ।

[१५६] भाव और अभाव, हेतु और अहेतु, कारण-अकारण, जीव-अजीव, भव्य-अभव्य, सिद्ध-असिद्ध, विषयों का वर्णन है ।

[१५७] इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक की भूतकाल में अनन्त जीवों ने विराधना करके चार गतिरूप संसार कान्तार में भ्रमण किया । इसी प्रकार वर्तमानकाल में परिमित जीव आज्ञा से विराधना करके चार गतिरूप संसार में भ्रमण कर रहे हैं—इसी प्रकार द्वादशाङ्ग गणिपिटक की आगामी काल में अनन्त जीव आज्ञा से विराधना करके चार गतिरूप संसार कान्तार में भ्रमण करेंगे ।

इस द्वादशाङ्ग गणिपिटक की भूतकाल में आज्ञा से आराधना करके अनन्त जीव संसार रूप अटवी को पार कर गए । वर्तमान काल में परिमित जीव संसार को पार करते हैं । इस द्वादशाङ्ग रूप गणिपिटक की आज्ञा से आराधना करके अनन्त जीव चार गति रूप संसार को पार करेंगे ।

यह द्वादशाङ्ग गणिपिटक न कदाचित् नहीं था अर्थात् सदैवकाल था, न वर्तमान काल में नहीं है अर्थात् वर्तमान में है, न कदाचित् न होगा अर्थात् भविष्य में सदा होगा । भूतकाल में था, वर्तमान काल में है और भविष्य में रहेगा । यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत और अक्षय है, अव्यय है । अवस्थित नित्य है । कभी नहीं थे, ऐसा नहीं है, कभी नहीं है, ऐसा नहीं है और कभी नहीं होंगे, ऐसा भी नहीं है । इसी प्रकार यह द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक—कभी न था, वर्तमान में नहीं है, भविष्य में नहीं होगा, ऐसा नहीं है । भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में भी रहेगा । यह ध्रुव है, नियत है, शाश्वत है, अक्षय है, अव्यय है, अवस्थित है और नित्य है । वह संक्षेप में चार प्रकार का है, द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । श्रुतज्ञानी - उपयोग लगाकर द्रव्य से सब द्रव्यों को जानता और देखता है । क्षेत्र से सब क्षेत्र को जानता और देखता है । काल से सर्व काल को जानता व देखता है । भाव से सब भावों को जानता और देखता है ।

[१५८-१६३] अक्षर, संज्ञी, सम्यक्, सादि, सपर्यवसित, गमिक और अङ्गप्रविष्ट, ये सात और इनके सप्रतिपक्ष सात मिलकर श्रुतज्ञान के चौदह भेद हो जाते हैं । बुद्धि के जिन आठ गुणों से आगम शास्त्रों का अध्ययन एवं श्रुतज्ञान का लाभ देखा गया है, वे इस प्रकार

हैं—विनययुक्त शिष्य गुरु के मुखारविन्द से निकले हुए वचनों को सुनना चाहता है । जब शंका होती है तब गुरु को प्रसन्न करता हुआ पूछता है । गुरु के द्वारा कहे जाने पर सम्यक् प्रकार से श्रवण करता है, सुनकर उसके अर्थ को ग्रहण करता है । अनन्तर पूर्वापर अविरोध से पर्यालोचन करता है, तत्पश्चात् यह ऐसे ही है जैसा गुरुजी फरमाते हैं, यह मानता है । इसके बाद निश्चित अर्थ को हृदय में सम्यक् रूप से धारण करता है । फिर जैसा गुरु ने प्रतिपादन किया था, उसके अनुसार आचरण करता है ।

शिष्य मौन रहकर सुने, फिर हुंकार—ऐसा कहे । उसके बाद 'यह ऐसे ही है जैसा गुरुदेव फरमाते हैं' इस प्रकार श्रद्धापूर्वक माने । अगर शंका हो तो पूछे फिर मीमांसा करे । तब उत्तरोत्तर गुणप्रसंग से शिष्य पारगामी हो जाता है । तत्पश्चात् वह चिन्तन-मनन आदि के बाद गुरुवत् भाषण और शास्त्र की प्ररूपणा करे । ये गुण शास्त्र सुनने के कथन किए गए हैं ।

प्रथम वाचना में सूत्र और अर्थ कहे । दूसरी में सूत्रस्पर्शिक निर्युक्ति कहे । तीसरी वाचना में सर्व प्रकार नय-निक्षेप आदि से पूर्ण व्याख्या करे । इस तरह अनुयोग की विधि शास्त्रकारों ने प्रतिपादन की है । यहां श्रुतज्ञान का विषय, श्रुत का वर्णन, परोक्षज्ञान का वर्णन हुआ । इस प्रकार श्रीनन्दी सूत्र भी परिसमाप्त हुआ ।

### परिशिष्ट-१-अनुज्ञानन्दी

[१] वह अनुज्ञा क्या है ? अनुज्ञा छह प्रकार से है—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव । वह नाम अनुज्ञा क्या है ? जिसका जीव या अजीव, जीवो या अजीवो, तदुभय या तदुभयो अनुज्ञा ऐसा नाम हो वह नाम अनुज्ञा । वह स्थापना अनुज्ञा क्या है ? जो भी कोई काष्ठ, पत्थर, लेप, चित्र, ग्रंथिम, वेष्टिम, पूरिम, संघातिम ऐसे एक या अनेक अक्ष आदि में सद्भाव या असद्भाव स्थापना करके अनुज्ञा होती है, वह स्थापना अनुज्ञा । नाम और स्थापनामें क्या विशेषता है ? नाम यावत्कथित है, स्थापना इत्वरकालिक या यावत्कथित दोनों होती है ।

वह द्रव्यानुज्ञा क्या है ? द्रव्यानुज्ञा आगम से और नोआगम से है । वह आगम द्रव्यानुज्ञा क्या है ? जिसका अनुज्ञा ऐसा पद शिक्षा, स्थित, जीत, मित, परिजित, नामसम, घोपसम, अहिनाक्षर, अनल्पाक्षर, अव्याधिअक्षर, अस्खलित, अमिलित, अवद्यामिलित, प्रतिपूर्ण, प्रतिपूर्णघोप, कंठौष्ठविप्रमुक्त, गुरुवचनप्राप्त, ऐसे वाचना, पृच्छना, परावर्तना, धर्मकथा और अनुप्रेक्षा से अनुवयोग द्रव्य ऐसे करके नैगम नयानुसार एक द्रव्यानुज्ञा, दो, तीन ऐसे जितनी भी अनुपदेशीत हो उतनी द्रव्यानुज्ञा होती है । इसी तरह व्यवहारनय से एक या अनेक द्वारा अनुपदिष्ट वह आगम से एक द्रव्यानुज्ञा को कोई कोई मान्य नहीं करते है । तीनों शब्द नय से जो जानता है वह आगम से द्रव्यानुज्ञा समझना ।

नो आगम से द्रव्यानुज्ञा के तीन भेद है । ज्ञशरीर से, भव्य शरीर से और उभय से व्यतिरिक्त । वह ज्ञशरीर द्रव्यानुज्ञा क्या है ? पद में रहे हुए अविकार को जो ज्ञानरूपी शरीर से जाने वह ज्ञशरीरद्रव्यानुज्ञा । भव्य शरीर द्रव्यानुज्ञा क्या है ? जैसे कि-कैसे पतां कि यह मधुकुम्भ है घृतकुम्भ ? उभयव्यतिरिक्त द्रव्यानुज्ञा क्या है ? वह तीन प्रकार से है । लौकिक,



कुप्रावचनिक और लोकोत्तर । लौकिक द्रव्यानुज्ञा तीन प्रकार से है—सचित्त, अचित्त और मिश्रा राजा, युवराज आदि जो हाथी वगैरह के जो देते है वह सचित्त द्रव्यानुज्ञा, आसन-छत्रादि देवे तो वह हुई अचित्त अनुज्ञा और अम्बाडी सहित हाथी या चामर सहित अश्व आदि देवे तो वह हुई मिश्र अनुज्ञा ।

ईसी तरह कुप्रावचनिक और लोकोत्तर द्रव्यानुज्ञा के भी सचित्त-अचित्त एवं मिश्र यह तीनों भेद समझ लेना ।

वह क्षेत्रानुज्ञा क्या है ? क्षेत्र का जो अवग्रह देता है वह क्षेत्रानुज्ञा हुई । ईसी तरह काल से दी जाती अनुज्ञा कालानुज्ञा है । भाव से अनुज्ञा के तीन भेद है — लौकिक, कुप्रावचनिक और लोकोत्तर । पहले दो भेद में क्रोधादि भाव आते है और लोकोत्तर में आचार आदि की शिक्षा समाविष्ट होती है ।

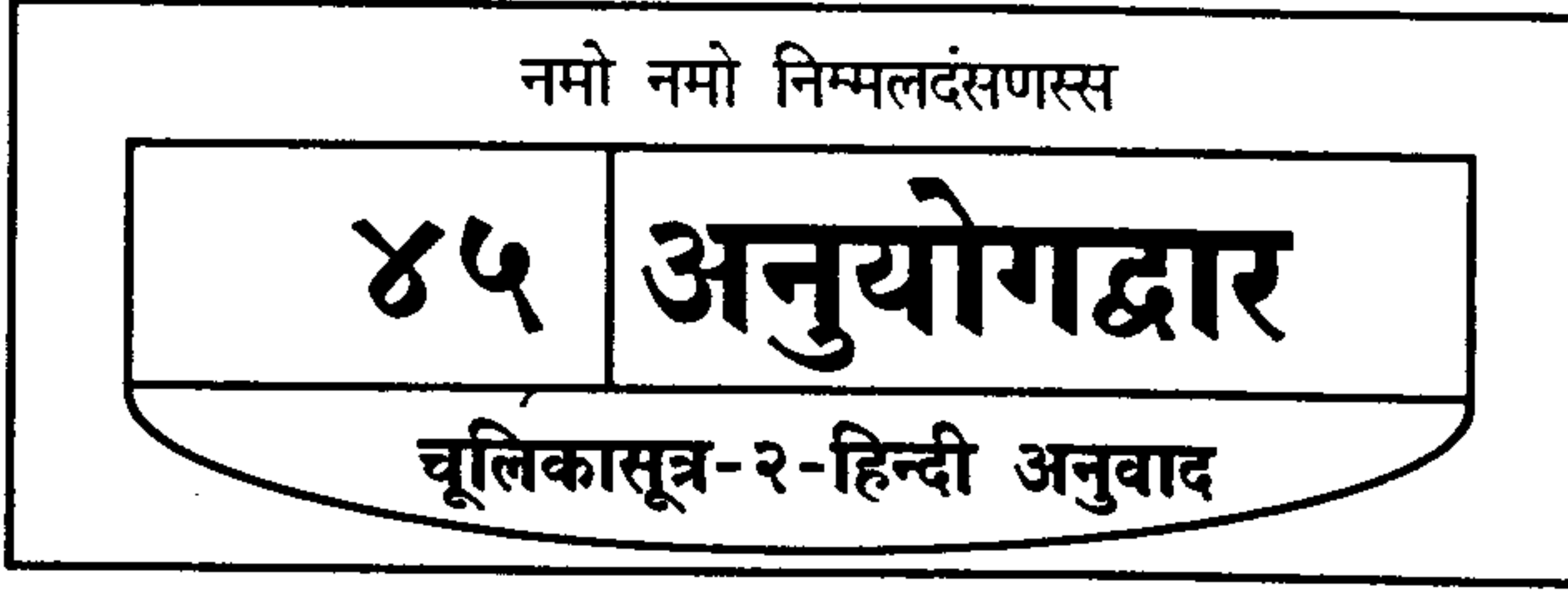
[२-४] ऋषभसेन नामक आदिनाथ प्रभु के शिष्यने अनुज्ञा विषयक कथन किया उसका अनुज्ञा, उरीमणी, नमणी...इत्यादि बीस नाम है ।

### परिशिष्ट-२-जोगनन्दी

ज्ञान के पांच भेद है—आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवल । उसमें चार ज्ञानों की स्थापना, उद्देश, समुद्देश एवं अनुज्ञा नहीं है । श्रुतज्ञान के उद्देश, समुद्देश और अनुज्ञा के अनुयोग प्रवर्तमान है । यदि श्रुतज्ञान का उद्देश आदि है तो वह अंगप्रविष्ट के है या अंगबाह्य के ? दोनों के उद्देश आदि होते है । जो अंगबाह्य के उद्देश आदि है तो वह कालिक के है या उत्कालिक के ? दोनों के उद्देश आदि है । क्या आवश्यक के उद्देशक आदि है या आवश्यक व्यतिरिक्त के ? दोनों के उद्देश आदि है । आवश्यक में भी सामायिक आदि छह उद्देश-समुद्देश और अनुज्ञा है । अर्थात् “दशवेयालिय से लेकर “महापच्चवखाण” पर्यंत के उत्कालिक सूत्र और “उत्तरज्झयणं” से लेकर “तेयग्गिनिसग्गाणं” तक के कालिक सूत्रों के उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा प्रवर्तमान है । ईसी तरह अंगप्रविष्ट में भी “आयार” से “दृष्टिवाद” तक के सूत्र के उद्देश-समुद्देश और अनुज्ञा होती है ।

क्षमाश्रमण अर्थात् साधु के पास से सूत्र-अर्थ एवं तदुभव के उद्देश-समुद्देश एवं अनुज्ञा के लिए मैं साधु-साध्वी को सूचित करता हूं ।

**४४ नंदीसूत्र-चूलिका-१-का**  
**मुनि दीपरत्नसागर कृत हिन्दी अनुवाद पूर्ण**



[१] ज्ञान के पांच प्रकार हैं । आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यव-ज्ञान, केवलज्ञान ।

[२] इन ज्ञानों में से चार ज्ञान स्थाप्य हैं, स्थापनीय हैं । क्योंकि ये चारों ज्ञान (गुरु द्वारा) उपदिष्ट नहीं होते हैं, समुपदिष्ट नहीं होते हैं और न इनकी आज्ञा दी जाती है । किन्तु श्रुतज्ञान का उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग होता है ।

[३] यदि श्रुतज्ञान में उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति होती है तो वह उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति अंगप्रविष्ट श्रुत में होती है । अथवा अंगबाह्य में होती है ? अंगप्रविष्ट तथा अंगबाह्य दोनों आगम में उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवर्तित होते हैं ।

[४] भगवन् ! यदि अंगबाह्य श्रुत में उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग की प्रवृत्ति होती है तो क्या वह कालिकश्रुत में होती है अथवा उत्कालिक श्रुत में ? कालिकश्रुत और उत्कालिक श्रुत दोनों में उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग प्रवृत्त होते हैं, किन्तु यहाँ उत्कालिक श्रुत का उद्देश यावत् अनुयोग प्रारम्भ किया जायेगा ।

[५] यदि उत्कालिक श्रुत के उद्देश आदि होते हैं तो क्या वे आवश्यक के होते हैं अथवा आवश्यकव्यतिरिक्त के होते हैं ? आयुष्यमन् ! यद्यपि आवश्यक और आवश्यक से भिन्न दोनों के उद्देश आदि होते हैं परन्तु यहाँ आवश्यक का अनुयोग प्रारम्भ किया जा रहा है ।

[६] यदि यह अनुयोग आवश्यक का है तो क्या वह एक अंग रूप है या अनेक अंग रूप ? एक श्रुतस्कन्ध रूप है या अनेक श्रुतस्कन्ध रूप ? एक अध्ययन रूप है या अनेक अध्ययन रूप ? एक उद्देशक रूप है या अनेक उद्देशक रूप ? आवश्यकसूत्र एक या अनेक अंग रूप नहीं है । एक श्रुतस्कन्ध रूप है । अनेक अध्ययन रूप है । या अनेक उद्देशक रूप नहीं है ।

[७] आवश्यक का निक्षेप करूंगा । इसी तरह श्रुत, स्कन्ध एवं अध्ययन शब्दों का निक्षेप करूंगा ।

[८] यदि निक्षेप्ता जिस वस्तु के समस्त निक्षेपों को जानता हो तो उसे उन सबका निरूपण करना चाहिये और यदि न जानता हो तो चार निक्षेप तो करना ही चाहिये ।

[९] आवश्यक का स्वरूप क्या है ? आवश्यक चार प्रकार का है । नाम-आवश्यक, स्थापना-आवश्यक, द्रव्य-आवश्यक, भाव-आवश्यक ।

[१०] नाम-आवश्यक का स्वरूप क्या है ? जिस किसी जीव या अजीव का अथवा

जीवों या अजीवों का, तदुभव का अथवा तदुभयों का 'आवश्यक' ऐसा नाम रख लिया जाता है, उसे नाम-आवश्यक हैं ।

[११] स्थापना-आवश्यक क्या है ? काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पुस्तकर्म, लेप्यकर्म, ग्रंथिम, वेष्टिम, पूरिम, संघातिम, अक्ष अथवा वराटक में एक अथवा अनेक आवश्यक रूप से जो सद्भाव अथवा असद्भाव रूप स्थापना की जाती है, वह स्थापना-आवश्यक है ।

[१२] नाम और स्थापना में क्या भिन्नता है ? नाम यावत्कथिक होता है, किन्तु स्थापना इत्वरिक और यावत्कथिक, दोनों प्रकार की होती है ।

[१३] द्रव्य-आवश्यक क्या है ? द्रव्यावश्यक दो प्रकार का है । आगमद्रव्यावश्यक, नोआगमद्रव्यावश्यक ।

[१४] आगमद्रव्य-आवश्यक क्या है ? जिस ने 'आवश्यक' पद को सीख लिया है, स्थित कर लिया है, जित कर लिया है, मित कर लिया है, परिजित कर लिया है, नामसम कर लिया है, घोषसम किया है, अहीनाक्षर किया है, अनत्यक्षर किया है, व्यतिक्रमरहित उच्चारण किया है, अस्खलित किया है, पदों को मिश्रित करके उच्चारण नहीं किया है, एक शास्त्र के भिन्न-भिन्न स्थानगत एकार्थक सूत्रों को एकत्रित करके पाठ नहीं किया है, प्रतिपूर्ण किया है, प्रतिपूर्णघोष किया है, कंठादि से स्पष्ट उच्चारण किया है, गुरु के पास वाचना ली है, जिससे वह उस शास्त्र की वाचना, पृच्छना, परावर्तना, धर्मकथा से भी युक्त है । किन्तु अनुप्रेक्षा से रहित होने से वह आगमद्रव्य-आवश्यक है । क्योंकि आवश्यक के उपयोगरहित होने आगमद्रव्य-आवश्यक कहा जाता है ।

[१५] नैगमनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्य-आवश्यक है । दो अनुपयुक्त आत्माएँ दो आगमद्रव्य-आवश्यक हैं । इसी प्रकार जितनी भी अनुपयुक्त आत्माएँ हैं, वे सभी उतनी ही नैगमनय की अपेक्षा आगमद्रव्य-आवश्यक हैं । इसी प्रकार व्यवहारनय भी जानना । संग्रहनय एक अनुपयुक्त आत्मा एक द्रव्य-आवश्यक और अनेक अनुपयुक्त आत्माएँ अनेक द्रव्य-आवश्यक हैं, ऐसा स्वीकार नहीं करता है । वही सभी आत्माओं को एक द्रव्य-आवश्यक ही मानता है । ऋजुसूत्रनय भी भेदों को स्वीकार नहीं करता । तीनों शब्दनय ज्ञायक यदि अनुपयुक्त हो तो उसे अवस्तु मानते हैं । क्योंकि जो ज्ञायक है वह उपयोगशून्य नहीं होता है और जो उपयोगरहित है उसे ज्ञायक नहीं कहा जा सकता ।

[१६] नोआगमद्रव्य-आवश्यक क्या है ? वह तीन प्रकार का है । ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक, भव्यशरीरद्रव्यावश्यक, ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्यावश्यक ।

[१७] ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक क्या है ? आवश्यक इस पद के अर्थाधिकार को जानने वाले के चैतन्य से रहित, आयुकर्म के क्षय होने से प्राणों से रहित, आहार-परिणतिजनित वृद्धि से रहित, ऐसे जीवविप्रमुक्त शरीर को शैयागत, संस्तारकगत अथवा सिद्धशिलागत देखकर कोई कहे—'अहो ! इस शरीररूप पुद्गलसंघात ने जिनोपदिष्ट भाव से आवश्यक पद का अध्ययन किया था, प्रज्ञापित किया था, समझाया था, दिखाया था, निदर्शित किया था, उपदिशित कराया था ।' ऐसा शरीर ज्ञायकशरीरद्रव्य-आवश्यक है । इसका समर्थक कोई दृष्टान्त है ? यह मधु का घड़ा था, यह घी का घड़ा था । यह ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक का स्वरूप है ।

[१८] भव्यशरीरद्रव्यावश्यक क्या है ? समय पूर्ण होने पर जो जीव जन्मकाल में



योनिस्थान से बाहर निकला और उसी प्राप्त शरीर द्वारा जिनोपदिष्ट भावानुसार भविष्य में आवश्यक पद को सीखेगा, किन्तु अभी सीख नहीं रहा है, ऐसे उस जीव का वह शरीर भव्यशरीरद्रव्यावश्यक है । इसका कोई दृष्टान्त है ? यह मधुकुंभ होगा, यह घृतकुंभ होगा । यह भव्यशरीरद्रव्यावश्यक का स्वरूप है ।

[१९] ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यावश्यक क्या है ? वह तीन प्रकार का है । लौकिक, कुप्रावचनिक, लोकोत्तरिक ।

[२०] भगवन् ! लौकिक द्रव्यावश्यक क्या है ? जो ये राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि रात्रि के व्यतीत होने से प्रभातकालीन किंचिन्मात्र प्रकाश होने पर, पहले की अपेक्षा अधिक स्फुट प्रकाश होने, विकसित कमलपत्रों एवं मृगों के नयनों के ईषद् उन्मीलन से युक्त, प्रभात के होने तथा रक्त अशोकवृक्ष, पलाशपुष्प, तोते के मुख और गुंजा के अर्ध भाग के समान रक्त, सरोवरवर्ती कमलवनों को विकसित करने वाले और अपनी सहस्र रश्मियों से दिवसविधायक तेज से देदीप्यमान सूर्य के उदय होने पर मुख को धोना, दंतप्रक्षालन, तेलमालिश करना, स्नान, कंधी आदि से केशों को संवारना, मंगल के लिए सरसों, पुष्प, दूर्वा आदि का प्रक्षेपण, दर्पण में मुख देखना, धूप जलाना, पुष्पों और पुष्पमालाओं को लेना, पान, खाना, स्वच्छ वस्त्र पहनना आदि करते हैं और उसके बाद राजसभा, देवालय, आरामगृह, उद्यान, सभा अथवा प्रपा की ओर जाते हैं, वह लौकिक द्रव्यावश्यक है ।

[२१] कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक क्या है ? जो ये चरक, चीरिक, चर्मखंडिक, भिक्षोण्डक, पांडुरंग, गौतम, गोब्रतिक, गृहीधर्मा, धर्मचिन्तक, अविरुद्ध, विरुद्ध, वृद्धश्रावक आदि पाषंडस्थ रात्रि के व्यतीत होने के अनन्तर प्रभात काल में यावत् सूर्य के जाज्वल्यमान तेज से दीप्त होने पर इन्द्र, स्कन्ध, रुद्र, शिव, वैश्रमण अथवा देव, नाग, यक्ष, भूत, मुकुन्द, आयदिवी, कोट्टक्रियादेवी आदि की उपलेपन, समार्जन, स्नपन, धूप, पुष्प, गंध, माला आदि द्वारा पूजा करने रूप द्रव्यावश्यक करते हैं, वह कुप्रावचनिक द्रव्यावश्यक है ।

[२२] लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक क्या है ? जो श्रमण के गुणों से रहित हों, छह काय के जीवों के प्रति अनुकम्पा न होने के कारण अश्व की तरह उद्दाम हों, हस्तिवत् निरंकुश हों, स्निग्ध पदार्थों के लेप से अंग-प्रत्यंगों को कोमल, सलौना बनाते हों, शरीर को धोते हों, अथवा केशों का संस्कार करते हों, ओठों को मुलायम रखने के लिये मक्खन लगाते हों, पहनने के वस्त्रों को धोने में आसक्त हों और जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा की उपेक्षा कर स्वच्छंद विचरण करते हों, किन्तु उभयकाल आवश्यक करने के लिये तत्पर हों तो उनकी वह क्रिया लोकोत्तरिक द्रव्यावश्यक है । इस प्रकार यह ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यावश्यक का स्वरूप जानना चाहिये ।

[२३] भावावश्यक क्या है ? दो प्रकार का है—आगमभावावश्यक और नोआगमभावावश्यक ।

[२४] आगमभावावश्यक क्या है ? जो आवश्यक पद का ज्ञाता हो और साथ ही उपयोग युक्त हो, वह आगमभावावश्यक है ।

[२५] नोआगमभावावश्यक किसे कहते हैं ? तीन प्रकार का है । लौकिक, कुप्रावचनिक

और लोकोत्तरिक ।

[२६] लौकिक भावावश्यक क्या है ? दिन के पूर्वार्ध में महाभारत का और उत्तरार्ध में रामायण का वाचन करने, श्रवण करने को लौकिक नोआगमभावावश्यक कहते हैं ।

[२७] कुप्रावचनिक भावावश्यक क्या है । जो ये चरक, चीरक यावत् पाषण्डस्थ यज्ञ, अंजलि, हवन, जाप, धूपप्रक्षेप या बैल जैसी ध्वनि, वंदना आदि भावावश्यक करते हैं, वह कुप्रावचनिक भावावश्यक है ।

[२८] लोकोत्तरिक भावावश्यक क्या है ? दत्तचित्त और मन की एकाग्रता के साथ, शुभ लेश्या एवं अध्यवसाय से सम्पन्न, यथाविधि क्रिया को करने के लिये तत्पर अध्यवसायों से सम्पन्न होकर, तीव्र आत्मोत्साहपूर्वक उसके अर्थ में उपयोगयुक्त होकर एवं उपयोगी करणों को नियोजित कर, उसकी भावना से भावित होकर जो ये श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविकायें अन्यत्र मन को संयोजित किये बिना उभयकाल आवश्यक करते हैं, वह लोकोत्तरिक भावावश्यक है ।

[२९-३२] उस आवश्यक के नाना घोष और अनेक व्यंजन वाले एकार्थक अनेक नाम इस प्रकार हैं—आवश्यक, अवश्यकरणीय, ध्वनिग्रह, विशोधि, अध्ययन-षट्कवर्ग, न्याय, आराधना और मार्ग । श्रमणों और श्रावकों द्वारा दिन एव रात्रि के अन्त में अवश्य करने योग्य होने के कारण इसका नाम आवश्यक है । यह आवश्यक का स्वरूप है ।

[३३] श्रुत क्या है ? श्रुत चार प्रकार का है—नामश्रुत, स्थापनाश्रुत, द्रव्यश्रुत, भावश्रुत ।

[३४] नामश्रुत क्या है ? जिस किसी जीव या अजीव का, जीवों या अजीवों का, उभय का अथवा उभयों का 'श्रुत' ऐसा नाम रख लिया जाता है, वह नामश्रुत है ।

[३५] स्थापनाश्रुत क्या है ? काष्ठ यावत् कौड़ी आदि में 'यह श्रुत है', ऐसी जो स्थापना की जाती है, वह स्थापनाश्रुत है । नाम और स्थापना में क्या विशेषता है ? नाम यावत्कथिक होता है, जबकि स्थापना इत्वरिक और यावत्कथिक दोनों प्रकार की होती है ।

[३६] द्रव्यश्रुत क्या है ? दो प्रकार का है । जैसे—आगमद्रव्यश्रुत, नोआगमद्रव्यश्रुत ।

[३७] आगम की अपेक्षा द्रव्यश्रुत का क्या स्वरूप है ? जिस साधु आदि ने श्रुत यह पद सीखा है, स्थिर, जित, मित, परिजित किया है यावत् जो ज्ञायक है वह अनुपयुक्त नहीं होता है आदि । यह आगम द्रव्यश्रुत का स्वरूप है ।

[३८] नोआगमद्रव्यश्रुत क्या है ? तीन प्रकार का है । ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुत, भव्यशरीरद्रव्यश्रुत, ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यश्रुत ।

[३९] ज्ञायकशरीर-द्रव्यश्रुत क्या है ? श्रुतपद के अर्थाधिकार के ज्ञाता के व्यपगत, च्युत, च्यावित, त्यक्त, जीवरहित शरीर को शय्यागत, संस्तारकगत अथवा सिद्धाशिला देखकर कोई कहे—अहो ! इस शरीररूप परिणत पुद्गलसंघात द्वारा जिनोपदेशित भाव से 'श्रुत' इस पद की गुरु से वाचना ली थी, प्रज्ञापित, प्ररूपित, दर्शित, निदर्शित, उपदर्शित किया था, उसका वह शरीर ज्ञायकशरीरद्रव्यावश्यक है । इसका दृष्टान्त ? यह मधु का घड़ा है, यह घी का घड़ा है । इसी प्रकार निर्जीव शरीर भूतकालीन श्रुतपर्याय का आधाररूप होने से ज्ञायकशरीरद्रव्यश्रुत कहलाता है ।

[४०] भव्यशरीरद्रव्यश्रुत क्या है ? समय पूर्ण होने पर जो जीव योनि में से निकला

और प्राप्त शरीरसंघात द्वारा भविष्य में जिनोपदिष्ट भावानुसार श्रुतपद को सीखेगा, किन्तु वर्तमान में सीख नहीं रहा है, ऐसे उस जीव का वह शरीर भव्यशरीर-द्रव्यश्रुत है । इसका दृष्टान्त ? 'यह मधुघट है, यह घृतघट है' ऐसा कहा जाता है ।

[४१] ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त-द्रव्यश्रुत क्या है ? ताड़पत्रों अथवा पत्रों के समूहरूप पुस्तक में लिखित श्रुत ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यश्रुत है । अथवा वह पांच प्रकार का है—अंडज बोंडज, कीटज, वालज, बल्कज । अंडज किसे कहते हैं ? हंसगर्भादि से बने सूत्र को अंडज कहते हैं । बोंडज किसे कहते हैं ? कपास या रुई से बनाये गये सूत्र को कहते हैं । कीटजसूत्र किसे कहते हैं । वह पांच प्रकार का है—पट्ट, मलय, अशुक, चीनांशुक, कृमिराग । वालज सूत्र के पांच प्रकार हैं—और्णिक, औष्ट्रिक, मृगलोमिक, कौतव, किट्टिस । बल्कज किसे कहते हैं ? सन आदि से निर्मित सूत्र को कहते हैं ।

[४२] भावश्रुत क्या है ? दो प्रकार का है । यथा—आगमभावश्रुत और नोआगम-भावश्रुत ।

[४३] आगमभावश्रुत क्या है ? जो श्रुत का ज्ञाता होने के साथ उसके उपयोग से भी सहित हो, वह आगमभावश्रुत है ।

[४४] नोआगम की अपेक्षा भावश्रुत क्या है ? दो प्रकार का है । लौकिक, लोकोत्तरिक ।

[४५] लौकिक (नोआगम) भावश्रुत क्या है ? अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा अपनी स्वच्छन्द बुद्धि और मति से रचित महाभारत, रामायण, भीमासुरोक्त, अर्थशास्त्र, घोटकमुख, शटकभद्रिका, कार्पासिक, नागसूत्र, कनकसप्तति, वैशेकिशास्त्र, बौद्धशास्त्र, कामशास्त्र, कपिलशास्त्र, लोकायतशास्त्र, षष्ठितंत्र, माठरशास्त्र, पुराण, व्याकरण, नाटक आदि अथवा बहत्तर कलायें और सांगोपांग चार वेद लौकिक नोआगमभावश्रुत हैं ।

[४६] लोकोत्तरिक (नोआगम) भावश्रुत क्या है ? उत्पन्न केवलज्ञान और केवलदर्शन को धारण करनेवाले, भूत-भविष्यत् और वर्तमान कालिक पदार्थों को जानने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रिलोकवर्ती जीवों द्वारा अवलोकित, पूजित, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहंत भगवन्तों द्वारा प्रणीत आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अन्तकृद्दशांग, अनुत्तरोपपातिकदशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकश्रुत, दृष्टिवाद रूप द्वादशांग, गणिपिटके लोकोत्तरिक नोआगम भावश्रुत हैं ।

[४७-४९] उदात्तादि विविध ग्यंगं तथा ककारादि अनेक व्यंजनों से युक्त उस श्रुत के एकार्थवाचक नाम इस प्रकार हैं—श्रुत, सूत्र, ग्रन्थ, सिद्धान्त, शासन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापना, आगम, ये सभी श्रुत के एकार्थक पर्याय हैं । इस प्रकार से श्रुत की वक्तव्यता समाप्त हुई ।

[५०] स्कन्ध क्या है ? स्कन्ध के चार प्रकार हैं । नामस्कन्ध, स्थापनास्कन्ध, द्रव्यस्कन्ध, भावस्कन्ध ।

[५१] नामस्कन्ध क्या है ? जिस किसी जीव या अजीव का यावत् स्कन्ध यह नाम रखा जाता है, वह नामस्कन्ध है । स्थापनास्कन्ध क्या है ? काष्ठादि में 'यह स्कन्ध है' इस प्रकार का जो आरोप किया जाता है, वह स्थापनास्कन्ध है । नाम और स्थापना में क्या अन्तर है ? नाम यावत्कथिक होता है परन्तु स्थापना इत्वरिक और यावत्कथिक दोनों होती है ।



[५२] द्रव्यस्कन्ध क्या है ? दो प्रकार का है । आगमद्रव्यस्कन्ध और नोआगमद्रव्यस्कन्ध । आगमद्रव्यस्कन्ध क्या है ? जिसने स्कन्धपद को गुरु से सीखा है, स्थित किया है, जित, मित किया है यावत् नैगमनय की अपेक्षा एक अनुपयुक्त आत्मा आगम से एक द्रव्यस्कन्ध है, दो अनुपयुक्त आत्मायें दो, इस प्रकार जितनी भी अनुपयुक्त आत्मायें हैं, उतने ही आगमद्रव्यस्कन्ध जानना । इसी तरह व्यवहारनय को भी जानना । संग्रहनय एक अनुपयुक्त आत्मा एक द्रव्यस्कन्ध और अनेक अनुपयुक्त आत्मायें अनेक आगमद्रव्यस्कन्ध ऐसा स्वीकार नहीं करता, किन्तु सभी को एक ही आगमद्रव्यस्कन्ध मानता है । ऋजुसूत्रनय से एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्यस्कन्ध है । वह भेदों को स्वीकार नहीं करता है । तीनों शब्दनय ज्ञायक यदि अनुपयुक्त हो तो उसे अवस्तु मानते हैं । क्योंकि जो ज्ञायक है वह अनुपयुक्त नहीं होता है ।

नोआगमद्रव्यस्कन्ध क्या है ? तीन प्रकार का है । ज्ञायकशरीरद्रव्यस्कन्ध, भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध और ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध । ज्ञायकशरीरद्रव्यस्कन्ध क्या है ? स्कन्धपद के अर्थाधिकार को जानने वाले यावत् जिसने स्कन्ध पद का अध्ययन किया था, प्रतिपादन किया था आदि पूर्ववत् । भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध क्या है ? समय पूर्ण होने पर यथाकाल कोई योनिस्थान से बाहर निकला और वह यावत् भविष्य में 'स्कन्ध' इस पद के अर्थ को सीखेगा, उस जीव का शरीर भव्यशरीरद्रव्यस्कन्ध है । इसका दृष्टान्त ? भविष्य में यह मधुकुंभ है, यह घृतकुंभ है । ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध क्या है ? उसके तीन प्रकार हैं । सचित्त, अचित्त और मिश्र ।

[५३] सचित्तद्रव्यस्कन्ध क्या है ? उसके अनेक प्रकार हैं । हय, स्कन्ध, गज, स्कन्ध, किन्नरस्कन्ध, किंपुरुषस्कन्ध, महोरगस्कन्ध, वृषभ, स्कन्ध । यह सचित्तद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है ।

[५४] अचित्तद्रव्यस्कन्ध स्वरूप है ? अनेक प्रकार का है । द्विप्रदेशिक स्कन्ध, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध यावत् दसप्रदेशिक स्कन्ध, संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध । यह अचित्तद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है ।

[५५] मिश्रद्रव्यस्कन्ध क्या है ? अनेक प्रकार का है । सेना का अग्रिम स्कन्ध, सेना का मध्यस्कन्ध, सेना का अंतिम स्कन्ध । यह मिश्रद्रव्यस्कन्ध का स्वरूप है ।

[५६] अथवा ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यस्कन्ध के तीन प्रकार हैं । कृत्स्नस्कन्ध, अकृत्स्नस्कन्ध, अनेकद्रव्यस्कन्ध ।

[५७] कृत्स्नस्कन्ध क्या है ? हयस्कन्ध, गजस्कन्ध यावत् वृषभस्कन्ध जो पूर्व में कहे, वही कृत्स्नस्कन्ध हैं । यही कृत्स्नस्कन्ध का स्वरूप है ।

[५८] अकृत्स्नस्कन्ध क्या है ? पूर्व में कहे गये द्विप्रदेशिक स्कन्ध आदि यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध हैं ।

[५९] अनेकद्रव्यस्कन्ध क्या है ? एकदेश अपचित्त और एकदेश उपचित्त भाग मिलकर उनका जो समुदाय बनता है, वह अनेकद्रव्यस्कन्ध है ।

[६०] भावस्कन्ध क्या है ? दो प्रकार का कहा है । आगमभावस्कन्ध, नोआगमभावस्कन्ध ।

[६१] आगमभावस्कन्ध क्या है ? स्कन्ध पद के अर्थ का उपयोगयुक्त ज्ञाता आगमभावस्कन्ध है ।

[६२] नोआगमभावस्कन्ध क्या है ? परस्पर-संबन्धित सामायिक आदि छह अध्ययनों के समुदाय के मिलने से निष्पन्न आवश्यकश्रुतस्कन्ध नोआगमभावस्कन्ध है ।

[६३-६५] उस भावस्कन्ध के विविध घोषों एवं व्यंजनों वाले एकार्थक नाम इस प्रकार हैं—गण, काय, निकाय, स्कन्ध, वर्ग, राशि, पुंज, पिंड, निकर, संघात, आकुल और समूह ये सभी भावस्कन्ध के पर्याय हैं ।

[६६-६९] आवश्यक के अर्थाधिकारों के नाम इस प्रकार हैं—सावद्योगविरति, उत्कीर्तन, गुणवत्प्रतिपत्ति, स्वलितनिन्दा, व्रणचिकित्सा और गुणधारणा । इस प्रकार से आवश्यकशास्त्र के समुदायार्थ का संक्षेप में कथन करके अब एक-एक अध्ययन का वर्णन करूंगा । उनके नाम यह हैं—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान । इन में से प्रथम सामायिक अध्ययन के चार अनुयोगद्वार हैं—उपक्रम, निक्षेप, अनुगम, नय ।

[७०] उपक्रम क्या है ? उपक्रम के छह भेद हैं । नाम-उपक्रम, स्थापना-उपक्रम, द्रव्य-उपक्रम, क्षेत्र-उपक्रम, काल-उपक्रम, भाव-उपक्रम । नाम और स्थापना-उपक्रम का स्वरूप नाम एवं स्थापना आवश्यक के समान जानना । द्रव्य-उपक्रम क्या है ? दो प्रकार का है—आगमद्रव्य-उपक्रम, नोआगमद्रव्य-उपक्रम इत्यादि पूर्ववत् जानना यावत् ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्य-उपक्रम के तीन प्रकार हैं । सचित्तद्रव्य-उपक्रम, अचित्तद्रव्य-उपक्रम, मिश्रशरीरद्रव्य-उपक्रम ।

[७१] सचित्तद्रव्योपक्रम क्या है ? तीन प्रकार का है । द्विपद, चतुष्पद और अपद । ये प्रत्येक उपक्रम भी दो-दो प्रकार के हैं—परिकर्मद्रव्योपक्रम, वस्तुविनाशद्रव्योपक्रम ।

[७२] द्विपद-उपक्रम क्या है ? नटों, नर्तकों, जलों, मलों, मौष्टिकों, वेलंबकों, कथकों, प्लवकों, तैरने वालों, लासकों, आख्यायकों, लंखों, मंखों, तूणिकों, तुंबवीणकों, कावडियाओं तथा मागधों आदि दो पैर वालों का परिकर्म और विनाश करने रूप उपक्रम द्विपदद्रव्योपक्रम है ।

[७३] चतुष्पदोपक्रम क्या है ? चार पैर वाले अश्व, हाथी आदि पशुओं के उपक्रम चतुष्पदोपक्रम हैं ।

[७४] अपद-द्रव्योपक्रम क्या है ? आम, आम्रातक आदि बिना पैर वालों से संबन्धित उपक्रम अपद-उपक्रम हैं ।

[७५] अचित्तद्रव्योपक्रम क्या है ? खांड, गुड़, मिश्री अथवा राब आदि पदार्थों में उपायविशेष से मधुरता की वृद्धि करने और इनके विनाश करने रूप उपक्रम अचित्तद्रव्योपक्रम हैं ।

[७६] मिश्रद्रव्योपक्रम क्या है ? स्थासक, दर्पण आदि से विभूषित एवं मंडित अश्वाद सम्बन्धी उपक्रम मिश्रद्रव्योपक्रम हैं ।

[७७] क्षेत्रोपक्रम क्या है ? हल, कुलिक आदि के द्वारा जो क्षेत्र को उपक्रान्त किया जाता है, वह क्षेत्रोपक्रम है ।

[७८] कालोपक्रम क्या है ? नालिका आदि द्वारा जो काल का यथावत् ज्ञान होता

है, वह कालोपक्रम है ।

[७९] भावोपक्रम क्या है ? दो प्रकार हैं । आगमभावोपक्रम, नोआगमभावोपक्रम । भगवन् ! आगमभावोपक्रम क्या है ? उपक्रम के अर्थ को जानने के साथ जो उसके उपयोग से भी युक्त हो, वह आगमभावोपक्रम है । नोआगमभावोपक्रम दो प्रकार का है । प्रशस्त और अप्रशस्त । अप्रशस्त भावोपक्रम क्या है ? डोडणी ब्राह्मणी, गणिका और अमात्यादि का अन्य के भावों को जानने रूप उपक्रम अप्रशस्त नोआगमभावोपक्रम है । प्रशस्त भावोपक्रम क्या है ? गुरु आदि के अभिप्राय को यथावत् जानना प्रशस्त नोआगमभावोपक्रम है ।

[८०] अथवा उपक्रम के छह प्रकार हैं । आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता, अर्थाधिकार और समवतार ।

[८१] आनुपूर्वी क्या है ? दस प्रकार की है । नामानुपूर्वी, स्थापनानुपूर्वी, द्रव्यानुपूर्वी, क्षेत्रानुपूर्वी, कालानुपूर्वी, उत्कीर्तनानुपूर्वी, गणनानुपूर्वी, संस्थानानुपूर्वी, सामाचार्यनुपूर्वी, भावानुपूर्वी ।

[८२] नाम (स्थापना) आनुपूर्वी क्या है ? नाम और स्थापना आनुपूर्वी का स्वरूप नाम और स्थापना आवश्यक जैसा जानना । द्रव्यानुपूर्वी का स्वरूप भी ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी के पहले तक सभेद द्रव्यावश्यक के समान जानना चाहिये । ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यानुपूर्वी क्या है ? दो प्रकार की है । औपनिधिकी और अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी । इनमें से औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी स्थाप्य है । तथा—अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी के दो प्रकार हैं—नैगम-व्यवहारनयसंमत, संग्रहनयसंमत ।

[८३] नैगमनय और व्यवहारनय द्वारा मान्य अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी क्या है ? उसके पांच प्रकार हैं । अर्थपदप्ररूपणा, भंगसमुत्कीर्तनता, भंगोपदर्शिता, समवतार और अनुगम ।

[८४] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसंमत अर्थपद की प्ररूपणा क्या हैं ? त्र्यणुक्स्कन्ध आनुपूर्वी है । इसी प्रकार चतुष्प्रदेशिक आनुपूर्वी यावत् दसप्रदेशिक, संख्यातप्रदेशिक, असंख्यातप्रदेशिक और अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है । किन्तु परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वी रूप है । द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है । अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध यावत् अनेक अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ—अनेक आनुपूर्वी रूप हैं । अनेक पृथक्-पृथक् पुद्गल परमाणु अनेक अनानुपूर्वी रूप हैं । अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनेक अवक्तव्य हैं ।

[८५] नैगम-व्यवहारनयसंमत इस अर्थपदप्ररूपणा रूप आनुपूर्वी से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? इनसे भंगसमुत्कीर्तना की जाती है ।

[८६] नैगम-व्यवहारनयसंमत भंगसमुत्कीर्तन क्या है ? वह इस प्रकार है—आनुपूर्वी है, अनानुपूर्वी है, अवक्तव्य है, आनुपूर्वियाँ हैं, अनानुपूर्वियाँ हैं, (अनेक) अवक्तव्य हैं । अथवा—आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी है, आनुपूर्वी और अनानुपूर्वियाँ हैं, आनुपूर्वियाँ और अनानुपूर्वी है, आनुपूर्वियाँ और अनानुपूर्वियाँ हैं । अथवा—आनुपूर्वी और अवक्तव्यक है, आनुपूर्वी और (अनेक) अवक्तव्य हैं, आनुपूर्वियाँ और अवक्तव्य है, आनुपूर्वियाँ और (अनेक) अवक्तव्य हैं । अथवा—अनानुपूर्वी और अवक्तव्य है, अनानुपूर्वी और (अनेक) अवक्तव्य हैं, अनानुपूर्वियाँ और (एक) अवक्तव्य है, अनानुपूर्वियाँ और अनेक अवक्तव्य हैं । अथवा—आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य है, आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य हैं, आनुपूर्वी, अनानुपूर्वियाँ और



अवक्तव्य है, आनुपूर्वी, अनानुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य हैं, आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वी और अवक्तव्य है, आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वी और अनेक अवक्तव्य हैं, आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वियां और अवक्तव्य हैं, आनुपूर्वियां, अनानुपूर्वियां और अनेक अवक्तव्य हैं, इस प्रकार यह आठ भंग हैं । सब मिलकर छब्बीस भंग होते हैं ।

[८७] इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है ? उसके द्वारा भंगोपदर्शन किया जाता है ।

[८८] नैगम-व्यवहारनयसंमत भंगोपदर्शनता क्या है ? वह इस प्रकार है—त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी है, द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्य है, त्रिप्रदेशिक अनेक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ हैं, अनेक परमाणु पुद्गल अनानुपूर्वियाँ हैं, अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्यक हैं । त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और परमाणुपुद्गल आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी रूप है, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक परमाणुपुद्गल आनुपूर्वी और अनानुपूर्वियों का वाच्यार्थ है, अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और परमाणुपुद्गल आनुपूर्वियां और अनानुपूर्वी है, अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक परमाणुपुद्गल आनुपूर्वियों और अनानुपूर्वियों का रूप हैं । अथवा—त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी-अवक्तव्य रूप है, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी अवक्तव्यक रूप हैं, अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियाँ और अवक्तव्य रूप हैं, अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियों और अवक्तव्यकों रूप हैं । अथवा—

परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वी अवक्तव्यक रूप है, परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वी अवक्तव्यकों रूप है, अनेक परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वियों और अवक्तव्य रूप है, अनेक परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनानुपूर्वियों और अवक्तव्यकों रूप हैं । अथवा—त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यक रूप है, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यकों रूप है, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, अनेक परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वियों और अवक्तव्यक रूप है, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, अनेक परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी, अनानुपूर्वियों और अवक्तव्यकों रूप है, अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिकस्कन्ध आनुपूर्वियों, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक रूप है, अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियों, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यकों रूप है, अनेक त्रिप्रदेशिक स्कन्ध अनेक परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वियों, अनानुपूर्वियों और अवक्तव्यक रूप है, अनेक त्रिप्रदेशिकस्कन्ध, अनेक परमाणुपुद्गल और अनेक द्विप्रदेशिकस्कन्ध अनुपूर्वियों—अनानुपूर्वियों—अवक्तव्यकों रूप हैं ।

[८९] समवतार क्या है ? नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं ? क्या आनुपूर्वीद्रव्यों में समवतरित होते हैं, अनानुपूर्वीद्रव्यों में अथवा अवक्तव्यकद्रव्यों में समवतरित होते हैं ? आयुष्मन् ! नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य केवल आनुपूर्वीद्रव्यों में समवतरित होते हैं । नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वीद्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं ? क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में समवतरित होते हैं ? अनानुपूर्वीद्रव्यों में या अवक्तव्यकद्रव्यों में समवतरित

होते हैं ? अनानुपूर्वीद्रव्य केवल अनानुपूर्वीद्रव्यों में ही समवतरित होते हैं । नैगम-व्यवहारनयमान्य अवक्तव्यद्रव्य कहाँ समवतरित होते हैं ? क्या आनुपूर्वीद्रव्यों में अथवा अनानुपूर्वीद्रव्यों में या अवक्तव्यकद्रव्यों में समवतरित होते हैं ? अवक्तव्यकद्रव्य केवल अवक्तव्यकद्रव्यों में ही समवतरित होते हैं ।

[१०-११] अनुगम क्या है ? नौ प्रकार है, सत्पदप्ररूपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शना, काल, अन्तर, भाग, भाव और अल्पबहुत्व ।

[१२] नैगम-व्यवहारनय की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य हैं अथवा नहीं हैं ? अवश्य हैं । इसी प्रकार अनानुपूर्वी और अवक्तव्यकद्रव्य को भी जानना ।

[१३] नैगम-व्यवहारनय की अपेक्षा आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं, अथवा अनन्त हैं ? वे अनन्त ही हैं । इसी प्रकार शेष दोनों भी अनन्त हैं ।

[१४] नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य (क्षेत्र के) कितने भाग में अवगाढ हैं ? क्या लोक के संख्यातवें भाग में अवगाढ हैं ? असंख्यातवें भाग में अवगाढ हैं ? क्या संख्यात भागों में अवगाढ हैं ? असंख्यात भागों में अवगाढ हैं ? अथवा समस्त लोक में अवगाढ हैं ? किसी एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा कोई लोक के संख्यातवें भाग में, कोई लोक के असंख्यातवें भाग में तथा कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य लोक के संख्यात भागों में रहता है और कोई एक आनुपूर्वी द्रव्य असंख्यात भागों में रहता है और कोई एक द्रव्य समस्त लोक में अवगाढ होकर रहता है । किन्तु अनेक द्रव्यों की अपेक्षा तो वे नियमतः समस्त लोक में अवगाढ हैं । नैगम-व्यवहारनयसंमत अनानुपूर्वीद्रव्य क्या लोक के संख्यात भाग में अवगाढ हैं ? असंख्यात भाग में अवगाढ हैं ? संख्यात भागों में हैं या असंख्यात भागों में हैं अथवा समस्त लोक में अवगाढ हैं ? एक अनानुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा वह लोक के असंख्यातवें भाग में ही अवगाढ है, किन्तु अनेक अनानुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा नियमतः सर्वलोक में अवगाढ है । इसी प्रकार अवक्तव्यद्रव्य में भी जानना ।

[१५] नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग का अथवा असंख्यातवें भाग का या संख्यात भागों का अथवा असंख्यात भागों का अथवा समस्त लोक का स्पर्श करते हैं ? नैगम-व्यवहारनय की अपेक्षा एक आनुपूर्वीद्रव्य लोक के संख्यातवें भाग का यावत् अथवा सर्वलोक का स्पर्श करता है, किन्तु अनेक (आनुपूर्वी) द्रव्य तो नियमतः सर्वलोक का स्पर्श करते हैं । नैगम-व्यवहारनय की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं ? इत्यादि प्रश्न । एक एक अनानुपूर्वी की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग का ही स्पर्श करते हैं, किन्तु अनेक अनानुपूर्वी द्रव्यों की अपेक्षा तो नियमतः सर्वलोक का स्पर्श करते हैं । अवक्तव्य द्रव्यों की स्पर्शना भी इसी प्रकार समझना ।

[१६] नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्य काल की अपेक्षा कितने काल तक रहते हैं ? एक आनुपूर्वीद्रव्य जघन्य एक समय एवं उत्कृष्ट असंख्यात काल तक उसी स्वरूप में रहता है और विविध आनुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा नियमतः स्थिति सार्वकालिक है । इसी प्रकार अनानुपूर्वी और अवक्तव्य द्रव्यों की स्थिति भी जानना ।

[१७] नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्यों का कालापेक्षया अंतर कितना होता है ? एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल का, किन्तु अनेक

द्रव्यों की अपेक्षा विरहकाल नहीं है । नैगम-व्यवहारनयसंमत अनानुपूर्वीद्रव्यों का काल की अपेक्षा अंतर कितना होता है ? एक अनानुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा अन्तरकाल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल प्रमाण तथा अनेक अनानुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा अंतर नहीं है । नैगम-व्यवहारनयसंमत अवक्तव्यद्रव्यों का कालोपेक्षया अन्तर कितना है ? एक अवक्तव्यद्रव्य की अपेक्षा अंतर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल है, किन्तु अनेक द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है ।

[१८] भगवन् ! नैगम-व्यवहारनयसंमत समस्त आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के कितनेवें भाग हैं ? क्या संख्यात भाग हैं ? असंख्यात भाग हैं अथवा संख्यात भागों या असंख्यात भागों रूप हैं ? आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के नियमतः असंख्यात भागों रूप हैं । नैगम-व्यवहारनयसंमत अनानुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के कितनेवें भाग होते हैं ? क्या संख्यात भाग होते हैं ? असंख्यात भाग होते हैं ? संख्यात भागों रूप होते हैं ? अथवा असंख्यात भागों रूप होते हैं ? अनानुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के असंख्यात भाग ही होते हैं । अवक्तव्य द्रव्यों संबन्धी कथन भी असंख्यात भाग जानना ।

[१९] नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्य किस भाव में वर्तते हैं ? क्या औदयिक भाव में, औपशमिक भाव से, क्षायिक भाव में, क्षयोपशमिक भाव में, पारिणामिक भाव में अथवा सात्रिपातिक भाव में वर्तते हैं ? समस्त आनुपूर्वीद्रव्य सादि पारिणामिक भाव में होते हैं । अनानुपूर्वीद्रव्यों और अवक्तव्यद्रव्यों भी सादिपारिणामिक भाव में हैं ।

[१००] नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्यों, अनानुपूर्वीद्रव्यों और अवक्तव्यद्रव्यों में से द्रव्य, प्रदेश और द्रव्यप्रदेश की अपेक्षा कौन द्रव्य किन द्रव्यों की अपेक्षा अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं ? गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा नैगम-व्यवहारनयसंमत अवक्तव्यद्रव्य सबसे स्तोक हैं, अवक्तव्यद्रव्यों की अपेक्षा अनानुपूर्वीद्रव्य, द्रव्य की अपेक्षा विशेषाधिक हैं और द्रव्यापेक्षा आनुपूर्वीद्रव्य अनानुपूर्वी द्रव्यों से असंख्यातगुणे होते हैं । प्रदेश की अपेक्षा नैगम-व्यवहारनयसंमत अनानुपूर्वीद्रव्य अप्रदेशी होने से सर्वस्तोक हैं, प्रदेशों की अपेक्षा अवक्तव्यद्रव्य अनानुपूर्वी द्रव्यों से विशेषाधिक और आनुपूर्वीद्रव्य अवक्तव्य द्रव्यों में अनन्तगुणे हैं । द्रव्य और प्रदेश से अल्पबहुत्व नैगम-व्यवहारनयसंमत अवक्तव्यद्रव्य—द्रव्य की अपेक्षा सबसे अल्प हैं । द्रव्य और अप्रदेशार्थता की अपेक्षा अनानुपूर्वीद्रव्य विशेषाधिक हैं, प्रदेश की अपेक्षा अवक्तव्यद्रव्य विशेषाधिक है, आनुपूर्वीद्रव्य द्रव्य की अपेक्षा असंख्यातगुण और वही प्रदेश की अपेक्षा अनन्तगुण हैं ।

[१०१] संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी क्या है ? वह पांच प्रकार की है । —अर्थपदप्ररूपणता, भंगसमुत्कीर्तनता, भंगोपदर्शनता, समवतार, अनुगम ।

[१०२] संग्रहनयसंमत अर्थपदप्ररूपणता क्या है ? वह इस प्रकार है—त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, चतुष्प्रदेशी स्कन्ध, यावत् दसप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है, अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी है । परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी हैं और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्यक है ।

[१०३] संग्रहनयसंमत इस अर्थपदप्ररूपणता का क्या प्रयोजन है ? इसके द्वारा संग्रहनयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता की जाती है । संग्रहनयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता क्या है ?



उसका स्वरूप इस प्रकार है—आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी है, अवक्तव्यक है । अथवा आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी है, आनुपूर्वी और अवक्तव्यक है, अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक है । अथवा आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यक है । इस प्रकार ये सात भंग होते हैं । इस संग्रहनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है ? इस के द्वारा भंगोपदर्शन किया जाता है ।

[१०४] संग्रहनयसम्मत भंगोपदर्शनता क्या है ? उसका स्वरूप इस प्रकार है—त्रिप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ रूप में, परमाणुपुद्गल अनानुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ रूप में और द्विप्रदेशिक स्कन्ध अवक्तव्यक शब्द के वाच्यार्थ रूप में विवक्षित होते हैं । अथवा—त्रिप्रदेशिक स्कन्ध और परमाणुपुद्गल आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी शब्द के वाच्यार्थ रूप में, त्रिप्रदेशिक और द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी-अवक्तव्यक शब्द के वाच्यार्थ रूप में तथा परमाणुपुद्गल और द्विप्रदेशिक स्कन्ध, अनानुपूर्वी-अवक्तव्यक शब्द के वाच्यार्थ रूप में विवक्षित होते हैं । अथवा—त्रिप्रदेशिक स्कन्ध-परमाणुपुद्गल-द्विप्रदेशिक स्कन्ध आनुपूर्वी-अनानुपूर्वी-अवक्तव्यक शब्द के वाच्यार्थ रूप में विवक्षित होते हैं ।

[१०५] भगवन् ! समवतार क्या है ? क्या संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य आनुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ? अथवा अनानुपूर्वीद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ? या अवक्तव्यकद्रव्यों में समाविष्ट होते हैं ? संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य, आनुपूर्वीद्रव्यों में ही समवतरित होते हैं । इसी प्रकार अनानुपूर्वीद्रव्य और अवक्तव्यकद्रव्य भी—स्वस्थान में ही समवतरित होते हैं ।

[१०६-१०७] संग्रहनयसम्मत अनुगम क्या है ? वह आठ प्रकार का है । सत्पदप्ररूपणा, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शना, काल, अन्तर, भाग और भाव । इसमें अल्पबहुत्व नहीं होता है ।

[१०८] संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य हैं अथवा नहीं हैं ? नियमतः हैं । इसी प्रकार दोनों द्रव्यों के लिये भी समझना । संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं ? वह नियमतः एक राशि रूप हैं । इसी प्रकार दोनों द्रव्यों के लिये भी जानना । संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य लोक के कितने भाग में हैं ? क्या संख्यात भाग में हैं ? असंख्यात भाग में हैं ? संख्यात भागों में हैं ? असंख्यात भागों में हैं ? अथवा सर्वलोक में हैं ? वह नियमतः सर्वलोक में हैं । इसी प्रकार का कथन दोनों द्रव्यों के लिए भी समझना ।

संग्रहनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्य क्या लोक के संख्यात भाग का, असंख्यात भाग का, संख्यात भागों या असंख्यात भागों या सर्वलोक का स्पर्श करते हैं ? आनुपूर्वीद्रव्य नियम से सर्वलोक का स्पर्श करते हैं । इसी प्रकार का कथन दोनों द्रव्यों के लिए भी समझना । संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य काल की अपेक्षा कितने काल तक रहते हैं ? वह सर्वकाल रहते हैं । इसी प्रकार का कथन शेष दोनों द्रव्यों के लिये भी समझना । संग्रहनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्यों का कालापेक्षया कितना विरहकाल होता है । कालापेक्षया आनुपूर्वीद्रव्यों में अंतर नहीं होता है । इसी प्रकार शेष दोनों द्रव्यों के लिये समझना ।

संग्रहनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य शेष द्रव्यों के कितनेवें भाग प्रमाण होते हैं ? क्या संख्यात भाग प्रमाण होते हैं या असंख्यात भाग प्रमाण होते हैं ? संख्यात भागों प्रमाण अथवा असंख्यात भागों प्रमाण होते हैं ? वह शेष द्रव्यों के नियमतः तीसरे भाग प्रमाण होते

हैं । इसी प्रकार दोनों द्रव्यों में भी समझना । संग्रहनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्य किस भाव में होते हैं ? आनुपूर्वीद्रव्य नियम से सादिपारिणामिक भाव में होते हैं । यही कथन शेष दोनों द्रव्यों के लिये भी समझना । राशिगत द्रव्यों में अल्पबहुत्व नहीं है । यह अनुगम का वर्णन है ।

[१०९] औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी क्या है ? उसके तीन प्रकार कहे हैं, पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी ।

[११०] भगवन् ! पूर्वानुपूर्वी क्या है ? वह इस प्रकार है—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्वाकाल । इस प्रकार अनुक्रम से निक्षेप करने को पूर्वानुपूर्वी कहते हैं । पश्चानुपूर्वी क्या है ? वह इस प्रकार है—अद्वासमय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और धर्मास्तिकाय । इस प्रकार के विलोमक्रम से निक्षेपण करना पश्चानुपूर्वी हैं । अनानुपूर्वी क्या है ? एक से प्रारंभ कर एक-एक की वृद्धि करने पर छह पर्यन्त स्थापित श्रेणी के अंकों में परस्पर गुणाकार करने से जो राशि आये, उसमें से आदि और अंत के दो रूपों को कम करने पर अनानुपूर्वी बनती है ।

[१११] अथवा औपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी तीन प्रकार की है । पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी । पूर्वानुपूर्वी क्या है ? वह इस प्रकार है—परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध, त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, यावत् दशप्रदेशिक स्कन्ध, संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध रूप क्रमात्मक आनुपूर्वी को पूर्वानुपूर्वी कहते हैं । पश्चानुपूर्वी क्या है ? अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध, असंख्यातप्रदेशिक स्कन्ध, संख्यातप्रदेशिक स्कन्ध यावत् दशप्रदेशिक स्कन्ध यावत् त्रिप्रदेशिक स्कन्ध, द्विप्रदेशिक स्कन्ध, परमाणुपुद्गल । इस प्रकार का विपरीत क्रम से किया जाने वाला न्यास पश्चानुपूर्वी है । अनानुपूर्वी क्या है ? एक से प्रारंभ करके एक-एक की वृद्धि करने के द्वारा निर्मित अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध पर्यन्त की श्रेणी की संख्या को परस्पर गुणित करने से निष्पन्न अन्योन्याभ्यस्त राशि में से आदि और अंत रूप दो भंगों को कम करने पर अनानुपूर्वी बनती है ।

[११२] क्षेत्रानुपूर्वी क्या है ? दो प्रकार की है । औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी और अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी ।

[११३] इन दो भेदों में से औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी स्थाप्य है । अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी दो प्रकार की है । नैगम-व्यवहारनयसंमत और संग्रहनयसंमत ।

[११४] नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी क्या है ? इस के पांच प्रकार हैं । —अर्थपदप्ररूपणता, भंगसमुत्कीर्तनता, भंगोपदर्शनता, समवतार, अनुगम । नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता क्या है ? तीन आकाशप्रदेशों में अवगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है यावत् दस प्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है यावत् संख्यात आकाशप्रदेशों में अवगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है, असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वी है । आकाश के एक प्रदेश में अवगाढ द्रव्य से लेकर यावत् असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध तक क्षेत्रापेक्षया अनानुपूर्वी है । दो आकाशप्रदेशों में अवगाढ द्रव्य क्षेत्रापेक्षया अवक्तव्यक है । तीन आकाशप्रदेशावगाही अनेक-बहुत द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वियां हैं यावत् दसप्रदेशावगाही द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वियां हैं यावत् संख्यातप्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वियां हैं, असंख्यात प्रदेशावगाढ द्रव्यस्कन्ध आनुपूर्वियां

हैं । एक प्रदेशावगाही पुद्गलपरमाणु आदि द्रव्य अनानुपूर्वियां हैं । दो आकाशप्रदेशावगाही द्व्यणुकादि द्रव्यस्कन्ध अवक्तव्यक हैं ।

इस नैगम-व्यवहारनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता का क्या प्रयोजन है ? इनके द्वारा नैगम-व्यवहार-नयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता की जाती है । नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता क्या है ? वह इस प्रकार है—आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, अवक्तव्यक है इत्यादि द्रव्यानुपूर्वी के पाठ की तरह क्षेत्रानुपूर्वी के भी वही छब्बीस भंग हैं । नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगसमुत्कीर्तनता का क्या प्रयोजन है ? इस के द्वारा नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनीयता की जाती है ।

नैगम-व्यवहारनयसम्मत भंगोपदर्शनीयता क्या है ? तीन आकाशप्रदेशावगाढ त्र्यणुकादि स्कन्ध आनुपूर्वी पद का वाच्य हैं—हैं । एक आकाशप्रदेशावगाही परमाणुसंघात अनानुपूर्वी तथा दो आकाशप्रदेशावगाही द्व्यणुकादि स्कन्ध क्षेत्रापेक्षा अवक्तव्यक है । तीन आकाशप्रदेशावगाही अनेक स्कन्ध 'आनुपूर्वियां' इस बहुवचनान्त पद के वाच्य हैं, एक एक आकाशप्रदेशावगाही अनेक परमाणुसंघात 'अनानुपूर्वियां' पद के तथा द्वि आकाशप्रदेशावगाही द्व्यणुक आदि अनेक द्रव्यस्कन्ध 'अवक्तव्यक' पद के वाच्य हैं । अथवा त्रिप्रदेशावगाढस्कन्ध और एक प्रदेशावगाढस्कन्ध एक आनुपूर्वी और एक अनानुपूर्वी है । इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वी के पाठ की तरह छब्बीस भंग यहाँ भी जानना । समवतार क्या है ? नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्यों का समावेश कहाँ होता है ? क्या आनुपूर्वी द्रव्यों में, अनानुपूर्वी द्रव्यों में अथवा अवक्तव्यक द्रव्यों में समावेश होता है ? आनुपूर्वी द्रव्य आनुपूर्वी द्रव्यों में ही समाविष्ट होते हैं । इस प्रकार तीनों स्व-स्व स्थान में ही समाविष्ट होते हैं ।

अनुगम क्या है ? नौ प्रकार का है । यथा—

[११५] सत्पदप्ररूपणता, द्रव्यप्रमाण, क्षेत्र, स्पर्शना, काल, अंतर, भाग, भाव और अल्पबहुत्व ।

[११६] सत्पदप्ररूपणता क्या है ? नैगम-व्यवहारनयसंमत क्षेत्रानुपूर्वीद्रव्य हैं या नहीं ? नियमतः हैं । इसी प्रकार अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों के लिये भी समझना । नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं, अथवा अनन्त हैं ? वह नियमतः असंख्यात हैं । इसी प्रकार दोनों द्रव्यों के लिये भी समझना ।

नैगम-व्यवहारनयसंमत क्षेत्रानुपूर्वी द्रव्य लोक के कितनेवें भाग में रहते हैं ? क्या संख्यातवें भाग में, असंख्यातवें भाग में यावत् सर्वलोक में रहते हैं ? एक द्रव्य की अपेक्षा लोक के संख्यातवें भाग में, असंख्यातवें भाग में, संख्यातभागों में, असंख्यातभागों में अथवा देशोन लोक में रहते हैं, किन्तु विविध द्रव्यों की अपेक्षा नियमतः सर्वलोकव्यापी हैं । नैगम-व्यवहारनयसंमत अनानुपूर्वी द्रव्य के विषय में भी यही प्रश्न है । एक द्रव्य की अपेक्षा संख्यातवें भाग में, संख्यात भागों में, असंख्यात भागों में अथवा सर्वलोक में अवगाढ नहीं है किन्तु असंख्यातवें भाग में है तथा अनेक द्रव्यों की अपेक्षा सर्वलोक में व्याप्त हैं । अवक्तव्यक द्रव्यों के लिये भी इसी प्रकार जानना ।

नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य क्या (लोक के) संख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं ? या असंख्यातवें भाग का, संख्यातवें भागों का अथवा असंख्यातवें भागों का अथवा सर्वलोक का स्पर्श करते हैं ? एक द्रव्य की अपेक्षा संख्यातवें भाग का, यावत् देशोन सर्व



लोक का स्पर्श करते हैं किन्तु अनेक द्रव्यों की अपेक्षा तो नियमतः सर्वलोक का स्पर्श करते हैं । अनानुपूर्वी और अवक्तव्यक द्रव्यों की स्पर्शना का कथन पूर्वोक्त क्षेत्र द्वार के अनुरूप समझना, विशेषता इतनी है कि क्षेत्र के बदले यहाँ स्पर्शना कहना ।

नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्य काल की अपेक्षा कितने समय तक रहते हैं । एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक रहते हैं । विविध द्रव्यों की अपेक्षा नियमतः सार्वकालिक है । इसी प्रकार दोनों द्रव्यों की भी स्थिति जानना । नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों का काल की अपेक्षा अन्तर कितने समय का है ? तीनों का अन्तर एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का है किन्तु अनेक द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है । नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यों के कितनेवें भाग प्रमाण होते हैं ? द्रव्यानुपूर्वी जैसा ही कथन यहाँ भी समझना । नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वीद्रव्य किस भाव में वर्तते हैं ? तीनों ही द्रव्य नियमतः सादि पारिणामिक भाव में वर्तते हैं ।

इन नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्यों, अनानुपूर्वी द्रव्यों और अवक्तव्यक द्रव्यों में कौन द्रव्य किन द्रव्यों से द्रव्यार्थता, प्रदेशार्थता और द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थता की अपेक्षा अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं ? गौतम ! नैगम-व्यवहारनयसंमत अवक्तव्यक द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा सब से अल्प हैं । द्रव्यार्थता की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य अवक्तव्यक द्रव्यों से विशेषाधिक हैं और आनुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्यों से असंख्यातगुण हैं । प्रदेशार्थता की अपेक्षा नैगम-व्यवहारनयसंमत अनानुपूर्वीद्रव्य अप्रदेशी होने के कारण सर्वस्तोक हैं । प्रदेशार्थता की अपेक्षा अवक्तव्यक द्रव्य अनानुपूर्वी द्रव्यों से विशेषाधिक हैं और आनुपूर्वी द्रव्य प्रदेशार्थता की अपेक्षा अवक्तव्यक द्रव्यों से असंख्यातगुण हैं । द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थता की अपेक्षा में नैगम-व्यवहारनयसंमत अवक्तव्यक द्रव्य द्रव्यार्थ से सबसे अल्प है, द्रव्यार्थता और अप्रदेशार्थता की अपेक्षा अनानुपूर्वी द्रव्य अवक्तव्यक द्रव्यों से विशेषाधिक हैं । अवक्तव्यक द्रव्य प्रदेशार्थता की अपेक्षा विशेषाधिक हैं । आनुपूर्वी द्रव्य द्रव्यार्थता की अपेक्षा असंख्यातगुण है और उसी प्रकार प्रदेशार्थता की अपेक्षा भी असंख्यातगुण हैं ।

[११७-११९] संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी क्या है ? संग्रहनयसंमत अनौपनिधिकी द्रव्यानुपूर्वी की तरह ही यहां द्रव्यानुपूर्वी अंतर्गत तीनों सूत्रों का अर्थ समझ लेना ।

[१२०] औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी क्या है ? इसके तीन भेद हैं । पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी । पूर्वानुपूर्वी क्या है ? अधोलोक, तिर्यक्लोक और ऊर्ध्वलोक, इस क्रम से निर्देश करना पूर्वानुपूर्वी हैं । पश्चानुपूर्वी क्या है ? पूर्वानुपूर्वी के क्रम के विपरीत—ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक, अधोलोक का क्रम पश्चानुपूर्वी है । अनानुपूर्वी किसे कहते हैं ? एक से प्रारम्भ कर एकोत्तर वृद्धि द्वारा निर्मित तीन पर्यन्त की श्रेणी में परस्पर गुणा करने पर निष्पन्न अन्योन्याभ्यस्त राशि में से आद्य और अंतिम दो भंगों को छोड़कर जो राशि उत्पन्न हो वह अनानुपूर्वी है ।

अधोलोकक्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की है । पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । अधोलोकक्षेत्रपूर्वानुपूर्वी क्या है ? रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा,

तमःप्रभा, तमस्तमःप्रभा, इस क्रम से उपन्यास करना अधोलोकक्षेत्रपूर्वानुपूर्वी हैं । अधोलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी क्या है ? तमस्तमःप्रभा से लेकर यावत् रत्नप्रभा पर्यन्त व्युत्क्रम से उपन्यास करना अधोलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी है । अधोलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी क्या है ? आदि में एक स्थापित कर सात पर्यन्त एकोत्तर वृद्धि द्वारा निर्मित श्रेणी में परस्पर गुणा करने से निष्पन्न राशि में से प्रथम और अन्तिम दो भंगों को कम करने पर यह अनानुपूर्वी बनती है ।

तिर्यग् लोकक्षेत्रानुपूर्वी के तीन भेद हैं । पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । मध्यलोकक्षेत्रपूर्वानुपूर्वी क्या है ? वह इस प्रकार है—

[१२१-१२४] जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, धातकीखंडद्वीप, कालोदधिसमुद्र, पुष्करद्वीप, (पुष्करोद) समुद्र, वरुणद्वीप, वरुणोदसमुद्र, क्षीरद्वीप, क्षीरोदसमुद्र, घृतद्वीप, घृतोदसमुद्र, इक्षुवरद्वीप, इक्षुवरसमुद्र, नन्दीद्वीप, नन्दीसमुद्र, अरुणवरद्वीप, अरुणवरसमुद्र, कुण्डलद्वीप, कुण्डलसमुद्र, रुचकद्वीप, रुचकसमुद्र । जम्बूद्वीप से लेकर ये सभी द्वीप-समुद्र बिना किसी अन्तर के एक दूसरे को घेरे हुए स्थित हैं । इनके आगे असंख्यात-असंख्यात द्वीप-समुद्रों के अनन्तर भुजगवर तथा इसके अनन्तर असंख्यात द्वीप-समुद्रों के पश्चात् कुशवरद्वीप समुद्र है और इसके बाद भी असंख्यात द्वीप-समुद्रों के पश्चात् क्रौंचवर द्वीप है । पुनः असंख्यात द्वीप-समुद्रों के पश्चात् आभरणों आदि के सदृश शुभ नाम वाले द्वीपसमुद्र हैं । यथा—आभरण, वस्त्र, गंध, उत्पल, तिलक, पद्म, निधि, रत्न, वर्षधर, हृद, नदी, विजय, वक्षस्कार, कल्पेन्द्र । कुरु, मंदर, आवास, कूट, नक्षत्र, चन्द्र, सूर्यदेव, नाग, यक्ष, भूत आदि के पर्यायवाचक नामों वाले द्वीप-समुद्र असंख्यात हैं और अन्त में स्वयंभूरमणद्वीप एवं स्वयंभूरमणसमुद्र है । यह तीर्थांशलोक क्षेत्रानुपूर्वी हुई ।

[१२५] मध्यलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी क्या है ? स्वयंभूरमणसमुद्र, भूतद्वीप आदि से लेकर जम्बूद्वीप पर्यन्त व्युत्क्रम से द्वीप-समुद्रों के उपन्यास करना मध्यलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी हैं । मध्यलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी क्या है ? वह इस प्रकार है—एक से प्रारम्भ कर असंख्यात पर्यन्त की श्रेणी स्थापित कर उनका परस्पर गुणाकार करने पर निष्पन्न राशि में से आद्य और अन्तिम इन दो भंगों को छोड़कर मध्य के समस्त भंग मध्यलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी हैं ।

ऊर्ध्वलोकक्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की है । पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । ऊर्ध्वलोकक्षेत्रविषयक पूर्वानुपूर्वी क्या है ? सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयकविमान, अनुत्तरविमान, ईषत्प्राग्भारापृथ्वी, इस क्रम से ऊर्ध्वलोक के क्षेत्रों का उपन्यास करना ऊर्ध्वलोकक्षेत्रपूर्वानुपूर्वी हैं । ऊर्ध्वलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी क्या है ? ईषत्प्राग्भाराभूमि से सौधर्म कल्प तक के क्षेत्रों का व्युत्क्रम से उपन्यास करना ऊर्ध्वलोकक्षेत्रपश्चानुपूर्वी हैं । ऊर्ध्वलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी किसे कहते हैं ? आदि में एक रखकर एकोत्तरवृद्धि द्वारा निर्मित पन्द्रह पर्यन्त की श्रेणी में परस्पर गुणा करने पर प्राप्त राशि में से आदि और अंत के दो भंगों को कम करने पर शेष भंगों को ऊर्ध्वलोकक्षेत्रअनानुपूर्वी कहते हैं ।

अथवा औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी तीन प्रकार की है । पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी । औपनिधिकी क्षेत्रानुपूर्वी संबन्धी पूर्वानुपूर्वी क्या है ? एकप्रदेशावगाढ, द्विप्रदेशावगाढ यावत् दसप्रदेशावगाढ यावत् असंख्यातप्रदेशावगाढ के क्रम से क्षेत्र के उपन्यास को पूर्वानुपूर्वी

कहते हैं । पश्चानुपूर्वी क्या है ? असंख्यातप्रदेशावगाढ यावत् एकप्रदेशावगाढ रूप में व्युत्क्रम से क्षेत्र का उपन्यास पश्चानुपूर्वी है । अनानुपूर्वी क्या है ? एक से प्रारंभ कर एकोत्तर वृद्धि द्वारा असंख्यात प्रदेश पर्यन्त की स्थापित श्रेणी का परस्पर गुणा करने से निष्पन्न राशि में से आद्य और अंतिम इन दो रूपों को कम करने पर क्षेत्रविषयक अनानुपूर्वी बनती है ।

[१२६-१२७] कालानुपूर्वी क्या है ? दो प्रकार हैं, औपनिधिकी और अनौपनिधिकी । इनमें से औपनिधिकी कालानुपूर्वी स्थाप्य है । तथा—अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी दो प्रकार की है—नैगम-व्यवहारनयसंमत और संग्रहनयसंमत ।

[१२८] नैगम-व्यवहारनयसंमत अनौपनिधिकी कालानुपूर्वी क्या है ? उसके पांच प्रकार हैं । —अर्थपदप्ररूपणता, भंगसमुत्कीर्तनता, भंगोपदर्शिता, समवतार, अनुगम ।

[१२९] नैगम-व्यवहारनयसंमत अर्थपदप्ररूपणता क्या है ? वह इस प्रकार है—तीन समय की स्थिति वाला द्रव्य आनुपूर्वी है यावत् दस समय, संख्यात समय, असंख्यात समय की स्थितिवाला द्रव्य आनुपूर्वी है । एक समय की स्थिति वाला द्रव्य अनानुपूर्वी है । दो समय की स्थिति वाला द्रव्य अवक्तव्यक है । तीन समय की स्थिति वाले अनेक द्रव्य आनुपूर्वियां हैं यावत् संख्यातसमयस्थितिक, असंख्यातसमयस्थितिक द्रव्य आनुपूर्वियां हैं । एक समय की स्थिति वाले अनेक द्रव्य अनेक अनानुपूर्वियां हैं । दो समय की स्थिति वाले अनेक द्रव्य अनेक अवक्तव्यक रूप हैं । इस नैगम-व्यवहारनयसंमत अर्थपदप्ररूपणता के द्वारा यावत् भंगसमुत्कीर्तनता की जाती है ।

[१३०] नैगम-व्यवहारनयसंमत भंगसमुत्कीर्तनता क्या है ? आनुपूर्वी है, अनानुपूर्वी है, अवक्तव्यक है, इस प्रकार द्रव्यानुपूर्वीवत् कालानुपूर्वी के भी २६ भंग जानना । इस नैगम-व्यवहारनयसंमत यावत् (भंगसमुत्कीर्तनता का) क्या प्रयोजन है ? ईनसे भंगोपदर्शिता की जाती है ।

[१३१] नैगम-व्यवहारनयसंमत भंगोपदर्शिता क्या है ? वह इस प्रकार है—त्रिसमयस्थितिक एक-एक परमाणु आदि द्रव्य आनुपूर्वी है, एक समय की स्थितिवाला एक-एक परमाणु आदि द्रव्य अनानुपूर्वी है और दो समय की स्थितिवाला परमाणु आदि द्रव्य अवक्तव्यक है । तीन समय की स्थिति वाले अनेक द्रव्य 'आनुपूर्वियां' इस पद के वाच्य हैं । एक समय की स्थिति वाले अनेक द्रव्य 'अनानुपूर्वियां' तथा दो समय की स्थिति वाले द्रव्य 'अवक्तव्य' पद के वाच्य हैं । इस प्रकार यहाँ भी द्रव्यानुपूर्वी के पाठानुरूप छब्बीस भंगों के नाम जानना, यावत् यह भंगोपदर्शिता का आशय है ।

[१३२] समवतार क्या है ? नैगम-व्यवहारनयसंमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्यों का कहाँ समवतार होता है ? यावत्—तीनों ही स्व-स्व स्थान में समवतरित होते हैं ।

[१३३-१३४] अनुगम क्या है ? अनुगम नौ प्रकार का है । सत्पदप्ररूपणा यावत् अल्पबहुत्व ।

[१३५] नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी द्रव्य हैं या नहीं हैं ? नियमतः ये तीनों द्रव्य हैं । नैगम-व्यवहारनयसंमत आनुपूर्वी आदि द्रव्य संख्यात हैं, असंख्यात है या अनन्त हैं ? तीनों द्रव्य असंख्यात ही हैं । नैगम-व्यवहारनयसंमत अनेक आनुपूर्वी द्रव्य क्या लोक के संख्यात भाग में रहते हैं ? इत्यादि प्रश्न है । एक द्रव्य की अपेक्षा लोक के संख्यात भाग



में रहते हैं यावत् देशोन लोक में रहते हैं । किन्तु अनेक द्रव्यों की अपेक्षा नियमतः सर्वलोक में रहते हैं । समस्त अनानुपूर्वी द्रव्यों और अवक्तव्य द्रव्यों की वक्तव्यता भी नैगम-व्यवहारनयसम्मत क्षेत्रानुपूर्वी के समान है । इस कालानुपूर्वी में स्पर्शनाद्वार का कथन तथैव क्षेत्रानुपूर्वी जैसा ही जानना ।

नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वीद्रव्य कालापेक्षया कितने काल तक रहते हैं । एक आनुपूर्वीद्रव्य की अपेक्षा जघन्य स्थिति तीन समय की और उत्कृष्ट असंख्यात काल की है । अनेक आनुपूर्वीद्रव्यों की अपेक्षा स्थिति सर्वकालिक है । नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वीद्रव्य कालापेक्षा कितने काल तक रहते हैं ? एक द्रव्यापेक्षया तो अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थिति एक समय की तथा अनेक द्रव्यों की अपेक्षा सर्वकालिक है । नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्यकद्रव्य कालापेक्षया कितने काल रहते हैं ? एक द्रव्य की अपेक्षा अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थिति दो समय की है और अनेक द्रव्यों की अपेक्षा सर्वकालिक है ।

नैगम-व्यवहारनयसम्मत आनुपूर्वी द्रव्यों का कालापेक्षया अन्तर कितने समय का होता है ? एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर दो समय है । किन्तु अनेक द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है । कालापेक्षया नैगम-व्यवहारनयसम्मत अनानुपूर्वी द्रव्यों का अन्तर कितने समय का होता है ? एक द्रव्य की अपेक्षा जघन्य अन्तर दो समय का और उत्कृष्ट असंख्यात काल का है । अनेक द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है । अनानुपूर्वीद्रव्यों की तरह नैगम-व्यवहारनयसम्मत अवक्तव्यकद्रव्यों के विषय में भी प्रश्न है । एक द्रव्य की अपेक्षा अवक्तव्यकद्रव्यों का अन्तर एक समय का और उत्कृष्ट असंख्यात काल प्रमाण है । अनेक द्रव्यों की अपेक्षा अन्तर नहीं है ।

नैगमव्यवहार नय सम्मत आनुपूर्वी द्रव्य शेष द्रव्यो के कितने वें भाग प्रमाण है ? तीनों द्रव्यो के लिए क्षेत्रानुपूर्वी जैसा ही समझना ।

[१३६] संग्रहनय सम्मत अनौपधिकी कालानुपूर्वी क्या है ? वह पांच प्रकार की है । अर्थपदप्ररूपणता, भंग समुत्कीर्तनता, भंगोपदर्शनता, समवतार और अनुगम ।

[१३७] संग्रहनयसम्मत अर्थपदप्ररूपणता क्या है ? इन पांचों द्वारों संग्रहनयसम्मत क्षेत्रानुपूर्वी समान जानना । विशेष यह कि 'प्रदेशावगाढ' के बदले 'स्थिति' कहना ।

[१३८] औपनिधिकी कालानुपूर्वी क्या है ? उसके तीन प्रकार हैं—पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी । पूर्वानुपूर्वी क्या है ? वह इस प्रकार है—एक समय की स्थिति वाले, दो समय की स्थिति वाले, तीन, समय की स्थिति वाले यावत् दस समय की स्थिति वाले यावत् संख्यात समय की स्थिति वाले, असंख्यात समय की स्थिति वाले द्रव्यों का अनुक्रम से उपन्यास करने को पूर्वानुपूर्वी कहते हैं । पश्चानुपूर्वी क्या है ? असंख्यात समय की स्थिति वाले से लेकर एक समय पर्यन्त की स्थिति वाले द्रव्यों का—व्युत्क्रम से उपन्यास करना पश्चानुपूर्वी है । अनानुपूर्वी क्या है ? वह इस प्रकार जानना कि एक से लेकर असंख्यात पर्यन्त एक-एक की वृद्धि द्वारा निष्पन्न श्रेणी में परस्पर गुणाकार करने से प्राप्त महाराशि में से आदि और अंत के दो भंगों से न्यून भंग अनानुपूर्वी हैं ।

अथवा औपनिधिकी कालानुपूर्वी तीन प्रकार की है । पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । पूर्वानुपूर्वी क्या है ? समय, आवलिका, आनप्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, दिवस,

अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, वर्षशत, वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अडडांग, अडड, अववांग, अवव, हुहुकांग, हुहुक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनिपुरांग, अर्थनिपुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम, सागरोपम, अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी, पुद्गलपरावर्त, अतीताद्धा, अनागताद्धा, सर्वाद्धा रूप क्रम से पदों का उपन्यास करना काल संबन्धी पूर्वानुपूर्वी है । पश्चानुपूर्वी क्या है ? सर्वाद्धा, अनागताद्धा यावत् समय पर्यन्त व्युत्क्रम से पदों की स्थापना करना पश्चानुपूर्वी है । अनानुपूर्वी क्या है ? इन्हीं की एक से प्रारंभ कर एकोत्तर वृद्धि द्वारा सर्वाद्धा पर्यन्त की श्रेणी स्थापित कर परस्पर गुणाकार से निष्पन्न राशि में से आद्य और अंतिम दो भंगों को कम करने के बाद बचे शेष भंग अनानुपूर्वी हैं ।

[१३९] उत्कीर्तनानुपूर्वी क्या है ? उसके तीन प्रकार हैं । पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । पूर्वानुपूर्वी क्या है ? इस प्रकार है—ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, शांति, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व, वर्धमान, इस क्रम से नामोच्चारण करने को पूर्वानुपूर्वी कहते हैं । पश्चानुपूर्वी क्या है ? वर्धमान, पार्श्व से प्रारंभ करके प्रथम ऋषभ पर्यन्त नामोच्चारण करना पश्चानुपूर्वी है । अनानुपूर्वी क्या है ? इन्हीं की एक से लेकर एक-एक की वृद्धि करके चौबीस संख्या की श्रेणी स्थापित कर परस्पर गुणाकार करने से जो राशि बनती है उसमें से प्रथम और अंतिम भंग को कम करने पर शेष भंग अनानुपूर्वी हैं ।

[१४०] गणनानुपूर्वी क्या है ? उसके तीन प्रकार हैं । पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । पूर्वानुपूर्वी क्या है ? एक, दस, सौ, सहस्र, दस सहस्र, लाख, दस लाख, करोड़, दस कोटि, कोटिशत, दस कोटिशत, इस प्रकार से गिनती करना पूर्वानुपूर्वी है । पश्चानुपूर्वी क्या है ? दस अरब से लेकर व्युत्क्रम से एक पर्यन्त की गिनती करना पश्चानुपूर्वी है । अनानुपूर्वी क्या है ? इन्हीं को एक से लेकर दस अरब पर्यन्त की एक-एक वृद्धि वाली श्रेणी में स्थापित संख्या का परस्पर गुणा करने पर जो भंग हों, उनमें से आदि और अंत के दो भंगों को कम करने पर शेष रहे भंग अनानुपूर्वी हैं ।

[१४१] संस्थानापूर्वी क्या है ? उनके तीन प्रकार हैं—पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । पूर्वानुपूर्वी किसे कहते हैं ? समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, सादिसंस्थान, कुब्जसंस्थान, वामनसंस्थान, हुंडसंस्थान के क्रम से संस्थानों के विन्यास करने को पूर्वानुपूर्वी कहते हैं । पश्चानुपूर्वी क्या है ? हुंडसंस्थान से लेकर समचतुरस्रसंस्थान तक संस्थानों का उपन्यास करना पश्चानुपूर्वी है । अनानुपूर्वी क्या है ? एक से लेकर छह तक की एकोत्तर वृद्धि वाली श्रेणी में स्थापित संख्या का परस्पर गुणाकार करने पर निष्पन्न राशि में से आदि और अन्त रूप दो भंगों को कम करने पर शेष भंग अनानुपूर्वी हैं ।

[१४२] समाचारी-आनुपूर्वी क्या है ? वह तीन प्रकार की है—पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । पूर्वानुपूर्वी क्या है । वह इस प्रकार है—

[१४३-१४४] इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार, आवश्यकी, नैषेधिकी, आप्रच्छना, प्रतिप्रच्छना, छंदना, निमंत्रणा, उपसंपद् । यह इस प्रकार की सामाचारी है । पश्चानुपूर्वी क्या

है ? उपसंपद् से लेकर इच्छाकार पर्यन्त स्थापना करना पश्चानुपूर्वी है । अनानुपूर्वी क्या है ? एक से लेकर दस पर्यन्त एक-एक की वृद्धि द्वारा श्रेणी रूप में स्थापित संख्या का परस्पर गुणाकार करने से प्राप्त राशि में से प्रथम और अन्तिम भंग को कम करने पर शेष रहे भंग अनानुपूर्वी हैं ।

[१४५] भावानुपूर्वी क्या है ? तीन प्रकार की है । पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी । पूर्वानुपूर्वी क्या है ? औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, पारिणामिकभाव, सान्निपातिकभाव, इस क्रम से भावों का उपन्यास पूर्वानुपूर्वी है । पश्चानुपूर्वी क्या है ? सान्निपातिकभाव से लेकर औदयिकभाव पर्यन्त भावों की स्थापना करना पश्चानुपूर्वी है । अनानुपूर्वी क्या है ? एक से लेकर एकोत्तर वृद्धि द्वारा छह पर्यन्त की श्रेणी में स्थापित संख्या का परस्पर गुणाकार करने पर प्राप्त राशि में से प्रथम और अन्तिम भंग को कम करने पर शेष रहे भंग अनानुपूर्वी हैं ।

[१४६] नाम क्या है ? नाम के दस प्रकार हैं । एक नाम, दो नाम, तीन नाम, चार नाम, पांच नाम, छह नाम, सात नाम, आठ नाम, नौ नाम, दस नाम ।

[१४७-१४९] एकनाम क्या है ? द्रव्यों, गुणों एवं पर्यायों के जो नाम लोक में रूढ़ हैं, उन सबकी 'नाम' ऐसी एक संज्ञा आगम रूप निकष में कही गई है । यह एकनाम है ।

[१५०] द्विनाम क्या है ? द्विनाम के दो प्रकार हैं—एकाक्षरिक और अनेकाक्षरिक । एकाक्षरिक द्विनाम क्या है ? उसके अनेक प्रकार हैं । जैसे कि ही, श्री, धी, स्त्री आदि एकाक्षरिक नाम हैं । अनेकाक्षरिक द्विनाम का क्या स्वरूप है ? उसके अनेक प्रकार हैं । यथा—कन्या, वीणा, लता, माला आदि अनेकाक्षरिक द्विनाम हैं ।

अथवा द्विनाम के दो प्रकार हैं । जीवनाम और अजीवनाम । जीवनाम क्या है ? उसके अनेक प्रकार हैं । देवदत्त, यज्ञदत्त, विष्णुदत्त, सोमदत्त इत्यादि । अजीवनाम क्या है ? उसके अनेक प्रकार हैं । घट, पट, कट, रथ इत्यादि ।

अथवा अपेक्षादृष्टि से द्विनाम के और भी दो प्रकार हैं । यथा—विशेषित और अविशेषित । द्रव्य यह अविशेषित नाम है और जीवद्रव्य एवं अजीवद्रव्य ये विशेषित नाम हैं । जीवद्रव्य को अविशेषित नाम माने जाने पर नारक, तिर्यचयोनिक, मनुष्य और देव ये विशेषित नाम हैं । नारक अविशेषित नाम है और रत्नप्रभा का नारक, शर्कराप्रभा का नारक यावत् तमस्तमःप्रभा का नारक यह विशेषित द्विनाम हैं । रत्नप्रभा का नारक इस नाम को अविशेषित माना जाए तो रत्नप्रभा का पर्याप्त नारक और अपर्याप्त नारक विशेषित नाम होंगे यावत् तमस्तमःप्रभापृथ्वी के नारक को अविशेषित मानने पर उसके पर्याप्त और अपर्याप्त ये विशेषित नाम कहलाएँगे । तिर्यचयोनिक इस नाम को अविशेषित माना जाए तो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय ये पांच विशेषित नाम हैं ।

एकेन्द्रिय को अविशेषित नाम माना जाये तो पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय ये विशेषित नाम हैं । यदि पृथ्वीकाय नाम को अविशेषित माना जाये तो सूक्ष्मपृथ्वीकाय और बादरपृथ्वीकाय यह विशेषित नाम हैं । सूक्ष्मपृथ्वीकाय नाम को अविशेषित मानने पर पर्याप्त और अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकाय यह विशेषित नाम हैं । बादरपृथ्वीकाय नाम अविशेषित है तो पर्याप्त और अपर्याप्त बादरपृथ्वीकाय यह विशेषित नाम हैं । इसी प्रकार



अष्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय इन नामों को अविशेषित नाम माने जाने पर अनुक्रम से उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये विशेषित नाम हैं । यदि द्वीन्द्रिय को अविशेषित नाम माना जाये तो पर्याप्त द्वीन्द्रिय और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय विशेषित नाम हैं । इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के लिये भी जानना ।

पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक को अविशेषित नाम मानने पर जलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक, स्थलचर, पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक, खेचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक विशेषित नाम हैं । जलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक अविशेषित नाम है तो सम्मूर्च्छिम० और गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोकि यह विशेषित नाम है । सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक अविशेषित नाम है तो उसके पर्याप्त० और अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक ये दो भेद विशेषित नाम हैं । गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक यह नाम अविशेषित है और पर्याप्त तथा अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक नाम विशेषित हैं ।

थलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक को अविशेषित नाम माने जाने पर चतुष्पद० और परिसर्प थलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक विशेषित नाम हैं । यदि चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक को अविशेषित माना जाये तो सम्मूर्च्छिम० और गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक ये भेद विशेषित नाम हैं । सम्मूर्च्छिम चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक यह अविशेषित नाम हो तो पर्याप्त० और अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक विशेषित नाम हैं । यदि गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक नाम को अविशेषित माना जाये तो पर्याप्त० और अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पद थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक ये विशेषित नाम हैं । यदि परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक यह अविशेषित नाम है तो उरपरिसर्प० और भुजपरिसर्प थलचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक नाम विशेषित नाम हैं । इसी प्रकार सम्मूर्च्छिम पर्याप्त और अपर्याप्त तथा गर्भव्युत्क्रान्तिक पर्याप्त, अपर्याप्त का कथन कर लेना ।

खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक अविशेषित नाम है तो सम्मूर्च्छिम० और गर्भव्युत्क्रान्तिक खेचर पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक विशेषित नाम रूप हैं । यदि सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक नाम को अविशेषित नाम माना जाये तो पर्याप्त० और अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक रूप उसके भेद विशेषित नाम हैं । इसी प्रकार गर्भव्युत्क्रान्तिक खेचर में भी समझ लेना ।

मनुष्य इस नाम को अविशेषित माना जाये तो सम्मूर्च्छिम मनुष्य और गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्य यह नाम विशेषित कहलायेंगे । सम्मूर्च्छिम मनुष्य को अविशेषित नाम मानने पर पर्याप्त० और अपर्याप्त सम्मूर्च्छिम मनुष्य यह दो नाम विशेषित नाम हैं । गर्भव्युत्क्रान्तिक में भी इसी तरह समझ लेना ।

देव नाम को अविशेषित मानने पर उसके भवनवासी, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक यह देवनाम विशेषित कहलायेंगे । यदि भवनवासी नाम को अविशेषित माना जाये तो असुरकुमरा, नागकुमार, यावत् स्तनितकुमार ये नाम विशेषित हैं । इन सब नामों में से भी प्रत्येक को यदि अविशेषित माना जाये तो उन सबके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद विशेषित नाम कहलाएँगे । वाणव्यंतर इस नाम को अविशेषित मानने पर पिशाच, भूत, यावत् गंधर्व, ये

नाम विशेषित नाम हैं । इन सबमें से भी प्रत्येक को अविशेषित नाम माना जाये तो उनके पर्याप्त अपर्याप्त भेद विशेषित नाम कहलायेंगे । यदि ज्योतिष्क नाम को अविशेषित माना जाये तो चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारारूप नाम विशेषित कहे जायेंगे । इनमें से भी प्रत्येक को अविशेषित नाम माना जाये तो उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेद विशेषित नाम हैं ।

यदि वैमानिक देवपद को अविशेषित नाम माना जाये तो उसके कल्पोपन्न और कल्पातीत यह दो प्रकार विशेषित नाम हैं । कल्पोपपन्न को अविशेषित नाम मानने पर सौधर्म, ईशान यावत् अच्युत विमानवासी देव नाम विशेषित नाम रूप हैं । यदि इनमें से प्रत्येक को अविशेषित नाम माना जाये तो उनके पर्याप्त, अपर्याप्त रूप भेद विशेषित नाम कहलायेंगे । यदि कल्पातीत को अविशेषित नाम माना जाये तो ग्रैवेयकवासी और अनुत्तरोपपातिक देव विशेषित नाम हो जाएँगे । ग्रैवेयकवासी को अविशेषित नाम मानने पर अधस्तन०, मध्यम०, उपरितनग्रैवेयक ये नाम विशेषित नाम रूप होंगे । जब अधस्तनग्रैवेयक को अविशेषित नाम माना जायेगा तब अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक, यावत् अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक नाम विशेषित नाम कहलायेंगे । अविशेषित नाम के रूप में मध्यमग्रैवेयक और उपरिम ग्रैवेयक को भी इसी तरह जानना । इन सबको भी अविशेषित नाम माना जाये तो उनके पर्याप्त और अपर्याप्त ये विशेषित नाम कहलायेंगे ।

यदि अनुत्तरोपपातिक देव नाम को अविशेषित नाम कहा जाये तो विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थसिद्धविमानदेव विशेषित नाम कहलायेंगे । इन सबको भी अविशेषित नाम की कोटि में ग्रहण किया जाए तो प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद विशेषित नाम रूप हैं । यदि अजीवद्रव्य को अविशेषित नाम माना जाये तो धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय, ये विशेषित नाम होंगे । यदि पुद्गलास्तिकाय को भी अविशेषित नाम माना जाये तो परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशिक यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध, यह नाम विशेषित कहलायेंगे ।

[१५१] त्रिनाम क्या है ? त्रिनाम के तीन भेद हैं । वे इस प्रकार—द्रव्यनाम, गुणनाम और पर्यायनाम । द्रव्यनाम क्या है ? द्रव्यनाम छह प्रकार का है । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्धासमय । गुणनाम क्या है ? पाँच प्रकार से हैं । वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, संस्थाननाम ।

वर्णनाम क्या है ? पाँच भेद हैं । कृष्णवर्णनाम नीलवर्णनाम, लोहित वर्णनाम, हारिद्र वर्णनाम, शुक्लवर्णनाम । गंधनाम क्या है ? दो प्रकार हैं । सुरभिगंधनाम, दुरभिगंधनाम । रसनाम क्या है ? पाँच भेद हैं । तिक्तारसनाम, कटुकरसनाम, कषायरसनाम, आम्लरसनाम, मधुररसनाम । स्पर्शनाम क्या है ? आठ प्रकार हैं । कर्कशस्पर्शनाम, मृदुस्पर्शनाम, गुरुस्पर्शनाम, लघुस्पर्शनाम, शीतस्पर्शनाम, उष्णस्पर्शनाम, स्निग्धस्पर्शनाम, रूक्षस्पर्शनाम । संस्थाननाम क्या है ? पाँच प्रकार हैं । परिमण्डलसंस्थाननाम, वृत्तसंस्थाननाम, त्र्यस्रसंस्थाननाम, चतुरस्रसंस्थाननाम, आयतसंस्थाननाम ।

पर्यायनाम क्या है ? अनेक प्रकार हैं । एकगुण काला, द्विगुणकाला यावत् अनन्तगुणकाला, एकगुणनीला, द्विगुणनीला यावत् अनन्तगुणनीला तथा इसी प्रकार लोहित, हारिद्र और शुक्लवर्ण की पर्यायों के नाम भी समझना । एकगुणसुरभिगंध, द्विगुणसुरभिगंध

यावत् अनन्तगुणसुरभिगंध, इसी प्रकार दुरभिगंध के विषय में भी कहना । एकगुणतित्त, द्विगुणतित्त यावत् अनन्तगुणतित्त, इसी प्रकार कटुक, कषाय, एवं मधुर रस की पर्यायों के लिये भी कहना । एकगुणकर्कश, द्विगुणकर्कश यावत् अनन्तगुणकर्कश, इसी प्रकार मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष स्पर्श की पर्यायों की वक्तव्यता है ।

[१५२-१५८] उस त्रिनाम के पुनः तीन प्रकार हैं । स्त्रीनाम, पुरुषनाम और नपुंसकनाम । इन तीनों प्रकार के नामों का बोध उनके अत्याक्षरों द्वारा होता है । पुरुषनामों के अंत में 'आ, ई, ऊ, ओ' इन चार में से कोई एक वर्ण होता है तथा स्त्रीनामों के अंत में 'ओ' की छोड़कर शेष तीन वर्ण होते हैं । जिन शब्दों के अन्त में अं, इं या उं वर्ण हो, उनको नपुंसकलिंग वाला समझना । अब इन तीनों के उदाहरण कहते हैं । आकारान्त पुरुष नाम का उदाहरण राया है । ईकारान्त का गिरी तथा सिहरी हैं । ऊकारान्त का विण्हू और ओकारान्त का दुमो है । स्त्रीनाम में 'माला' यह पद आकारान्त का, सिरी पद ईकारान्त, जम्बू, ऊकारान्त नारी जाति के उदाहरण हैं । धन्न यह प्राकृतपद अंकारान्त नपुंसक नाम का उदाहरण है । अच्छिं यह इंकारान्त नपुंसकनाम का तथा पीलुं ये उंकारान्त नपुंसकनाम के पद हैं । इस प्रकार यह त्रिनाम का स्वरूप है ।

[१५९] चतुर्नाम क्या है ? चार प्रकार हैं । आगमनिष्पन्ननाम, लोपनिष्पन्ननाम, प्रकृतिनिष्पन्ननाम, विकारनिष्पन्ननाम । आगमनिष्पन्ननाम क्या है ? पद्मानि, पयांसि, कुण्डानि आदि ये सब आगमनिष्पन्ननाम हैं । लोपनिष्पन्ननाम क्या है ? ते +अत्र-तेऽत्र, पटो+अत्र-पटोऽत्र, घटो+अत्र-घटोऽत्र, स्थो+अत्र-स्थोऽत्र, ये लोपनिष्पन्ननाम हैं । प्रकृतिनिष्पन्ननाम क्या है ? अग्नी एतौ, पटू, इमौ, शाले एते, माले इमे इत्यादि प्रयोग प्रकृतिनिष्पन्न नाम हैं । विकारनिष्पन्ननाम क्या है ? दण्ड+अग्रं-दण्डाग्रम्, सा+आगता-साऽऽगता, दधि+इदं-दधीदं, नदी+ईहते-नदीहते, मधु+उदक-मधूदकं, बहु+ऊहते-बहूहते, ये सब विकारनिष्पन्ननाम हैं ।

[१६०] पंचनाम क्या है ? पांच प्रकार का है । नामिक, नैपातिक, आख्यातिक, औपसर्गिक और मिश्र । जैसे 'अश्व' यह नामिकनाम का, 'खलु' नैपातिकनाम का, 'धावति' आख्यातिकनाम का, 'परि' औपसर्गिक और 'संयत' यह मिश्रनाम का उदाहरण है ।

[१६१] छहनाम क्या है ? छह प्रकार हैं । औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षापोयशमिक, पारिणामिक और सान्निपातिक । औदयिकभाव क्या है ? दो प्रकार का है । औदयिक और उदयनिष्पन्न । औदयिक क्या है ? ज्ञानावरणादिक आठ कर्मप्रकृतियों के उदय से होने वाला औदयिकभाव है । उदयनिष्पन्न औदयिकभाव क्या है ? दो प्रकार हैं—जीवोदयनिष्पन्न, अजीवोदयनिष्पन्न ।

जीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव क्या है ? अनेक प्रकार का है । यथा—नैरयिक, तिर्यचयोनिक, मनुष्य, देव, पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक, क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, नपुंसकवेदी, कृष्णलेशयी, नील-कापोत-तेज-पद्म-शुक्ललेशयी, मिथ्यादृष्टि, अविस्त, अज्ञानी, आहारक, छद्मस्थ, सयोगी, संसारस्थ, असिद्ध । अजीवोदयनिष्पन्न औदयिकभाव क्या है ? चौदह प्रकार का है । औदारिकशरीर, औदारिकशरीर के व्यापार से परिणामितगृहीत द्रव्य, वैक्रियशरीर, वैयिक्रशरीर के प्रयोग से परिणामित द्रव्य, इसी प्रकार, आहारकशरीर और आहारकशरीर के व्यापार से परिणामित द्रव्य, तैजसशरीर और



तैजसशरीर के व्यापार से परिणामित द्रव्य, कर्मणशरीर और कर्मणशरीर के व्यापार से परिणामित द्रव्य तथा पांचों शरीरों के व्यापार से परिणामित वर्ण, गंध, रस, स्पर्श द्रव्य ।

औपशमिकभाव क्या है ? दो प्रकार का है । उपशम और उपशमनिष्पन्न । उपशम क्या है ? मोहनीयकर्म के उपशम से होने वाले भाव उपशम भाव हैं । उपशमनिष्पन्न औपशमिकभाव क्या है ? अनेक प्रकार हैं । उपशांतक्रोध यावत् उपशांतलोभ, उपशांतराग, उपशांतद्वेष, उपशांतदर्शनमोहनीय, उपशांतचारित्रमोहनीय, उपशांतमोहनीय, औपशमिक सम्यक्त्वलब्धि, औपशमिक चारित्रलब्धि, उपशांतकषायछद्मस्थवीतराग आदि उपशमनिष्पन्न औपशमिकभाव हैं ।

क्षायिकभाव क्या है ? दो प्रकार का कहा गया है । क्षय और क्षयनिष्पन्न । क्षय-क्षायिकभाव किसे कहते हैं ? आठ कर्मप्रकृतियों के क्षय से होने वाला भाव क्षायिक है । क्षयनिष्पन्न क्षायिकभाव क्या है ? अनेक प्रकार का है । यथा—उत्पन्नज्ञानदर्शनधारी, अर्हत्, जिन, केवली, क्षीणआभिनिबोधिकज्ञानावरणवाला, क्षीणश्रुतज्ञानावरणवाला, क्षीणअवधिज्ञानावरणवाला, क्षीणनःपर्यवज्ञानावरण वाला, क्षीणकेवलज्ञानावरण वाला, अविद्यमान आवरण वाला, निरावरण वाला, क्षीणवरण वाला, ज्ञानावरणीयकर्मविप्रमुक्त, केवलदर्शी, सर्वदर्शी, क्षीणनिद्र, क्षीणनिद्रानिद्र, क्षीणप्रचल, क्षीणप्रचलाप्रचल, क्षीणस्त्यानगृद्धि, क्षीणचक्षुदर्शनावरण वाला, क्षीणअचक्षुदर्शनावरण वाला, क्षीणअवधिदर्शनावरण वाला, क्षीणकेवलदर्शनावरण वाला, अनावरण, निरावरण, क्षीणावरण, दर्शनावरणीयकर्मविप्रमुक्त, क्षीणसातावेदनीय, क्षीणअसातावेदनीय, अवेदन, निर्वेदन, क्षीणवेदन, शुभाशुभ-वेदनीयकर्मविप्रमुक्त, क्षीणक्रोध यावत् क्षीणलोभ, क्षीणराग, क्षीणद्वेष क्षीणदर्शनमोहनीय, क्षीणचारित्रमोहनीय, अमोह, निर्मोह, क्षीणमोह, मोहनीयकर्मविप्रमुक्त, क्षीणनरकायुष्क, क्षीणतिर्यचायुष्क, क्षीणमनुष्यायुष्क, क्षीणदेवायुष्क, अनायुष्क, निरायुष्क, क्षीणायुष्क, आयुकर्मविप्रमुक्त, गति-जाति-शरीर-अंगोपांग-बंधन-संघातक-संहनन-अनेक-शरीरवृन्दसंघातविप्रमुक्त, क्षीण-शुभनाम, क्षीण-सुभगनाम, अनाम, निर्नाम, क्षीणनाम, शुभाशुभ नामकर्मविप्रमुक्त, क्षीण-उच्चगोत्र, क्षीण-नीचगोत्र, अगोत्र, निर्गोत्र, क्षीणगोत्र, शुभाशुभगोत्रकर्मविप्रमुक्त, क्षीण-दानान्तराय, क्षीण-लाभान्तराय, क्षीण-बोगान्तराय, क्षीण-उपभोगान्तराय, क्षीणवीर्यान्तराय, अनन्तराय, निरंतराय, क्षीणान्तराय, अंतरायकर्मविप्रमुक्त, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त, अंतकृत, सर्वदुःखप्रहीण । यह क्षयनिष्पन्न क्षायिकभाव का स्वरूप है । इस प्रकार से क्षायिकभाव की वक्तव्यता जानना ।

क्षायोपशमिकभाव क्या है ? दो प्रकार का है । क्षयोपशम और क्षयोपशमनिष्पन्न । क्षयोपशम क्या है ? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनयी और अन्तराय, इन चार घातिकर्मों के क्षयोपशम को क्षयोपशमभाव कहते हैं । क्षयोपशमनिष्पन्न क्षायोपशमिकभाव क्या है ? अनेक प्रकार का है । क्षायोपशमिकी आभिनिबोधिकज्ञानलब्धि यावत् क्षायोपशमिकी मनःपर्यायज्ञानलब्धि, क्षायोपशमिकी मति-अज्ञानलब्धि, क्षायोपशमिकी श्रुत-अज्ञानलब्धि, क्षायोपशमिकी विभंगज्ञानलब्धि, क्षायोपशमिकी चक्षुदर्शनलब्धि, इसी प्रकार अचक्षुदर्शनलब्धि, अवधिदर्शनलब्धि, सम्यग्दर्शनलब्धि, मिथ्यादर्शनलब्धि, सम्यग्मिथ्यादर्शनलब्धि, क्षायोपशमिकी सामायिकचारित्रलब्धि, छेदोपस्थापनालब्धि, परिहारविशुद्धिलब्धि, सूक्ष्मसंपरायिकलब्धि, चारित्राचारित्रलब्धि, क्षायोपशमिकी दान-लाभ-भोग-उपभोग-लब्धि, क्षायोपशमिकी वीर्यलब्धि,

पंडितवीर्यलब्धि, बालवीर्यलब्धि, बालपंडितवीर्यलब्धि, क्षायोपशमिकी श्रोत्रेन्द्रियलब्धि यावत् क्षायोपशमिकी स्पर्शनेन्द्रियलब्धि, क्षायोपशमिक आचारांगधारी, सूत्रकृतांगधारी, स्थानांगधारी, समवायांगधारी, व्याख्याप्रज्ञसिधारी, ज्ञाताधर्मकथांगधारी, उपासकदशांगधारी, अन्तकृद्दशांगधारी, अनुत्तरोपपातिकदशांगधारी, प्रश्नव्याकरणधारी, क्षायोपशमिक विपाकश्रुतधारी, क्षायोपशमिक दृष्टिवादधारी, क्षायोपशमिक नवपूर्वधारी यावत् चौदहपूर्वधारी, क्षायोपशमिक गणी, क्षायोपशमिक वाचक । ये सब क्षयोपशमनिष्पन्नभाव हैं ।

पारिणामिक भाव किसे कहते हैं ? दो प्रकार हैं । सादिपारिणामिक, अनादिपारिणामिक । सादिपारिणामिकभाव क्या है ? अनेक प्रकार हैं ।

[१६२] जीर्ण सुरा, जीर्ण गुड़, जीर्ण घी, जीर्ण तंदुल, अभ्र, अभ्रवृक्ष, संध्या, गंधर्वनगर ।

[१६३] उल्कापात, दिग्दाह, मेघगर्जना, विद्युत्, निर्घात्, यूपक, यक्षादित, धूमिका, महिका, रजोद्धात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रपरिवेष, सूर्यपरिवेष, प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्रधनुष, उदकमत्स्य, कपिहसित, अमोघ, वर्ष, वर्षधर पर्वत, ग्राम, नगर, घर, पर्वत, पातालकलश, भवन, नरक, रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमःप्रभा, सौधर्म, ईशान, यावत् आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, ग्रैवेयक, अनुत्तरोपपातिक देवविमान, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी, परमाणुपुद्गल, द्विप्रदेशिक स्कन्ध से लेकर अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध आसादिपारिणामिकभाव रूप हैं । अनादिपारिणामिकभाव क्या है ? धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्वासमय, लोक, अलोक, भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, ये अनादि पारिणामिक हैं ।

सान्निपातिकभाव क्या है ? औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक, इन पांचों भावों के द्विकसंयोग, त्रिकसंयोग, चतुःसंयोग और पंचसंयोग से जो भाव निष्पन्न होते हैं वे सब सान्निपातिकभाव नाम हैं । उनमें से द्विकसंयोगज दस, त्रिकसंयोगज दस, चतुःसंयोगज पांच और पंचसंयोगज एक भाव हैं । इस प्रकार सब मिलाकर ये छब्बीस सान्निपातिकभाव हैं । दो-दो के संयोग से निष्पन्न दस भंगों के नाम इस प्रकार हैं—औदयिक-औपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव, औदयिक-क्षायिक के संयोग से निष्पन्न भाव, औदयिक-क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव, औदयिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव, औपशमिक-क्षायिक के संयोग से निष्पन्न भाव, औपशमिक-क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव, औपशमिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव, क्षायिक-क्षायोपशमिक के संयोग से निष्पन्न भाव, क्षायिक-पारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव तथा क्षायोपशमिकपारिणामिक के संयोग से निष्पन्न भाव ।

भगवन् ! औदयिक-औपशमिकभाव के संयोग से निष्पन्न भंग क्या है ? औदयिकभाव में मनुष्यगति और औपशमिकभाव में उपशांतकषाय को ग्रहण करने रूप औदयिक-औपशमिकभाव है । औदयिकभाव में मनुष्यगति और क्षायिकभाव में क्षायिक सम्यक्त्व का ग्रहण औदयिकक्षायिकभाव है । औदयिकभाव में मनुष्यगति और क्षायोपशमिकभाव में इन्द्रियां जानना । यह औदयिक-क्षायोपशमिकभाव का स्वरूप है ।

औदयिक-पारिणामिकभाव के संयोग से निष्पन्न भंग क्या है ? औदयिकभाव में

मनुष्यगति और पारिणामिकभाव में जीवत्व को ग्रहण करना औदयिक-पारिणामिकभाव का स्वरूप है । उपशांतकषाय और क्षायिक सम्यक्त्व यह औपशमिक-क्षायिकसंयोगज भाव का स्वरूप है । औपशमिकभाव में उपशांतकषाय और क्षयोपशमनिष्पन्न में इन्द्रियां यह औपशमिक-क्षयोपशमनिष्पन्नभाव का स्वरूप है । औपशमिकभाव में उपशांतकषाय और पारिणामिकभाव में जीवत्व यह औपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप है । क्षायिक सम्यक्त्व और क्षयोपशमिक इन्द्रियां यह क्षायिक-क्षयोपशमिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप जानना । क्षायिकभाव में क्षायिक सम्यक्त्व और पारिणामिकभाव में जीवत्व का ग्रहण क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप है । क्षयोपशमिकभाव में इन्द्रियां और पारिणामिकभाव में जीवत्व को ग्रहण किया जाये तो यह क्षयोपशमिक-पारिणामिकभाव का स्वरूप है ।

सान्निपातिकभाव में त्रिकसंयोगज दस भंग हैं—औदयिकऔपशमिक-क्षायिकनिष्पन्नभाव, औदयिक-औपशमिक-क्षयोपशमिकनिष्पन्नभाव, औदयिकऔपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, औदयिक-क्षायिक-क्षयोपशमिकनिष्पन्नभाव, औदयिकक्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, औदयिक-क्षयोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, औपशमिकक्षायिक-क्षयोपशमिकनिष्पन्नभाव, औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, औपशमिकक्षयोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, क्षायिक-क्षयोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव ।

औदयिक-औपशमिक-क्षायिकनिष्पन्नभाव क्या है ? मनुष्यगति औदयिकभाव, उपशांतकषाय औपशमिकभाव और क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप है । मनुष्यगति औदयिकभाव, उपशांतकषाय औपशमिक और इन्द्रियां क्षयोपशमिकभाव, इस प्रकार औदयिक-औपशमिक-क्षयोपशमिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप जानना चाहिये । मनुष्यगति औदयिक, उपशांतकषाय औपशमिक और जीवत्व पारिणामिक भाव, इस प्रकार से औदयिक-औपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव का स्वरूप है । मनुष्यगति औदयिक, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव और इन्द्रियां क्षयोपशमिकभाव यह औदयिक-क्षायिक-क्षयोपशमिकनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है । मनुष्यगति औदयिकभाव, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिकभाव और जीवत्व पारिणामिकभाव इस प्रकार का औदयिक-क्षायिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है । मनुष्यगति औदयिक, इन्द्रियां क्षयोपशमिक और जीवत्व पारिणामिक, यह औदयिक-क्षयोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप जानना । उपशांतकषाय औपशमिकभाव, क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव, इन्द्रियां क्षयोपशमिकभाव, यह औपशमिक-क्षायिक-क्षयोपशमिकनिष्पन्न सान्निपातिकभाव है । उपशांतकषाय औपशमिकभाव, क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव, जीवत्व पारिणामिकभाव, यह औपशमिक-क्षायिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप जानना चाहिये । उपशांतकषाय औपशमिकभाव, इन्द्रियां क्षयोपशमिक और जीवत्व पारिणामिक, इस प्रकार से यह औपशमिक-क्षयोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्नसान्निपातिकभाव का स्वरूप जानना । क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकभाव, इन्द्रियां क्षयोपशमिकभाव और जीवत्व पारिणामिकभाव, इस प्रकार का क्षायिक-क्षयोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है ।

चार भावों के संयोग से निष्पन्न सान्निपातिकभाव के पांच भंगों के नाम इस प्रकार हैं—  
औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षयोपशमिकनिष्पन्नभाव, औदयिक-औपशमिक-



क्षायिकपारिणामिकनिष्पन्नभाव, औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, औदयिकक्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव, औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव । औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकनिष्पन्न सान्निपातिकभाव क्या है ? औदयिकभाव में मनुष्य, औपशमिकभाव में उपशांतकषाय, क्षायिकभाव में क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायोपसमिकभाव में इन्द्रियां, यह औदयिक-औपशमिकक्षायिक-क्षायोपशमिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है । औदयिकभाव में मनुष्यगति, औपशमिकभाव में उपशांतकषाय, क्षायिकभाव में क्षायिकसम्यक्त्व और पारिणामिकभाव में जीवत्व, यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिकपारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है । औदयिकभाव में मनुष्यगति, औपशमिकभाव में उपशांतकषाय, क्षायोपशमिकभाव में इन्द्रियां और पारिणामिकभाव में जीवत्व, इस प्रकार से औदयिक-औपशमिकक्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव के तृतीय भंग का स्वरूप जानना । औदयिकभाव में मनुष्यगति, क्षायिकभाव में क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकभाव में इन्द्रियां और पारिणामिकभाव में जीवत्व, यह औदयिक-क्षायिक-क्षायोपशमिकपारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है । औपशमिकभाव में उपशांतकषाय, क्षायिकभाव में क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकभाव में इन्द्रियां और पारिणामिकभाव में जीवत्व, यह औपशमिक-क्षायिकक्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है ।

पंचसंयोगज सान्निपातिकभाव का एक भंग इस प्रकार है—औदयिक-औपशमिकक्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नभाव । औदयिक-औपशमिक-७यिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव क्या है ? औदयिकभाव में मनुष्यगति, औपशमिकभाव में उपशांतकषाय, क्षायिकभाव में क्षायिकसम्यक्त्व, ७योपशमिकभाव में इन्द्रियां और पारिणामिकभाव में जीवत्व, यह औदयिक-औपशमिक-क्षायिक-क्षायोपशमिक-पारिणामिकभावनिष्पन्न सान्निपातिकभाव का स्वरूप है । इस प्रकार से सान्निपातिकभाव और हाथ ही पङ्नाम का वर्ण समाप्त हुआ ।

[१६४-१६५] सप्तनाम क्या है ? सात प्रकार के स्वर रूप है ।—षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद, ये सात स्वर जानना ।

[१६६-१६८] इन सात स्वरों के सात स्वर स्थान हैं । जिह्वा के अग्रभाग से षड्जस्वर का, वक्षस्थल से ऋषभस्वर, कंठ से गांधारस्वर, जिह्वा के मध्यभाग से मध्यमस्वर, नासिका से पंचमस्वर का, दंतोष्ठ-संयोग से धैवतस्वर का और मूर्धा से निषाद स्वर का उच्चारण करना चाहिए ।

[१६९-१७१] जीवनिश्चित-सप्तस्वरों का स्वरूप इस प्रकार है—मयूर षड्जस्वर में, कुक्कुट ऋषभस्वर, हंस गांधारस्वर में, गवेलक मध्यमस्वर में, कोयल पुष्पोत्पत्तिकाल में पंचमस्वर में, सारस और क्राँच पक्षी धैवतस्वर में तथा—हाथी निषाद स्वर में बोलता है ।

[१७२-१७४] अजीवनिश्चित-मृदंग से षड्जस्वर, गोमुखी से ऋषभस्वर, शंख से गांधारस्वर, झालर से मध्यमस्वर, चार चरणों पर स्थित गोधिका से पंचमस्वर, आडंबर से धैवतस्वर तथा महाभेरी से निषादस्वर निकलता है ।

[१७५-१८२] इन सात स्वरों के सात स्वरलक्षण हैं । षड्जस्वर वाला मनुष्य वृत्ति—

आजीविका प्राप्त करता है । उसका प्रयत्न व्यर्थ नहीं जाता है । उसे गोधन, पुत्र-पौत्रादि और सन्मित्रों का संयोग मिलता है । वह स्त्रियों का प्रिय होता है । ऋषभस्वरवाला मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है । सेनापतित्व, धन-धान्य, वस्त्र, गंध-सुगंधित पदार्थ, आभूषण-अलंकार, स्त्री, सयनासन आदि भोगसाधनों को प्राप्त करता है । गांधारस्वर वाला श्रेष्ठ आजीविका प्राप्त करता है । वादित्रवृत्ति वाला होता है कलाविदों में श्रेष्ठ है । कवि होता है । प्राज्ञ-चतुर तथा अनेक शास्त्रों में पारंगत होता है । मध्यमस्वरभाषी सुखजीवी होते हैं । रुचि के अनुरूप खाते-पीते और जीते हैं तथा दूसरों को भी खिलाते-पिलाते तथा दान देते हैं । पंचमस्वरवाला व्यक्ति भूपति, शूरी, संग्राहक और अनेक गुणों का नायक होता होता है । धैवतस्वरवाला पुरुष कलहप्रिय, शाकुनिक, वागुरिक, शौकरिक और मत्स्यबंधक होता है । निषादस्वर वाला पुरुष चांडाल, वधिक, मुक्केबाज, गोघातक, चोर और इसी प्रकार के दूसरे-दूसरे पाप करने वाला होता है ।

[१८३-१८९] इन सात स्वरों के तीन ग्राम हैं । षड्जग्राम, मध्यमग्राम, गांधारग्राम । षड्जग्राम की सात मूर्च्छनाएँ हैं । मंगी, कौरवीया, हरित्, रजनी, सारकान्ता, सारसी और शुद्धषड्ज । मध्यमग्राम की सात मूर्च्छनाएँ हैं । उत्तरमंदा, रजनी, उत्तरा, उत्तरायता, अश्वक्रान्ता, सौवीरा, अभिरुद्गता । गांधारग्राम की सात मूर्च्छनाएँ हैं । नन्दी, क्षुद्रिका, पूरिमा, शुद्धगांधारा, उत्तरगांधारा, सुष्ठुतर-आयामा और उत्तरायता—

[१९०-१९२]—सप्तस्वर कहाँ से—उत्पन्न होते हैं ? गीत की योनि क्या है ? इसके उच्छ्वासकाल का समयप्रमाण कितना है ? गीत के कितने आकार होते हैं ? सातों स्वर नाभि से उत्पन्न होते हैं । रुदन गीत की योनि है । पादसम—उतना उसका उच्छ्वासकाल होता है । गीत के तीन आकार होते हैं—आदि में मृदु, मध्य में तीव्र और अंत में मंद । इस प्रकार से गीत के तीन आकार जानना ।

[१९३] संगीत के छह दोषों, आठ गुणों, तीन वृत्तों और दो भणितियों को यथावत् जानने वाला सुशिक्षित—व्यक्ति रंगमंच पर गायेगा ।

[१९४] गीत के छह दोष हैं—भीतदोष, द्रुतदोष, उत्पिच्छदोष, उत्तालदोष, काकस्वरदोष और अनुनासदोष ।

[१९५] गीत के आठ गुण हैं—पूर्णगुण, रक्तगुण, अलंकृतगुण, व्यक्तगुण, अविघुष्टगुण, मधुरगुण, समगुण, सुललितगुण ।

[१९६] गीत के आठ गुण और भी हैं, उरोविशुद्ध, कंठविशुद्ध, शिरोविशुद्ध, मृदुक, रिभित, पदबद्ध, समतालप्रत्युत्क्षेप और सप्तस्वरसीभर—

[१९७] (प्रकारान्तर से) सप्तस्वरसीभर की व्याख्या इस प्रकार है—अक्षरसम, पदसम, तालसम, लयसम, ग्रहसम, निश्वसितोच्छ्वसितसम और संचारसम— इस प्रकार गीत स्वर, तंत्री आदि के साथ संबन्धित होकर सात प्रकार का हो जाता है ।

[१९८] गेय पदों के आठ गुण हैं—निर्दोष, सारवंत, हेतुयुक्त, अलंकृत, उपनीत, सोपचार, मित और मधुर ।

[१९९] गीत के वृत्त-छन्द तीन प्रकार के हैं—सम, अर्धसम और सर्वविषम । इनके अतिरिक्त चौथा प्रकार नहीं है ।

[२००] भणतियां दो प्रकार की हैं—संस्कृत और प्राकृत । ये दोनों प्रशस्त एवं ऋषिभाषित हैं और स्वरमंडल में पाई जाती है ।

[२०१-२०२] कौन स्त्री मधुर स्वर में गीत गाती है ? पुरुष और रूक्ष स्वर में कौन गाती है ? चतुराई से कौन गाती है ? विलंबित स्वर में कौन गाती है ? द्रुत स्वर में कौन गाती है ? तथा विकृत स्वर में कौन गाती है ? श्यामा स्त्री मधुर स्वर में गीत गाती है, कृष्णवर्णा स्त्री खर और रूक्ष स्वर में, गौरवर्णा स्त्री चतुराई से, कानी स्त्री विलंबित स्वर में, अंधी स्त्री शीघ्रता से और पिंगला विकृत स्वर में गीत गाती है ।

[२०३-२०४] इस प्रकार सात स्वर, तीन ग्राम और इक्कीस मूर्च्छनायेँ होती हैं । प्रत्येक स्वर सात तानों से गाया जाता है, इसलिये उनके उनपचास भेद हो जाते हैं । इस प्रकार स्वरमंडल का वर्णन समाप्त हुआ ।

[२०५-२०७] अष्टनाम क्या है ? आठ प्रकार की वचनविभक्तियों अष्टनाम हैं । वचनविभक्ति के वे आठ प्रकार यह हैं—निर्देश अर्थ में प्रथमा, उपदेशक्रिया के प्रतिपादन में द्वितीया, क्रिया के प्रति साधकतम कारण में तृतीया, संप्रदान में चतुर्थी, अपादान में पंचमी, स्व-स्वामित्वप्रतिपादन में षष्ठी सन्निधान में सप्तमी और संबोधित, अर्थ में अष्टमी विभक्ति होती है ।

[२०८-२१२] निर्देश में प्रथमा विभक्ति होती है । जैसे—वह, यह अथवा मैं । उपदेश में द्वितीया विभक्ति होती है । —जैसे इसको कहो, उसको करो आदि । करण में तृतीया विभक्ति होती है । जैसे—उसके और मेरे द्वारा कहा गया अथवा उसके ओर मेरे द्वारा किया गया । संप्रदान, नमः तथा स्वाहा अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है । अपादान में पंचमी होत है । जैसे—यहां से दूर करो अथवा इससे ले लो । स्वस्वामीसम्बन्ध बतलाने में षष्ठी विभक्ति होती है । जैसे—उसकी अथवा इसकी यह वस्तु है । आधार, काल और भाव में सप्तमी विभक्ति होती है । जैसे (वह) इसमें है । आमंत्रण अर्थ में अष्टमी विभक्ति होती है । जैसे—हे युवन् !

[२१३-२१४] नवनाम क्या है ? काव्य के नौ रस नवनाम कहलाते हैं । जिनके नाम हैं—वीररस, शृंगाररस, अद्भुतरस, रौद्ररस, व्रीडनकररस, बीभत्सरस, हास्यरस, कारुण्यरस और प्रशांतरस ।

[२१५-२१६] इन नव रसों में १. परित्याग करने में गर्व या पश्चात्ताप न होने, २. तपश्चरण में धैर्य और ३. शत्रुओं का विनाश करने में पराक्रम होने रूप लक्षण वाला वीररस है । राज्य-वैभव का परित्याग करके जो दीक्षित हुआ और दीक्षित होकर काम-क्रोध आदि रूप महाशत्रुपक्ष का जिसने विघात किया, वही निश्चय से महावीर है ।

[२१७-२१८] शृंगाररस रति के कारणभूत साधनों के संयोग की अभिलाषा का जनक है तथा मंडन, विलास, विब्वोक, हास्य-लीला और रमण ये सब शृंगाररस के लक्षण हैं । कामचेष्टाओं से मनोहर कोई श्यामा क्षुद्र घंटिकाओं से मुखरित होने से मधुर तथा युवकों के हृदय को उन्मत्त करने वाले अपने कोटिसूत्र का प्रदर्शन करती है ।

[२१९-२२०] पूर्व में कभी अनुभव में नहीं आये अथवा अनुभव में आये किसी विस्मयकारी आश्चर्यकारक पदार्थ को देखकर जो आश्चर्य होता है, वह अद्भुतरस है । हर्ष और



विषाद की उत्पत्ति अद्भुतरस का लक्षण है । इस जीवलोक में इससे अधिक अद्भुत और क्या हो सकता है कि जिनवचन द्वारा त्रिकाल संबन्धी समस्त पदार्थ जान लिये जाते हैं ।

[२२१-२२२] भयोत्पादक रूप, शब्द अथवा अंधकार के चिन्तन, कथा, दर्शन आदि से रौद्ररस उत्पन्न होता है और संमोह, संभ्रम, विषाद एवं मरण उसके लक्षण हैं । भृकृटियों से तेरा मुख विकराल बन गया है, तेरे दांत हीठों को चबा रहे हैं, तेरा शरीर खून से लथपथ हो रहा है, तेरे मुख से भयानक शब्द निकल रहे हैं, जिससे तू राक्षस जैसा हो गया है और पशुओं की हत्या कर रहा है । इसलिए अतिशय रौद्ररूपधारी तू साक्षात् रौद्ररस है ।

[२२३-२२४] विनय करने योग्य माता-पिता आदि गुरुजनों का विनयन करने से, गुप्त रहस्यों को प्रकट करने से तथा गुरुपत्नी आदि के साथ मर्यादा का उल्लंघन करने से व्रीडनकरस उत्पन्न होता है । लज्जा और शंका उत्पन्न होना, इस रस के लक्षण हैं । इस लौकिक व्यवहार से अधिक लज्जास्पद अन्य बात क्या हो सकती है—मैं तो इससे बहुत लजाती हूँ कि वर-वधू का प्रथम समागम होने पर सास आदि वधू द्वारा पहने वस्त्र की प्रशंसा करते हैं ।

[२२५-२२६] अशुचि, शव, मृत शरीर, दुर्दर्शन, को बारंबार देखने रूप अभ्यास से या उसकी गंध से बीभत्सरस उत्पन्न होता है । निर्वेद और अविहिंसा बीभत्सरस के लक्षण हैं । अपवित्र मल से भरे हुए झरनों से व्याप्त और सदा सर्वकाल स्वभावतः दुर्गन्धयुक्त यह शरीर सर्व कलहों का मूल है । ऐसा जानकर जो व्यक्ति उसकी मूर्च्छा का त्याग करते हैं, वे धन्य हैं ।

[२२७-२२८] रूप, वय, वेष और भाषा की विपरीतता से हास्यरस उत्पन्न होता है । हास्यरस मन को हर्षित करनेवाला है और प्रकाश—मुख, नेत्र आदि का विकसित होना, अट्टहास आदि उसके लक्षण हैं । प्रातः सोकर उठे, कालिमा से—काजल की रेखाओं से मंडित देवर के मुख को देखकर स्तनयुगल के भार से नमित मध्यभाग वाली कोई युवती ही-ही करती हँसती है ।

[२२९-२३०] प्रिय के वियोग, बंध, वध, व्याधि, विनिपात, पुत्रादि-मरण एवं संभ्रम-परचक्रादि के भय आदि से करुणरस उत्पन्न होता है । शोक, विलाप, अतिशय म्लानता, रुदन आदि करुणरस के लक्षण हैं । हे पुत्रिके ! प्रियतम के वियोग में उसकी वारंवार अतिशय चिन्ता से क्लान्त-मुर्झाया हुआ और आंसुओं से व्याप्त नेत्रोंवाला तेरा मुख दुर्बल हो गया है ।

[२३१-२३२] निर्दोष, मन की समाधि से और प्रशान्त भाव से जो उत्पन्न होता है तथा अविकार जिसका लक्षण है, उसे प्रशान्तरस जानना चाहिये । सद्भाव के कारण निर्विकार, रूपादि विषयों के अवलोकन की उत्सुकता के परित्याग से उपशान्त एवं क्रोधादि दोषों के परिहार से प्रशान्त, सौम्य दृष्टि से युक्त मुनि का मुखकमल वास्तव में अतीव श्रीसम्पन्न होकर सुशोभित हो रहा है ।

[२३३] गाथाओं द्वारा कहे गये ये नव काव्यरस अलीकता आदि सूत्र के बत्तीस दोषों से उत्पन्न होते हैं और ये रस कहीं शुद्ध भी होते हैं और कहीं मिश्रित भी होते हैं ।

[२३४] नवनाम का निरूपण पूर्ण हुआ ।

[२३५] दसनाम क्या है ? दस प्रकार के नाम दस नाम हैं । गौणनाम, नोगौणनाम, आदानपदनिष्पन्ननाम, प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम, प्रधानपदनिष्पन्ननाम, अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम,

नामनिष्पन्ननाम, अवयवनिष्पन्ननाम, संयोगनिष्पन्ननाम, प्रमाणनिष्पन्ननाम । गौण— क्या है ? जो क्षमागुण से युक्त हो उसका 'क्षमण' नाम होना, जो तपे उसे तपन (सूर्य), प्रज्वलित हो उसे ज्वलन (अग्नि), जो बहे उसे पवन कहना । नोगौणनाम क्या है ? वह इस प्रकार जानना—कुन्त से रहित होने पर भी पक्षी को 'सकुन्त' कहना । मूंग धान्य से रहित होने पर भी डिविया को 'समुद्ग' कहना । इसी तरह समुद्र, पलाल, सकुलि, पलाश, मातृवाहक 'बीजवापक' 'इन्द्रगोप' आदि समझना ।

आदानपदनिष्पन्ननाम क्या है ? आवंती, चातुरंगिजं, असंखयं, अहातत्थिजं अद्दइजं, जण्णइजं, पुरिसइजं (उसुकारिजं), एलइजं, वीरियं, धम्म, मग्ग, समोसरणं, जमईयं आदि आदानपदनिष्पन्ननाम हैं । प्रतिपक्षपद से निष्पन्ननाम क्या है ? इस प्रकार है—नवीन ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पट्टन, आश्रम, संबाह और सन्निवेश आदि में निवास करने पर अशिवा को 'शिवा' शब्द से उच्चारित करना । अग्नि को शीतल और विष को मधुर, कलाल के घर में 'आम्ल' के स्थान पर 'स्वादु' शब्द का व्यवहार होना । इसी प्रकार रक्त वर्ण का हो उसे अलक्तक, लाबु को अलाबु, सुंभक को कुसुंभक और विपरीतभाषक को 'अभापक' कहना । यह सब प्रतिपक्षपदनिष्पन्ननाम जानना ।

प्रधानपदनिष्पन्ननाम क्या है ? इस प्रकार है, अशोकवन, सप्तपर्णवन, चंपकवन, आम्रवन, नागवन, पुत्रागवन, इक्षुवन, द्राक्षावन, शालवन, ये सब प्रधानपदनिष्पन्ननाम हैं । अनादिसिद्धान्तनिष्पन्ननाम क्या है ? इस प्रकार है—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, अद्वासमय । नामनिष्पन्ननाम क्या है ? इस प्रकार है—पिता या पितामह अथवा पिता के पितामह के नाम से निष्पन्न नाम नामनिष्पन्ननाम है । अवयवनिष्पन्ननाम क्या है ? इस प्रकार जानना—

[२३६-२३८] श्रृंगी, शिखी, विषाणी, दंष्ट्री, पक्षी, खुरी, नखी, वाली, द्विपद, चतुष्पद, बहुपद, लांगूली, केशरी, ककुदी आदि । परिकरबंधन—विशिष्ट रचना युक्त वस्त्रों के पहनने से—कमर कसने से योद्धा परिचाना जाता है, विशिष्ट प्रकार के वस्त्रों को पहनने से महिला पहिचानी जाती है, एक कण पकने से द्रोणपरिमित अन्न का पकना और एक ही गाथा के सुनने से कवि को पहिचाना जाता है । यह सब अवयवनिष्पन्ननाम हैं ।

संयोगनिष्पन्ननाम क्या है ? संयोग चार प्रकार का है—द्रव्यसंयोग, क्षेत्रसंयोग, कालसंयोग, भावसंयोग । द्रव्यसंयोग तीन प्रकार का है, सचित्तद्रव्यसंयोग, अचित्तद्रव्यसंयोग, मिश्रद्रव्यसंयोग । सचित्तद्रव्य के संयोग से निष्पन्न नाम का स्वरूप इस प्रकार है—गाय के संयोग से गोमान्, महिषी के संयोग से महिषीमान्, मेषियों के संयोग से मेषीमान् और ऊंटनियों के संयोग से उट्टीपाल नाम होना आदि सचित्तद्रव्यसंयोग से निष्पन्न नाम हैं । अचित्त द्रव्य के संयोग से निष्पन्न नाम का यह स्वरूप है—छत्र के संयोग से छत्री, दंड के संयोग से दंडी, पट के संयोग से पटी, घट के संयोग से घटी, कट के संयोग से कटी आदि नाम अचित्तद्रव्यसंयोगनिष्पन्न नाम हैं । मिश्रद्रव्यसंयोगनिष्पन्न नाम का स्वरूप इस प्रकार जानना—हल के संयोग से हालिक, शकट के संयोग से शाकटिक, रथ के संयोग से रथिक, नाव के संयोग से नाविक आदि नाम मिश्रद्रव्यसंयोगनिष्पन्ननाम हैं ।

क्षेत्रसंयोग से निष्पन्न नाम क्या है ? इस प्रकार है—यह भरतक्षेत्रीय है, ऐरावतक्षेत्रीय

है, हेमवतक्षेत्रीय है, ऐरण्यवतक्षेत्रीय है, यावत् यह उत्तरकुरुक्षेत्रीय है । अथवा यह मागधीय है, मालवीय है, सौराष्ट्रीय है, महाराष्ट्रीय है, आदि नाम क्षेत्रसंयोगनिष्पन्ननाम हैं । कालसंयोग से निष्पन्न नाम क्या है ? इस प्रकार है—सुषमसुषम काल में उत्पन्न होने से यह 'सुषम-सुषमज' है, सुषमकाल में उत्पन्न होने से 'सुषमज' है । इसी प्रकार से सुषमदुषमज, दुषमसुषमज, दुषमज, दुषमदुषमज नाम भी जानना । अथवा यह प्रावृषिक है, यह वर्षारत्रिक है, यह शारद है, हेमन्तक है, वासन्तक है, ग्रीष्मक है आदि सभी नाम कालसंयोग से निष्पन्न नाम हैं ।

भावसंयोगनिष्पन्ननाम क्या है ? दो प्रकार हैं । प्रशस्तभावसंयोगज, अप्रशस्त-भावसंयोगज । प्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्ननाम क्या है ? ज्ञान के संयोग से ज्ञानी, दर्शन के संयोग से दर्शनी, चारित्र के संयोग से चारित्री नाम होना प्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्न नाम है । अप्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्न नाम क्या है ? क्रोध से संयोग से क्रोधी, मान के संयोग से मानी, माया के संयोग से मायी और लोभ के संयोग से लोभी नाम होना अप्रशस्तभावसंयोगनिष्पन्न नाम हैं । इसी प्रकार से भावसंयोगजनाम का स्वरूप और साथ ही संयोगनिष्पन्न नाम की वक्तव्यता जानना । प्रमाण से निष्पन्न नाम क्या है ? चार प्रकार हैं । नामप्रमाण से निष्पन्न नाम, स्थापनाप्रमाण से निष्पन्न नाम, द्रव्यप्रमाण से निष्पन्न नाम, भावप्रमाण से निष्पन्न नाम ।

नामप्रमाणनिष्पन्न नाम क्या है ? इस प्रकार है—किसी जीव या अजीव का अथवा जीवों या अजीवों का, तदुभव का अथवा तदुभयों का 'प्रमाण' ऐसा जो नाम रख लिया जाता है, वह नामप्रमाण और उससे निष्पन्न नाम नामप्रमाण निष्पन्ननाम है । स्थापनाप्रमाणनिष्पन्न नाम क्या है ? सात प्रकार का है ।

[२३९] नक्षत्रनाम, देवनाम, कुलनाम, पाषंडनाम, गणनाम, जीवितनाम और आभिप्रायिकनाम ।

[२४०] नक्षत्रनाम—क्या है ? वह इस प्रकार है—कृत्तिका नक्षत्र में जन्मे का कृत्तिक, कृत्तिकादत्त, कृत्तिकाधर्म, कृत्तिकाशर्म, कृत्तिकादेव, कृत्तिकादास, कृत्तिकासेन, कृत्तिकारक्षित आदि नाम रखना । रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न हुए का रोहिणेय, रोहिणीदत्त, रोहिणीधर्म, रोहिणीशर्म, रोहिणीदेव, रोहिणीदास, रोहिणीसेन, रोहिणीरक्षित नाम रखना । इसी प्रकार अन्य सब नक्षत्रों में जन्मे हुआओं के उन-उन नक्षत्रों के आधार से रखे नामों के विषय में जानना चाहिये । नक्षत्रनामों की संग्राहक गाथायें इस प्रकार हैं—

[२४१-२४४] कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुरादा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिः, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी, भरिणी, यह नक्षत्रों के नामों की परिपाटी है । इस प्रकार नक्षत्रनाम का स्वरूप है ।

देवनाम क्या है ? यथा—अग्नि देवता से अधिष्ठित नक्षत्र में उत्पन्न हुए का आग्रिक, अग्रिदत्त, अग्रिधर्म, अग्रिशर्म, अग्रिदास, अग्रिसेन, अग्रिरक्षित आदि नाम रखना । इसी प्रकार से अन्य सभी नक्षत्र-देवताओं के नाम पर स्थापित नामों के लिये भी जानना चाहिये । देवताओं के नामों की भी संग्राहक गाथायें हैं, यथा—

[२४५-२४७] अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, अदिति, बृहस्पति, सर्प, पिता, भग, अर्यमा, सविता, त्वष्टा, वायु, इन्द्राग्नि, मित्र, इन्द्र, निर्ऋति, अम्भ, विश्व, ब्रह्मा, विष्णु, वसु,



वरुण, अज, विवर्द्धि, पूषा, अश्व और यम, यह अट्ठाईस देवताओं के नाम जानना चाहिये। यह देवनाम का स्वरूप है।

कुलनाम किसे कहते हैं ? जैसे उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, ज्ञात, कौरव्य इत्यादि। यह कुलनाम का स्वरूप है। भगवन् ! पाषण्डनाम क्या है ? श्रमण, पाण्डुरांग, भिक्षु, कापालिक, तापस, परिव्राजक यह पाषण्डनाम जानना। भगवन् ! गणनाम क्या है ? गण के आधार से स्थापित नाम गणनाम हैं।—मल्ल, मल्लदत्त, मल्लधर्म, मल्लशर्म, मल्लदेव, मल्लदास, मल्लसेन, मल्लरक्षित आदि गण-स्थानानिष्पन्ननाम हैं।

जीवितहेतुनाम क्या है ? जीवित रखने के निमित्त नाम रखने जीवितहेतुनाम हैं। उत्कुरुटक, उज्झितक, कचवरक, सूर्पक आदि। आभिप्रायिकनाम क्या है ? जैसे—अंबक, निम्बक, बकुलक, पलाशक, स्नेहक, पीलुक, करीरक आदि आभिप्रायिक नाम जानना चाहिये। द्रव्यप्रमाणनिष्पन्ननाम क्या है ? छह प्रकार का है। धर्मास्तिकाय यावत् अद्वासमय। भावप्रमाण किसे कहते हैं ? भावप्रमाण, सामासिक, तद्धितज, धातुज और निरुक्तिज के भेद से चार प्रकार का है। सामासिकभावप्रमाण किसे कहते हैं ? सामासिकनामनिष्पन्नता के हेतुभूत समास सात हैं।

[२४८] द्वन्द्व, बहुब्रीहि, कर्मधारय, द्विगु, तत्पुरुष, अव्ययीभाव और एकशेष।

[२४९] द्वन्द्वसमास क्या है ? 'दंताश्च ओष्ठौ च इति दंतोष्ठम्', 'स्तनौ च उदरं च इति स्तनोदरम्', 'वस्त्रं च पात्रं च वस्त्रपात्रम्,' ये सभी शब्द द्वन्द्वसमास रूप हैं। बहुब्रीहिसमास का लक्षण यह है—इस पर्वत पर पुष्पित कुटज और कदंब वृक्ष होने से यह पर्वत फुल्लकुटजकदंब है। यहाँ 'फुल्लकुटजकदंब' पर बहुब्रीहिसमास है। 'धवलो वृषभः धवलवृषभः', 'कृष्णो मृगः कृष्णमृगः', 'श्वेतः पटः श्वेतपटः' 'रक्तपटः' यह कर्मधारयसमास है।

द्विगुसमास का रूप इस प्रकार का है—तीन कटुक वस्तुओं का समूह—त्रिकटुक, तीन मधुरों का समूह—त्रिमधुर, तीन गुणों का समूह—त्रिगुण, तीन स्वरों का समूह—त्रिस्वर, दस ग्रामों का समूह—दसग्राम, दस पुरों का समूह—दसपुर, यह द्विगुसमास है। तत्पुरुषसमास का स्वरूप इस प्रकार जानना—तीर्थ में काक तीर्थकाक, वन में हस्ती वनहस्ती, यह तत्पुरुषसमास है। अव्ययीभावसमास इस प्रकार जानना—ग्राम के समीप—'अनुग्रामं', नदी के समीप—'अनुनदिकम्', इसी प्रकार अनुस्पर्शम्, अनुचरितम् आदि अव्ययीभावसमास के उदाहरण हैं। जिसमें एक शेष रहे, वह एकशेषसमास है। वह इस प्रकार—जैसा एक पुरुष वैसे अनेक पुरुष और जैसे अनेक पुरुष वैसे एक पुरुष जैसा एक कार्षापण वैसे अनेक कार्षापण और जैसे अनेक कार्षापण वैसे एक कार्षापण, इत्यादि एकशेषसमास के उदाहरण हैं। तद्धित से निष्पन्न नाम क्या है ?

[२५०] कर्म, शिल्प, श्लोक, संयोग, समीप, संयूथ, ऐश्वर्य, अपत्य, इस प्रकार तद्धितनिष्पन्ननाम आठ प्रकार का है।

[२५१] कर्मनाम क्या है ? दौष्यिक, सौत्रिक, कार्पासिक, सूत्रवैचारिक, भांडवैचारिक, कौलालिक, ये सब कर्मनिमित्तज नाम हैं। तौत्रिक तान्तुवायिक, पाट्टकारिक, औद्वृत्तिक वारुंटिक मौज्जकारिक, काष्ठकारिक छात्रकारिक वाह्यकारिक, पौस्तकारिक चैत्रकारिक दान्तकारिक लैप्यकारिक शैलकारिक कौटिटमकारिक। यह शिल्पनाम हैं। सभी के अतिथि श्रमण, ब्राह्मण श्लोकनाम के उदाहरण हैं। संयोगनाम का रूप इस प्रकार समझना—राजा का ससुर—राजकीय

ससुर, राजा का साला—राजकीय साला, राजा का साढू—राजकीय साढू, इत्यादि संयोगनाम हैं। समीपनाम किसे कहते हैं ? समीप अर्थक तद्धित प्रत्यय-निष्पन्ननाम—गिरि के समीप का नगर गिरिनगर, विदिशा के समीप का नगर वैदिश, आदि रूप जानना । तरंगवतीकार, मलयवतीकार, आत्मानुषष्टिकार, बिन्दुकार आदि नाम संयूथनामके उदाहरण हैं । ऐश्वर्य द्योतक शब्दों से तद्धित प्रत्यय करने पर निष्पन्न ऐश्वर्यनाम राजेश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सार्थवाह, सेनापति आदि रूप हैं । यह ऐश्वर्यनाम का स्वरूप है । अपत्य—पुत्र से विशेषित होने अर्थ में तद्धित प्रत्यय लगाने से निष्पन्ननाम इस प्रकार हैं—तीर्थकरमाता, चक्रवर्तीमाता, बलदेवनमाता, वासुदेवमाता, राजमाता, गणिमाता, वाचकमाता आदि ये सब अपत्यनाम हैं ।

धातुजनाम क्या है ? परस्मैपदी सत्तार्थक भू धातु, वृद्ध्यर्थक एध् धातु, संघर्षार्थक स्पर्द्ध धातु, प्रतिष्ठा, लिप्सा या संचय अर्थक गाधृ और विलोडनार्थक बाधृ धातु आदि से निष्पन्न भव, एधमान आदि नाम धातुजनाम हैं । निरुक्ति से निष्पन्ननाम निरुक्तिजनाम हैं । जैसे—मह्यांशेते महिषः—पृथ्वी पर जो शयन करे वह महिष, भ्रमति रैति इति भ्रमरः—भ्रमण करते हुए जो शब्द करे वह भ्रमर, मुहुर्मुहुर्लसति इति मुसल—जो बारंबार ऊंचा-नीचा हो वह मूसल, इत्यादि निरुक्तिजतद्धितनाम हैं ।

[२५२] भगवन् ! प्रमाण क्या है ? प्रमाण चार प्रकार का है । द्रव्यप्रमाण, क्षेत्रप्रमाण, कालप्रमाण और भावप्रमाण ।

[२५३] द्रव्यप्रमाण क्या है ? दो प्रकार का है, यथा—प्रदेशनिष्पन्न और विभागनिष्पन्न । प्रदेशनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण क्या है ? परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशों यावत् दस प्रदेशों, संख्यात प्रदेशों, असंख्यात प्रदेशों और अनन्त प्रदेशों से जो निष्पन्न—सिद्ध होता है । विभागनिष्पन्न द्रव्यप्रमाण पाँच प्रकार का है । मानप्रमाण, उन्मानप्रमाण, अवमानप्रमाण, गणिमप्रमाण और प्रतिमानप्रमाण ।

मानप्रमाण क्या है ? दो प्रकार का है—धान्यमानप्रमाण और रसमानप्रमाण । धान्यमानप्रमाण क्या है ? दो असति की एक प्रसृति होती है, दो प्रसृति की एक सेतिका, चार सेतिका का एक कुडब, चार कुडब का एक प्रस्थ, चार प्रस्थों का एक आढक, चार आढक का एक द्रोण, साठ आढक का एक जघन्य कुंभ, अस्सी आढक का एक मध्यम कुंभ, सौ आढक का एक उत्कृष्ट कुंभ और आठ सौ आढकों का एक बाह होता है । धान्यमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है ? इसके द्वारा मुख, इड्डर, अलिंद और अपचारि में रखे धान्य के प्रमाण का परिज्ञान होता है । इसे ही धान्यमानप्रमाण कहते हैं ।

रसमानप्रमाण क्या है ? रसमानप्रमाण धान्यमानप्रमाण से चतुर्भाग अधिक और अभ्यन्तर शिखायुक्त होता है । चार पल की एक चतुःपष्टिका होती है । इसी प्रकार आठ पलप्रमाण द्वात्रिंशिका, सोलह पलप्रमाण षोडशिका, बत्तीस पलप्रमाण अष्टभागिका, चौसठ पलप्रमाण चतुर्भागिका, १२८ पलप्रमाण अर्धमानी और २५६ पलप्रमाण मानी होती है । इस रसमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है ? इस से वारक, घट्, करक, किक्किरि, दृति, करोडिका, चौड़ा होता है, कुंडिका, आदि में भरे हुए रसों के परिमाण का ज्ञान होता है ।

उन्मानप्रमाण क्या है ? जिसका उन्मान किया जाये अथवा जिसके द्वारा उन्मान किया जाता है, उन्हें उन्मानप्रमाण कहते हैं । उसका प्रमाण निम्न प्रकार है—अर्धकर्ष, कर्ष, अर्धपल,

पल, अर्धतुला, तुला, अर्धभार और भार । इन प्रमाणों की निष्पत्ति इस प्रकार होती है—दो अर्धकर्षों का एक कर्ष, दो कर्षों का एक अर्धपल, दो अर्धपलों का एक पल, एक सौ पांच अथवा पांच सौ पलों की एक तुला, दस तुला का एक अर्धभार और बीस तुला—दो अर्धभारों का एक भार होता है । उन्मानप्रमाण का क्या प्रयोजन है ? इस से पत्र, अगर, तगर, चोयक, कुंकुम, खांड, गुड़, मिश्री आदि द्रव्यों के परिमाण का परिज्ञान होता है ।

अवमान (प्रमाण) क्या है ? जिसके द्वारा अवमान किया जाये अथवा जिसका अवमान किया जाये, उसे अवमानप्रमाण कहते हैं । वह इस प्रकार—हाथ से, दंड से, धनुष से, युग से, नालिका से, अक्ष से अथवा मूसल से नापा जाता है ।

[२५४] दंड, धनुष युग, नालिका, अक्ष और मूसल चार हाथ प्रमाण होते हैं । दस नालिका की एक रज्जू होती है । ये सभी अवमान कहलाते हैं ।

[२५५] वास्तु, को हाथ द्वारा, क्षेत्र, दंड द्वारा, मार्ग, को धनुष द्वारा और खाई को नालिका द्वारा नापा जाता है । इन बको 'अवमान' इस नाम से जानना ।

[२५६] अवमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है ? इस से खात, कुआ आदि, ईंट, पत्थर आदि से निर्मित प्रासाद, पीठ, क्रकचित, आदि, कट, पट, भींत, परिक्षेप, अथवा नगर की परिखा आदि में संश्रित द्रव्यों की लंबाई-चौड़ाई, गहराई और ऊँचाई के प्रमाण का परिज्ञान होता है ।

गणिमप्रमाण क्या है ? जो गिना जाए अथवा जिसके द्वारा गणना की जाए, उसे गणिमप्रमाण कहते हैं ।—एक, दस, सौ, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़ इत्यादि । गणिमप्रमाण का क्या प्रयोजन है ? इस से भृत्य, कर्मचारी आदि की वृत्ति, भोजन, वेतन के आय-व्यय से सम्बन्धित द्रव्यों के प्रमाण की निष्पत्ति होती है ।

प्रतिमान (प्रमाण) क्या है ? जिसके द्वारा अथवा जिसका प्रतिमान किया जाता है, उसे प्रतिमान कहते हैं । गुंजां, काकणी, निष्पाव, कर्ममाषक, मंडलक, सुवर्ण । पांच गुंजाओं का, काकणी की अपेक्षा चार काकणियों का अथवा तीन निष्पाव का एक कर्ममाषक होता है । इस प्रकार कर्ममाषक चार प्रकार से निष्पन्न होता है । बारह कर्ममाषकों का एक मंडलक होता है । इसी प्रकार अड़तालीस काकणियों के बराबर एक मंडलक होता है । सोलह कर्ममाषक अथवा चौसठ काकणियों का एक स्वर्ण (मोहर) होता है । प्रतिमानप्रमाण का क्या प्रयोजन है ? इस से सुवर्ण, रजत, मणि, मोती, शंख, शिला, प्रवाल आदि द्रव्यों का परिमाण जाना जाता है । इसे ही प्रतिमानप्रमाण कहते हैं ।

[२५७] क्षेत्रप्रमाण क्या है ? दो प्रकार का है । प्रदेशनिष्पन्न और विभागनिष्पन्न । प्रदेशनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण क्या है ? एक प्रदेशावगाढ, दो प्रदेशावगाढ यावत् संख्यात प्रदेशावगाढ, असंख्यात प्रदेशावगाढ क्षेत्ररूप प्रमाण को प्रदेशनिष्पन्न क्षेत्रप्रमाण कहते हैं । विभागनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण क्या है ?

[२५८] अंगुल, वितस्ति, रत्नि, कुक्षि, धनुष गाऊ, योजन, श्रेणि, प्रतर, लोक और अलोक को विभागनिष्पन्नक्षेत्रप्रमाण जानना ।

[२५९] अंगुल क्या है ? अंगुल तीन प्रकार का है—आत्मांगुल, उत्सेधांगुल और प्रमाणांगुल । आत्मांगुल किसे कहते हैं ? जिस काल में जो मनुष्य होते हैं उनके अंगुल



आत्मांगुल हैं । उनके अपने-अपने अंगुल से बारह अंगुल का एक मुख होता है । नौ मुख प्रमाण वाला पुरुष प्रमाणयुक्त माना जाता है, द्रोणिक पुरुष मानयुक्त माना जाता है और अर्धभारप्रमाण तौल वाला पुरुष उन्मानयुक्त होता है ।

[२६०-२६२] जो पुरुष मान-उन्मान और प्रमाण से संपन्न होते हैं तथा लक्षणों एवं व्यंजनो से और मानवीय गुणों से युक्त होते हैं एवं उत्तम कुलों में उत्पन्न होते हैं, ऐसे पुरुषों को उत्तम पुरुष समझना । ये उत्तम पुरुष अपने अंगुल से १०८ अंगुल प्रमाण ऊंचे होते हैं । अधम पुरुष ९६ अंगुल और मध्यम पुरुष १०४ अंगुल ऊंचे होते हैं । ये हीन ऊंचाई वाले अथवा उससे अधिक ऊंचाई वाले (मध्यम पुरुष) जनोपादेय एवं प्रशंसनीय स्वर से, सत्त्व से तथा सार से हीन और उत्तम पुरुषों के दास होते हैं ।

[२६३] इस आत्मांगुल से छह अंगुल का एक पाद होता है । दो पाद की एक वितस्ति, दो वितस्ति की एक रत्नि और दो रत्नि की एक कुक्षि होती है । दो कुक्षि का एक दंड, धनुष, युग, नालिका अक्ष और मूसल जानना । दो हजार धनुष का एक गव्यूत और चार गव्यूत का एक योजन होता है । आत्मांगुलप्रमाण का क्या प्रयोजन है ? इस से कुआ, तडाग, द्रह, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका, गुंजालिका, सर, सरपंक्ति, सर-सरपंक्ति, विलपंक्ति, आराम, उद्यान, कानन, वन, वनखंड, वनराजि, देवकुल, सभा, प्रपा, स्तूप, खातिका, परिखा, प्राकार, अट्टालक, द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद, घर, शरण, लयन, आपण, श्रृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ, पथ, शकट, रथ, यान, युग्म, गिल्लि, थिल्लि, शिबिका, स्यंदमानिका, लोही, लोहकटाह, कुडछी, आसन, शायन, स्तम्भ, भांड, मिट्टी, कांसे आदि से बने भाजन गृहोपयोगी बर्तन, उपकरण आदि वस्तुओं एवं योजन आदि का माप किया जाता है ।

आत्मांगुल सामान्य से तीन प्रकार का है—सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, एक अंगुल लम्बी और एक प्रदेश चौड़ी आकाश-प्रदेशों की श्रेणि-पंक्ति का नाम सूच्यंगुल है । सूच्यंगुल को सूच्यंगुल से गुणा करने पर प्रतरांगुल बनता है । प्रतरांगुल को सूच्यंगुल से गुणित करने पर घनांगुल होता है । भगवन् ! इन सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल में से कौन किससे अल्प, कौन किससे अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ? इनमें सूच्यंगुल सबसे अल्प है, उससे प्रतरांगुल असंख्यातगुणा है और उसे घनांगुल असंख्यातगुणा है । उत्सेधांगुल क्या है ? अनेक प्रकार का है ।

[२६४] परमाणु, त्रसरेणु, स्थरेणु, बालाग्र, लिक्षा, यूका और यव, ये सभी क्रमशः उत्तरोत्तर आठ गुणे जानना ।

[२६५-२६६] भगवन् ! परमाणु क्या है ? दो प्रकार का सूक्ष्म परमाणु और व्यवहार परमाणु । इनमें से सूक्ष्म परमाणु स्थापनीय है । अनन्तानंत सूक्ष्म परमाणुओं के समुदाय एक व्यावहारिक परमाणु निष्पन्न होता है ।

व्यावहारिक परमाणु तलवार की धार या छुरे की धार को अवगाहित कर सकता है ? हाँ, कर सकता है । तो क्या वह उस से छिन्न-भिन्न हो सकता है ? यह अर्थ समर्थ नहीं । शस्त्र इसका छेदन-भेदन नहीं कर सकता । क्या वह व्यावहारिक परमाणु अग्रिकाय के मध्य भाग से होकर निकल जाता है ? हाँ, निकल जाता है । तब क्या वह उससे जल जाता है ?

यह अर्थ समर्थ नहीं है । क्या व्यावहारिक परमाणु पुष्करसंवर्तक नामक महामेघ के मध्य में से होकर निकल सकता है ? हाँ, निकल सकता है । तो क्या वह वहाँ पानी से गीला हो जाता है ? नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

क्या वह व्यावहारिक परमाणु गंगा महानदी के प्रतिस्त्रोत में शीघ्रता से गति कर सकता है ? हाँ, कर सकता है । तो क्या वह उसमें प्रतिस्खलना प्राप्त करता है ? यह अर्थ समर्थ नहीं है । क्या वह व्यावहारिक परमाणु उदकावर्त और जलबिन्दु में अवगाहन कर सकता है ? हाँ, कर सकता है । तो क्या वह सड़ जाता है ? यह यथार्थ नहीं है ।

[२६७] अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र से भी कोई जिसका छेदन-भेदन करने में समर्थ नहीं है, उसको ज्ञानसिद्ध केवली भगवान् परमाणु कहते हैं । वह सर्व प्रमाणों का आदि प्रमाण है ।

उस अनन्तान्त व्यावहारिक परमाणुओं के समुदयसमितिसमागम से एक उत्श्लक्ष्णलक्ष्णिका, श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु और स्थरेणु उत्पन्न होता है । आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है । आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका का एक ऊर्ध्वरेणु । आठ ऊर्ध्वरेणुओं का एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणुओं का एक स्थरेणु, आठ स्थरेणुओं का एक देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों का बालाग्र, आठ देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों के बालाग्रों का एक हरिवर्ष-स्म्यक्वर्ष के मनुष्यों का बालाग्र होता है । आठ हरिवर्ष-स्म्यक्वर्ष के मनुष्यों के बालाग्रों के बराबर हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यों के आठ बालाग्रों के बराबर पूर्व महाविदेह और अपर महाविदेह के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । आठ पूर्वविदेह-अपरविदेह के मनुष्यों के बालाग्रों के बराबर भरत-एरावत क्षेत्र के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है । भरत और एरावत क्षेत्र के मनुष्यों के आठ बालाग्रों की एक लिक्षा होती है । आठ लिक्षाओं की एक जूँ, आठ जुओं का एक यवमध्य और आठ यवमध्यों का एक उत्सेधांगुल होता है । इस अंगुलप्रमाण से छह अंगुल का एक पाद होता है । बारह अंगुल की एक वितस्ति, चौबीस अंगुल की एक रत्नि, अड़तालीस अंगुल की एक कुक्षि और छियानवै अंगुल का एक दंड, धनुष, युग, नालिका, अक्ष अथवा मूसल होता है । इस धनुषप्रमाण से दो हजार धनुष का एक गव्यूत और चार गव्यूत का एक योजन होता है । इस उत्सेधांगुल से क्यो प्रयोजन है ? इस से नारकों, तिर्यचो, मनुष्यों और देवों के शरीर की अवगाहना मापी जाती है ।

नारकों के शरीर की कितनी अवगाहना है ? गौतम ! दो प्रकार से है—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । उनमें से भवधारणीय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण और उत्कृष्ट पांच सौ धनुषप्रमाण है । उत्तरवैक्रिय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग एवं उत्कृष्ट १००० धनुषप्रमाण है । रत्नप्रभापृथ्वी के नारकों की शरीरावगाहना दो प्रकार की है—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । भवधारणीय शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट सात धनुष, तीन रत्नि तथा छह अंगुलप्रमाण है । उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण और उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष, अढ़ाई रत्नि है ।

शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकों की शरीरावगाहना कितनी है ? गौतम ! उनकी अवगाहना दो प्रकार से है । भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । भवधारणीय अवगाहना तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट पन्द्रह धनुष दो रत्नि और बारह अंगुल प्रमाण है ।

उत्तरवैक्रिय अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट इकतीस धनुष और एक रत्नि है । बालुकाप्रभापृथ्वी के नारकों की शरीरावगाहना दो प्रकार से हैं । भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । भवधारणीय शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट इकतीस धनुष तथा एक रत्नि प्रमाण है । उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट बासठ धनुष और दो रत्नि प्रमाण है ।

पंकप्रभापृथ्वी में भवधारणीय जघन्य अवगाहना अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट बासठ धनुष और दो रत्नि प्रमाण है । उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग एवं उत्कृष्ट एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण है । धूमप्रभापृथ्वी में भवधारणीय जघन्य (शरीरावगाहना) अंगुल के असंख्यातवें भाग तथा उत्कृष्ट एक सौ पच्चीस धनुष प्रमाण है । उत्तरवैक्रिया शरीरावगाहना जघन्यतः अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट ढाई सौ धनुष प्रमाण है । तमःप्रभापृथ्वी में भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट ढाई सौ धनुष प्रमाण है । उत्तरवैक्रिय शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष है । तमस्तमःपृथ्वी के नैरयिकों की शरीरावगाहना दो प्रकार की है—भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय रूप । उनमें से भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की है तथा उत्तरवैक्रिय शरीर की जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट १००० धनुष प्रमाण है ।

भगवन् ! असुरकुमार देवों की कितनी शरीरावगाहना है ? दो प्रकार की है, भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । भवधारणीय शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट सात रत्नि प्रमाण है । उत्तरवैक्रिय जघन्य अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग एवं उत्कृष्ट एक लाख योजन प्रमाण है । असुरकुमारों की अवगाहना के अनुरूप ही स्तनितकुमारों पर्यन्त दोनों प्रकार की अवगाहना का प्रमाण जानना ।

पृथ्वीकायिक जीवों की शरीरावगाहना कितनी कही है ? गौतम ! जघन्य और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । इसी प्रकार सामान्य रूप से सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की और (विशेष रूप से) सूक्ष्म अपर्याप्त और पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों की तथा सामान्यतः बादर पृथ्वीकायिकों एवं विशेषतः अपर्याप्त और पर्याप्त पृथ्वीकायिकों की यावत् पर्याप्त बादर वायुकायिक जीवों की शरीरावगाहना जानना । वनस्पतिकायिक जीवों की शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक १००० योजन है । सामान्य रूप में सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और (विशेष रूप में) अपर्याप्त तथा पर्याप्त सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । औधिक रूप से बादर वनस्पतिकायिक जीवों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट साधिक १००० योजन प्रमाण है । विशेष—अपर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । पर्याप्त की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट साधिक १००० योजन प्रमाण होती है ।

द्विन्द्रिय जीवों की अवगाहना कितनी है ? गौतम ! द्विन्द्रिय जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट बारह योजन प्रमाण है । अपर्याप्त की जघन्य और



उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । पर्याप्त (द्वीन्द्रिय जीवों) की जघन्य शरीरावगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट बारह योजन प्रमाण है । त्रीन्द्रिय जीवों का अवगाहना का मान कितना है ? गौतम ! सामान्यतः त्रीन्द्रिय जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और उत्कृष्ट अवगाहना तीन कोस की है । अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । त्रीन्द्रिय पर्याप्तों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना तीन गव्यूत प्रमाण है । चतुरिन्द्रिय जीवों की अवगाहना अधिक रूप से चतुरिन्द्रिय जीवों की जघन्य शरीरावगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट चार गव्यूत प्रमाण है । अपर्याप्त की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र है । पर्याप्तों की जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग एवं उत्कृष्टतः चार गव्यूत प्रमाण है ।

तिर्यच पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना कितनी है ? गौतम ! जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट १००० योजन प्रमाण है । जलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की अवगाहना इसी प्रकार है । समूर्च्छिम जलचरतिर्यचयोनिकों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अवगाहना १००० योजन की जानना । अपर्याप्त समूर्च्छिम जलचरतिर्यचयोनिकों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना भी अंगुल के असंख्यातवें भाग है । पर्याप्त समूर्च्छिम जलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट १००० योजन प्रमाण है । गर्भव्युत्क्रांतजलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की अवगाहना जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्टतः योजनसहस्र की है । अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रांतजलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । पर्याप्तक गर्भजजलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की शरीरावगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट १००० योजनप्रमाण है ।

चतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की अवगाहना ? गौतम ! सामान्य रूप में जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग एवं उत्कृष्ट छह गव्यूति की है । समूर्च्छिम चतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की अवगाहना ? जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट गव्यूतिपृथक्त्व प्रमाण है । अपर्याप्त समूर्च्छिम चतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रिय तिर्यचों की अवगाहना जघन्य एवं उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग की है । पर्याप्त समूर्च्छिम चतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की शरीरावगाहना है । जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट गव्यूतिपृथक्त्व है । गर्भव्युत्क्रान्तिक चतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की अवगाहना । जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट छह गव्यूति प्रमाण है । अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्त चतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की शरीरावगाहना जघन्य और उत्कृष्ट भी अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । पर्याप्तक गर्भज चतुष्पदस्थलचर-पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट छह गव्यूति प्रमाण है ।

खेचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की शरीरावगाहना कितनी है ? गौतम ! जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व प्रमाण है तथा सामान्य समूर्च्छिम खेचरपंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट शरीरावगाहना समूर्च्छिम जन्मवाले भुजपरिसर्प पंचेन्द्रिय

तिर्यचों के तीन अवगाहना स्थानों के बराबर समझ लेना । गर्भव्युत्क्रान्त खेचरपंचेन्द्रिय - तिर्यचयोनिक की शरीरावगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व प्रमाण है । अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्त खेचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । पर्याप्त गर्भज खेचर-पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिकों की शरीरावगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट धनुषपृथक्त्व है । उक्त समग्र कथन की संग्राहक गाथाएं इस प्रार हैं—

[२६८-२६९] समूर्च्छिम जलचरतिर्यचपंचेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना १००० योजन, चतुष्पदस्थलचर की गव्यूतिपृथक्त्व, उरपरिर्पस्थलचर की योजनपृथक्त्व, भुजपरिर्पस्थलचर की एवं खेचरतिर्यचपंचेन्द्रिय की धनुषपृथक्त्व प्रमाण है । गर्भज तिर्यच पंचेन्द्रिय जीवों में से जलचरों की १००० योजन, चतुष्पदस्थलचरों की छह गव्यूति उरपरिर्पस्थलचरों की १००० योजन, भुजपरिर्पस्थलचरों की गव्यूतिपृथक्त्व और पक्षियों की धनुषपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट शरीरावगाहना जानना ।

[२७०] मनुष्यों की शरीरावगाहना कितनी है ? गौतम ! जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट तीन गव्यूति है । समूर्च्छिम मनुष्यों की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवे भाग प्रमाण है । गर्भज मनुष्यों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट तीन गव्यूति प्रमाण है । अपर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्त मनुष्यों की अवगाहना जघन्य और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । पर्याप्त गर्भव्युत्क्रान्तिक मनुष्यों की अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट तीन गव्यूति प्रमाण है ।

वाणव्यंतरों की भवधारणीय एवं उत्तर वैक्रियशरीर की अवगाहना असुरकुमारों के समान जानना । इसी प्रकार ज्योतिष्क भी समझ लेना ।

सौधर्मकल्प के देवों की शरीरावगाहना कितनी है ? गौतम ! दो प्रकार की है— भवधारणीय और उत्तरवैक्रिय । इनमें से भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट सात रत्नि है । उत्तरवैक्रिय शरीर की जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन प्रमाण है । इसी तरह इशान कल्प में भी जानना । सनत्कुमारकल्प में भवधारणीय जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट छह रत्नि प्रमाण है, उत्तरवैक्रिय सौधर्मकल्प के बराबर है । सनत्कुमारकल्प जितनी अवगाहना माहेन्द्रकल्प में जानना । ब्रह्मलोक और लांतक में भवधारणीय शरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट पांच रत्नि प्रमाण है तथा उत्तरवैक्रिय का प्रमाण सौधर्मकल्पवत् है । महाशुक्र और सहस्रार कल्पों में भवधारणीय अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट चार रत्नि प्रमाण है तथा उत्तरवैक्रिय सौधर्मकल्प के समान है । आनत, प्राणत, आरण और अच्युत—में भवधारणीय अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट तीन रत्नि की है । उत्तरवैक्रिय सौधर्मकल्प के समान है ।

ग्रेवेयकदेवों की शरीरावगाहना कितनी है ? गौतम ! ग्रेवेयकदेवों की एकमात्र भवधारणीय शरीर ही होता है । उस की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट दो हाथ है । अनुत्तरविमानवासी देवों के एकमात्र भवधारणीय शरीर ही है । उसकी अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक हाथ है ।

वह उत्सेधांगुल संक्षेप से तीन प्रकार का है । सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल । एक अंगुल लम्बी तथा एक प्रदेश चौड़ी आकाशप्रदेशों की श्रेणी को सूच्यंगुल कहते हैं । सूची से सूची को गुणित करने पर प्रतरांगुल निष्पन्न होता है, सूच्यंगुल से गुणित प्रतरांगुल घनांगुल कहलाता है । भगवन् ! इन सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ? इनमें सर्वस्तोक सूच्यंगुल है, उससे प्रतरांगुल असंख्यातगुणा और प्रतरांगुल से घनांगुल असंख्यातगुणा है ।

प्रमाणांगुल क्या है ? भरतक्षेत्र पर शासन करने वाले चक्रवर्ती के अष्ट स्वर्णप्रमाण, छह तल वाले, बारह कोटियों और आठ कर्णिकाओं से युक्त अधिकरण संस्थान काकणीरत्न की एक-एक कोटि उत्सेधांगुल प्रमाण विष्कंभ वाली है, उसकी वह एक कोटि श्रमण भगवान् महावीर के अर्धांगुल प्रमाण है । उस अर्धांगुल से हजार गुणा एक प्रमाणांगुल है । इस अंगुल से छह अंगुल का एक पाद, दो पाद अथवा बारह अंगुल की एक वितस्ति, दो वितस्तियों की रत्नि, दो रत्नि की एक कुक्षि, दो कुक्षियों का एक धनुष, दो हजार धनुष का एक गव्यूत और चार गव्यूत का एक योजन होता है । प्रमाणांगुल से कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता है ? इस से पृथ्वियों की, कांडों की, पातालकलशों की, भवनों की, भवनों के प्रस्तरों की, नरकावासों की, नरकपंक्तियों की, नरक के प्रस्तरों की, कल्पों की, विमानों की, विमानपंक्तियों की, विमानप्रस्तरों की, टंकों की, कूटों की, पर्वतों की, शिखर वाले पर्वतों की, प्राग्भारों की, विजयों की, वक्षारों की, क्षेत्रों की, वर्षधर पर्वतों की, समुद्रों की, वेलाओं की, वेदिकाओं की, द्वारों की, तोरणों की, द्वीपों की तथा समुद्रों की लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई, गहराई और परिधि नापी जाती है ।

वह (प्रमाणांगुल) संक्षेप में तीन प्रकार का कहा गया है—श्रेण्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल । (प्रमाणांगुल से निष्पन्न) असंख्यात कोडाकोडी योजनों की एक श्रेणी होती है । श्रेणी को श्रेणी से गुणित करने पर प्रतरांगुल और प्रतरांगुल को श्रेणी के साथ गुणा करने से (एक) लोक होता है । संख्यात राशि से गुणित लोक 'संख्यातलोक', असंख्यात राशि से गुणित लोक 'असंख्यातलोक' और अनन्त राशि से गुणित लोक 'अनन्तलोक' कहलाता है । इन श्रेण्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल में कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक है ? श्रेण्यंगुल सर्वस्तोक है, उससे प्रतरांगुल असंख्यात गुणा है और प्रतरांगुल से घनांगुल असंख्यात गुणा है ।

[२७१] कालप्रमाण क्या है ? दो प्रकार का है—प्रदेशनिष्पन्न, विभागनिष्पन्न ।

[२७२] प्रदेशनिष्पन्न कालप्रमाण क्या है ? एक समय की स्थितिवाला, दो समय की स्थिति वाला, तीन समय की स्थिति वाला, यावत् दस समय की स्थितिवाला, संख्यात समय की स्थितिवाला, असंख्यात समय की स्थितिवाला (परमाणु या स्कन्ध) प्रदेशनिष्पन्न कालप्रमाण है । इस प्रकार से प्रदेशनिष्पन्न कालप्रमाण का स्वरूप जानना ।

[२७३-२७४] विभागनिष्पन्न कालप्रमाण क्या है ? समय, आवलिका, मुहूर्त, दिवस, अहोरात्र, पक्ष, मास, संवत्सर, युग, पल्योपम, सागर, अवसर्पिणी (उत्सर्पिणी) और (पुद्गल) परावर्तन रूप काल को विभागनिष्पन्न कालप्रमाण कहते हैं ।

[२७५] समय किसे कहते हैं ? समय की प्ररूपणा करूंगा । जैसे कोई एक तरुण,



बलवान्, युगोत्पन्न, नीरोग, स्थिरहस्ताग्र, सुदृढ़-विशाल हाथ-पैर, पृष्ठभाग, पृष्ठान्त और उरु वाला, दीर्घता, सरलता एवं पीनत्व की दृष्टि से समान, समश्रेणी में स्थित तालवृक्षयुगल अथवा कपाट-अर्गला तुल्य दो भुजाओं का धारक, चर्मेटक, मुद्गर मुष्टिक के व्यायामों के अभ्यास, आघात-प्रतिघातों से सुदृढ़, सहज बलसम्पन्न, कूदना, तैरना, दौड़ना आदि व्यायामों से अर्जित सामर्थ्य से सम्पन्न, छेक, दक्ष, प्रतिष्ठप्रवीण, कुशल, मेधावी, निपुण, अपनी शिल्पकला में निष्णात, तुन्नवायदारक एक बड़ी सूती अथवा रेशमी शाटिका को लेकर अतिशीघ्रता से एक हाथ प्रमाण फाड़ देता है । भगवन् ! तो जितने काल में उस दर्जी के पुत्र ने शीघ्रता से उस सूती अथवा रेशमी शाटिका को एक हाथ प्रमाण फाड़ दिया है, क्या उतने काल को 'समय' कहते हैं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है । क्योंकि संख्यात तंतुओं के समुदाय रूप समिति के संयोग से एक शाटिका निष्पन्न होती है । अतएव जब तक ऊपर का तन्तु छिन्न न हो तब तक नीचे का तन्तु छिन्न नहीं हो सकता । अतः ऊपर के तन्तु के छिदने का काल दूसरा है और नीचे के तन्तु के छिदने का काल दूसरा है ।

भदन्त ! जितने काल में दर्जी के पुत्र ने उस सूती शाटिका ऊपर के तन्तु का छेदन किया, क्या उतना काल समय है ? नहीं है । क्योंकि संख्यात पक्षों के समुदाय रूप समिति के सम्यक् समागम से एक तन्तु निष्पन्न होता है । इसलिये ऊपर के पक्ष के छिन्न न होने तक नीचे का पक्ष छिन्न नहीं हो सकता है । अन्य काल में ऊपर का पक्ष और अन्य काल में नीचे का पक्ष छिन्न होता है । जिस काल में उस दर्जी के पुत्र ने उस तन्तु के उपरिवर्ती पक्ष का छेदन किया तो क्या उतने काल को समय कहा जाए ? नहीं । क्योंकि अनन्त संघातों के समुदाय रूप समिति के संयोग से पक्ष निर्मित होता है, अतः जब तक उपरिवर्ती संघात पृथक् न हो, तब तक अधोवर्ती संघात पृथक् नहीं होता है । उपरिवर्ती संघात के पृथक् होने का काल अन्य है और अधोवर्ती संघात के पृथक् होने का काल अन्य है । आयुष्मन् ! समय इससे भी अतीव सूक्ष्मतर है ।

असंख्यात समयों के समुदाय समिति के संयोग से एक आवलिका होती है । संख्यात आवलिकाओं का एक उच्छ्वास और संख्यात आवलिकाओं का एक निःश्वास होता है ।

[२७६-२७९] हृष्ट, वृद्धावस्था से रहित, व्याधि से रहित मनुष्य आदि के एक उच्छ्वास और निःश्वास के 'काल' को प्राण कहते हैं । ऐसे सात प्राणों का एक स्तोक, सात स्तोकों का एक लव और लवों का एक मुहूर्त जानना । अथवा—सर्वज्ञ ३७७३ उच्छ्वास-निश्वासों का एक मुहूर्त कहा है । इस मुहूर्त प्रमाण से तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है, पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो मासों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन, दो अयनों का एक संवत्सर, पांच संवत्सर का एक युग और बीस युग का वर्षशत होता है । दस सौ वर्षों का एक सहस्र वर्ष, सौ सहस्र वर्षों का एक लक्ष वर्ष, चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग, चौरासी लाख पूर्वांगों का पूर्व, चौरासी लाख पूर्वों का त्रुटितांग, चौरासी लाख त्रुटितांगों का एक त्रुटित, चौरासी लाख त्रुटितों का एक अडडांग, चौरासी लाख अडडांगों का एक अडड, चौरासी लाख अडडों का एक अववांग, चौरासी लाख अववांगों का एक अवव, चौरासी लाख अववों का एक हूहअंग चौरासी लाख हूहअंगों का एक हूह, इसी प्रकार उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अच्छनिकुरांग, अच्छनिकुर, अयुतांग,

अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, चौरासी लाख चूलिकाओं की एक शीर्षप्रहेलिकांग होता है एवं चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकांगों की एक शीर्षप्रहेलिका होती है । एतावन्मात्र ही गणित है । इतना ही गणित का विषय है, इसके आगे उपमा काल की प्रवृत्ति होती है ।

[२८०] औपमिक (काल) प्रमाण क्या है ? वह दो प्रकार का है । पल्योपम और सागरोपम । पल्योपम के तीन प्रकार हैं—उद्धारपल्योपम, अद्धारपल्योपम और क्षेत्रपल्योपम । उद्धारपल्योपम दो प्रकार से है, सूक्ष्म और व्यावहारिक उद्धारपल्योपम । इन दोनों में सूक्ष्म उद्धारपल्योपम अभी स्थापनीय है ।

व्यावहारिक उद्धारपल्योपम का स्वरूप—उत्सेधांगुल से एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन ऊंचा एवं कुछ अधिक तिगुनी परिधि वाला एक पल्य हो । उस पल्य को एक दिन, दो दिन, तीन दिन यावत् अधिक से अधिक सात दिन के उगे हुए बालाग्रों से इस प्रकार ठसाठस भरा जाए कि फिर उन बालाग्रों को अग्नि जला न सके, वायु उड़ा न सके, न वे सड़-गल सकें, न उनका विध्वंस हो, न उनमें दुर्गन्ध उत्पन्न हो । तत्पश्चात् एक-एक समय में एक-एक बालाग्र का अपहरण किया जाए—तो जितने काल में वह पल्य क्षीण, नीरज निर्लेप और निष्ठित हो जाए, उतने काल को व्यावहारिक उद्धारपल्योपम कहते हैं ।

[२८१] ऐसे दस कोडाकोडी पल्योपमों का एक व्यावहारिक उद्धार सागरोपम होता है ।

[२८२] व्यावहारिक उद्धार पल्योपम और सागरोपम का क्या प्रयोजन है ? इनसे किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है । ये दोनों केवल प्ररूपणामात्र के लिये हैं ।

सूक्ष्म उद्धार पल्योपम क्या है ? इस प्रकार है—धान्य के पल्य के समान कोई एक योजन लंबा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा एवं कुछ अधिक तीन योजन की परिधि वाला पल्य हो । इस पल्य को एक, दो, तीन यावत् उत्कृष्ट सात दिन तक के उगे हुए बालाग्रों से खूब ठसाठस भरा जाये और उन एक-एक बालाग्र के ऐसे असंख्यात—असंख्यात खंड किये जाए जो निर्मल चक्षु से देखने योग्य पदार्थ की अपेक्षा भी असंख्यातवें भाग प्रमाण हों और सूक्ष्म पनक जीव की शरीरावगाहना से असंख्यातगुणे हों, जिन्हें अग्नि जला न सके, वायु उड़ा न सके, जो सड़-गल न सकें, नष्ट न हो सकें और न दुर्गन्धित हो सकें । फिर समय-समय में उन बालाग्रखंडों को निकालते-निकालते जितने काल में वह पल्य बालाग्रों की रज से रहित, बालाग्रों के संश्लेष से रहित और पूरी तरह खाली हो जाए, उतने काल को सूक्ष्म उद्धारपल्योपम कहते हैं ।

[२८३] इस पल्योपम की दस गुणित कोटाकोटि का एक सूक्ष्म उद्धारसागरोपम का परिमाण होता है । (अर्थात् दस कोटाकोटि सूक्ष्म उद्धारपल्योपमों का एक सूक्ष्म उद्धारसागरोपम होता है) ।

[२८४] सूक्ष्म उद्धारपल्योपम और सूक्ष्म उद्धारसागरोपम से किस प्रयोजन को सिद्धि होती है ? इससे द्वीप-समुद्रों का प्रमाण जाना जाता है । अढ़ाई उद्धार सूक्ष्म सागरोपम के उद्धार समयों के बराबर द्वीप समुद्र हैं । अद्धारपल्योपम के दो भेद हैं—सूक्ष्म अद्धारपल्योपम और व्यावहारिक अद्धारपल्योपम । उनमें से सूक्ष्म अद्धारपल्योपम अभी स्थापनीय है । व्यावहारिक

का वर्णन निम्न प्रकार है—धान्य के पल्य के समान एक योजन प्रमाण दीर्घ, एक योजन प्रमाण विस्तार और एक योजन प्रमाण ऊर्ध्वता से युक्त तथा साधिक तीन योजन की परिधि वाला कोई पल्य हो । उस पल्य को एक, दो, तीन दिवस यावत् सात दिवस के उगे हुए बालाग्रों से इस प्रकार से पूरित कर दिया जाए कि वे बालाग्र अग्नि से जल न सकें, वायु उन्हें उड़ा न सके, वे सड़-गल न सकें, उनका विध्वंस भी न हो सके और उनमें दुर्गन्ध भी उत्पन्न न हो सके । तदनन्तर उस पल्य में से सौ-सौ वर्ष के पश्चात् एक-एक बालाग्र निकालने पर जितने काल में वह पल्य उन बालाग्रों से रहित, रजरहित और निर्लेप एवं निष्ठित—पूर्ण रूप से खाली हो जाए, उतने काल को व्यावहारिक उद्धारपल्योपम कहते हैं ।

[२८५] दस कोटाकोटि व्यावहारिक अद्धापल्योपमों का एक व्यावहारिक सागरोपम होता है ।

[२८६] व्यावहारिक अद्धा पल्योपम और सागरोपम से किस प्रयोजन की सिद्धि होती है ? कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है । ये केवल प्ररूपणा के लिये हैं । सूक्ष्म अद्धापल्योपम का स्वरूप इस प्रकार है—एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा, एक योजन ऊंचा एवं साधिक तीन योजन की परिधिवाला एक पल्य हो । उस पल्य को एक-दो-तीन दिन के यावत् बालाग्र कोटियों से पूरी तरह भर दिया जाए । फिर उनमें से एक-एक बालाग्र के ऐसे असंख्यात असंख्यात खण्ड किये जाएँ कि वे खण्ड दृष्टि के विषयभूत होने वाले पदार्थों की अपेक्षा असंख्यात भाग हों और सूक्ष्म पनक जीव की शरीरावगाहना से असंख्यात गुणे अधिक हों । उन खण्डों में से सौ-सौ वर्ष के पश्चात् एक-एक खण्ड को अपहृत करने—निकालने पर जितने समय में वह पल्य बालाग्रखण्डों से विहीन, नीरज, संश्लेषहित और संपूर्ण रूप से निष्ठित—खाली हो जाए, उतने काल को सूक्ष्म अद्धापल्योपम कहते हैं ।

[२८७] इस अद्धापल्योपम को दस कोटाकोटि से गुणा करने से अर्थात् दस कोटाकोटि सूक्ष्म अद्धापल्योपमों का एक सूक्ष्म अद्धासागरोपम होता है ।

[२८८] सूक्ष्म अद्धापल्योपम और सूक्ष्म अद्धासागरोपम से किस प्रयोजन की सिद्धि होती है ? इस से नारक, तिर्यच, मनुष्य और देवों के आयुष्य का प्रमाण जाना जाता है ।

[२८९] नैरयिक जीवों की स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! सामान्य रूप में जघन्य १०००० वर्ष की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है । रत्नप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट एक सागरोपम की होती है । रत्नप्रभापृथ्वी के अपर्याप्तक नारकों की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की होती है । रत्नप्रभापृथ्वी के पर्याप्तक नारकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त न्यून १०००० वर्ष और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून एक सागरोपम की होती है । शर्कराप्रभापृथ्वी के नारकों की स्थिति जघन्य एक सागरोपम और उत्कृष्ट तीन सागरोपम है । बालुकाप्रभा के नैरयिकों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम, पंकप्रभा के नारकों की जघन्य सात सागरोपम और उत्कृष्ट दस सागरोपम, धूमप्रभा के नारकों की जघन्य दस सागरोपम और उत्कृष्ट सत्रह सागरोपम, तमःप्रभा के नारकों की जघन्य सत्रह सागरोपम और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम और तमस्तमःप्रभा के नैरयिकों की जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है ।



असुरकुमार देवों की कितने काल की स्थिति है ? गौतम ! जघन्य १०००० वर्ष और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम प्रमाण है । असुरकुमार देवियों की स्थिति जघन्य १०००० वर्ष और उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम की है । नागकुमार देवों की स्थिति जघन्य १०००० वर्ष और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम है । नागकुमारदेवियों की स्थिति जघन्य १०००० वर्ष और उत्कृष्ट देशोन एक पल्योपम की है एवं जितनी नागकुमार देव, देवियों की स्थिति है, उतनी ही शेष देवों और देवियों की स्थिति जानना ।

पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट २२००० वर्ष है । सामान्य सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की तथा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त और पर्याप्तों की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट २२००० वर्ष अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है तथा पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून २२००० वर्ष है । अप्कायिक जीवों की औधिक जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट ७००० वर्ष की है । सामान्य रूप में सूक्ष्म अप्कायिक तथा अपर्याप्त और पर्याप्त अप्कायिक जीवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । बादर अप्कायिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति सामान्य अप्कायिक जीवों के तुल्य अपर्याप्त बादर अप्कायिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है । पर्याप्तक बादर अप्कायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून ७००० वर्ष की है ।

तेजस्कायिक जीवों की कितनी स्थिति है ? जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन रात-दिन है । औधिक सूक्ष्म तेजस्कायिक और पर्याप्त, अपर्याप्त सूक्ष्म तेजस्कायिक की जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है । बादर तेजस्कायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रि-दिन की होती है । अपर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है । पर्याप्त बादर तेजस्कायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून तीन रात्रि-दिन है । वायुकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट ३००० वर्ष की है । किन्तु सामान्य रूप में सूक्ष्म वायुकायिक जीवों की तथा उसके अपर्याप्त और पर्याप्त भेदों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है । बादर वायुकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट ३००० वर्ष है । अपर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है । और—पर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून ३००० वर्ष है । वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट १०००० वर्ष की है । सामान्य सूक्ष्म वनस्पतिकायिक तथा उनके अपर्याप्तक और पर्याप्तक भेदों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है । बादर वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट १०००० वर्ष है यावत् गौतम ! अपर्याप्तकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है । किन्तु पर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून १०००० वर्ष की जानना ।

द्विन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की है ? जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट

बारह वर्ष की है । अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है । पर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्तन्यून बारह वर्ष की है । त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट ४९ दिन-रात्रि की है । अपर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है । पर्याप्तक त्रीन्द्रिय जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून ४९ दिन-रात्रि है । चतुरिन्द्रिय जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट छह मास की है । अपर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है । पर्याप्तक चतुरिन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून छह मास है ।

भगवन् ! पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम है । जलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है तथा समूर्च्छिमजलचर-पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष है । अपर्याप्तक समूर्च्छिमजलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त है । पर्याप्तक समूर्च्छिमजलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तन्यून पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण जानना । सामान्य से गर्भव्युत्क्रान्तिक-जलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि वर्ष है । अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की है । पर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिक जलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि वर्ष की है ।

चतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की है ? सामान्य रूप में जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम है । समूर्च्छिमचतुष्पद - स्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति ८४००० वर्ष की है । अपर्याप्तक समूर्च्छिम चतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जानना । पर्याप्तक समूर्च्छिमचतुष्पदस्थल-चरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त हीन ८४००० वर्ष जानना । गर्भव्युत्क्रान्तिकचतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है । अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिकचतु-पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है । पर्याप्तक गर्भजचतुष्पदस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त हीन तीन पल्योपम की जानना । उपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट करोड़ पूर्व वर्ष की है । समूर्च्छिम-उपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट स्थिति ५३००० वर्ष है । अपर्याप्तक समूर्च्छिमउपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रिय -तिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य तथा उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है । पर्याप्तक समूर्च्छिमउर-परिसर्पस्थल -

चरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून ५३००० वर्ष है । तथा—गर्भजउरपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट कोटि पूर्व वर्ष की है । अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिकउरपरिसर्पस्थलचर० की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है । पर्याप्तक गर्भजउरपरिसर्पस्थलचर० की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून पूर्वकोटि वर्ष की है । भुजपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट करोड़ पूर्व वर्ष की है । समूर्च्छिमभुजपरिसर्पस्थलचर० जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट ४२०००० वर्ष है । अपर्याप्तक समूर्च्छिमभुजपरिसर्पस्थलचर० की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की जानना । पर्याप्तक समूर्च्छिमभुजपरिसर्पस्थलचर० की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून ४२००० वर्ष की है । गर्भव्युत्क्रान्तिकभुजपरिसर्पस्थलचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की औधिक जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट करोड़ पूर्व वर्ष की है । अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिकभुजपरिसर्पस्थलचर० की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है । पर्याप्तक गर्भजभुपरिसर्पस्थलचर० की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून करोड़ पूर्व वर्ष प्रमाण है ।

खेचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! सामान्य से खेचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है । समूर्च्छिम खेचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक की औधिक स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट ७२००० वर्ष की है । अपर्याप्तक समूर्च्छिम खेचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट से भी अन्तर्मुहूर्त है । पर्याप्तक समूर्च्छिम खेचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त न्यून ७२००० वर्ष की जानना । सामान्य रूप में गर्भव्युत्क्रान्तिकखेचरपंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अपर्याप्तक गर्भज खेचर० जघन्य और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की है । पर्याप्तक गर्भजखेचर० जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त न्यून पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है । पूर्वोक्त कथन की संग्रहणी गाथायें इस प्रकार हैं—

[२९०-२९१] समूर्च्छिम तिर्यचपंचेन्द्रिय जीवों में अनुक्रम से जलचरों की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि वर्ष, स्थलचरचतुष्पद समूर्च्छिमों की ८४००० वर्ष, उरपरिसर्पों की ५३००० वर्ष, भुजपरिसर्पों की ४२००० वर्ष और पक्षी की ७२००० वर्ष की है । गर्भज पंचेन्द्रियतिर्यचों में अनुक्रम से जलचरों की उत्कृष्ट स्थिति पूर्वकोटि वर्ष, स्थलचरों की तीन पल्योपम, उरपरिसर्पों और भुजपरिसर्पों की पूर्वकोटि वर्ष और खेचरों की पल्योपम के असंख्यातवें भाग की है ।

[२९२] मनुष्यों की स्थिति कितने काल की है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है । समूर्च्छिम मनुष्यों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है । गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम है । अपर्याप्तक गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त ही जानना । पर्याप्तक



गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त न्यून तीन पल्योपम प्रमाण है ।

वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल की है ? जघन्य स्थिति १०००० वर्ष और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम है । वाणव्यन्तरों की देवियों की स्थिति जघन्य १०००० वर्ष की और उत्कृष्ट अर्धपल्योपम है ।

ज्योतिष्क देवों की स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! जघन्य कुछ अधिक पल्योपम के आठवें भाग प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम है । ज्योतिष्क देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का आठवां भाग प्रमाण और उत्कृष्ट ५०००० वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की होती है । चंद्रविमानों के देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम है । चंद्रविमानों की देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट ५०००० वर्ष अधिक अर्धपल्योपम है । सूर्यविमानों के देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थांश और उत्कृष्ट स्थिति १००० वर्ष अधिक एक पल्योपम है । सूर्यविमानों की देवियों की जघन्य स्थिति पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट पाँचसौ वर्ष अधिक अर्धपल्योपम है । ग्रहविमानों के देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट एक पल्योपम की है । ग्रहविमानों की देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट अर्धपल्योपम है । नक्षत्रविमानों के देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट अर्धपल्योपम है । नक्षत्रविमानों की देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट साधिक पल्योपम का चतुर्थ भाग है । ताराविमानों के देवों की स्थिति कुछ अधिक पल्योपम का अष्टमांश भाग जघन्य और उत्कृष्ट पल्योपम का चतुर्थ भाग है । ताराविमानों की देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का आठवां भाग और उत्कृष्ट साधिक पल्योपम का आठवां भाग है ।

वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही है ? गौतम ! वैमानिक देवों की स्थिति जघन्य एक पल्य की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है । वैमानिक देवियों की जघन्य स्थिति एक पल्य की और उत्कृष्ट स्थिति पचपन पल्योपम है । सौधर्मकल्प के देवों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट दो सागरोपम है । सौधर्मकल्प में (परिगृहीता) देवियों की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की और उत्कृष्ट सात पल्योपम की है । अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम की और उत्कृष्ट पचास पल्योपम की है । ईशानकल्प के देवों की जघन्य स्थिति साधिक पल्योपम की और उत्कृष्ट स्थिति साधिक दो सागरोपम की है । ईशानकल्प की (परिगृहीता) देवियों की स्थिति जघन्य साधिक पल्योपम और उत्कृष्ट नौ पल्योपम है । अपरिगृहीता देवियों की स्थिति ? जघन्य कुछ अधिक पल्योपम और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम है ।

सनत्कुमारकल्प के देवों की स्थिति कितनी होती है ? गौतम ! जघन्य दो सागरोपम की और उत्कृष्टतः सात सागरोपम की है । माहेन्द्रकल्प में देवों की स्थिति जघन्य साधिक दो सागरोपम और उत्कृष्ट कुछ अधिक सात सागरोपम है । ब्रह्मलोककल्प के देवों की स्थिति जघन्य सात सागरोपम और उत्कृष्ट दस सागरोपम है । लांतककल्प में देवों की जघन्य स्थिति दस सागरोपम, उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की है । महाशुक्रकल्प के देवों की जघन्य स्थिति चौदह

और उत्कृष्ट सत्रह सागरोपम, सहस्रारकल्प के देवों की जघन्य स्थिति सत्रह और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम, आनतकल्पम में जघन्य स्थिति अठारह और उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम, प्राणतकल्प में जघन्य स्थिति उन्नीस और उत्कृष्ट बीस सागरोपम, आरणकल्प के देवों की जघन्य स्थिति बीस और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम की तथा अच्युतकल्प के देवों की जघन्य स्थिति इक्कीस सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है ।

अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक विमान में देवों की स्थिति कितनी है ? गौतम ! जघन्य स्थिति बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की है । अधस्तनमध्यम ग्रैवेयक विमान के देवों की स्थिति जघन्य तेईस और उत्कृष्ट चौबीस सागरोपम, अधस्तन-उपरिम ग्रैवेयक के देवों की जघन्य स्थिति चौबीस की और उत्कृष्ट पच्चीस सागरोप, मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक के देवों की जघन्य स्थिति पच्चीस की और उत्कृष्ट छब्बीस सागरोपम की, मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति छब्बीस की, उत्कृष्ट सत्ताईस सागरोपम की, मध्यम-उपरिम ग्रैवेयक विमानों में देवों की जघन्य स्थिति सत्ताईस की और उत्कृष्ट अट्ठाईस सागरोपम की, उपरिम-अधस्तन ग्रैवेयक विमानों के देवों की जघन्य स्थिति अट्ठाईस की और उत्कृष्ट उनतीस सागरोपम, उपरिम-मध्यम ग्रैवेयक देवों की जघन्य स्थिति उनतीस की और उत्कृष्ट तीस सागरोपम तथा—उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक विमानों के देवों की जघन्य स्थिति तीस सागरोपम की और उत्कृष्ट स्थिति इकतीस सागरोपम की है ।

विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों के देवों की स्थिति कितने काल की है ? गौतम ! जघन्य इकतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम है । सर्वार्थसिद्ध महाविमान के देवों की स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम है ।

[२९३] भगवन् ! क्षेत्रपल्योपम क्या है ? गौतम ! दो प्रकार का है—सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम । उनमें से सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम स्थापनीय है । व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम का स्वरूप इस प्रकार—जैसे कोई एक योजन आयाम-विष्कम्भ और एक योजन ऊंचा तथा कुछ अधिक तिगुनी परिधि वाला धान्य मापने के पल्य के समान पल्य हो । उस पल्य को दो, तीन यावत् सात दिन के उगे बालाग्रों को कोटियों से इस प्रकार से भरा जाए कि उन बालाग्रों को अग्नि जला न सके, वायु उड़ा न सके आदि यावत् उनमें दुर्गन्ध भी पैदा न हो । तत्पश्चात् उस पल्य के जो आकाशप्रदेश बालाग्रों से व्याप्त हैं, उन प्रदेशों में से समय-समय एक-एक आकाशप्रदेश का अपहरण किया जाए—तो जितने काल में वह पल्य खाली यावत् विशुद्ध हो जाए, वह एक व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम है ।

[२९४] इस (व्यावहारिक क्षेत्र-) पल्योपम की दस गुणित कोटाकोटि का एक व्यावहारिक क्षेत्रसागरोपम का परिमाण होता है । अर्थात् दस कोटाकोटि व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपमों का एक व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपमों का एक व्यावहारिक क्षेत्र सागरोपम होता है ।

[२९५] भगवन् ! इन व्यावहारिक क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम से कौनसा प्रयोजन सिद्ध होता है ? गौतम ! इन से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । मात्र इनके स्वरूप की प्ररूपणा ही की गई है ।

भगवन् ! सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम क्या है ? वह इस प्रकार जानना—जैसे धान्य के पल्य के समान एक पल्य हो जो एक योजन लम्बा-चौड़ा, एक योजन ऊंचा और कुछ अधिक

तिगुनी परिधि वाला हो । फिर उस पल्य को एक दिन, दो दिन, तीन दिन यवत् सात दिन के उगे हुए बालाग्रों से भरा जाए और उन बालाग्रों के असंख्यात-असंख्यात ऐसे खण्ड किये जाएँ, जो दृष्टि के विषयभूत पदार्थ की अपेक्षा असंख्यात भाग-प्रमाण हों एवं सूक्ष्मपनक जीव की शरीरावगाहना से असंख्यात गुणे हों । उन बालाग्रखण्डों को न तो अग्नि जला सके और न वायु उड़ा सके, वे न तो सड़गल सके और न जल से भीग सकें, उनमें दुर्गन्ध भी उत्पन्न न हो सके । उस पल्य के बालाग्रों से जो आकाशप्रदेश स्पृष्ट हुए हों और स्पृष्ट न हुए हों उनमें से प्रति समय एक-एक आकाशप्रदेश का अपहरण किया जाए तो जितने काल में वह पल्य क्षीण, नीरज, निर्लेप एवं सर्वात्मना विशुद्ध हो जाये, उसे सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम हैं । भगवन् ! क्या उस पल्य के ऐसे भी आकाशप्रदेश हैं जो उन बालाग्रखण्डों से अस्पृष्ट हों ? आयुष्मन् ! हाँ, हैं । इस विषय में कोई दृष्टान्त है ? हाँ है । जैसे कोई एक कोष्ठ कूष्मांड के फलों से भरा हुआ हो और उसमें बिजौराफल डाले गए तो वे भी उसमें समा गए । फिर उसमें विल्वफल डाले तो वे भी समा जाते हैं । इसी प्रकार उसमें आंवला डाले जाएँ तो वे भी समा जाते हैं । फिर वहाँ बेर डाले जाएँ तो वे भी समा जाते हैं । फिर चने डालें तो वे भी उसमें समा जाते हैं । फिर मूंग के दाने डाले जाएँ तो वे भी उसमें समा जाते हैं । फिर सरसों डाले जायें तो वे भी समा जाते हैं । इसके बाद गंगा महानदी की बालू डाली जाए तो वह भी उसमें समा जाती है । इस दृष्टान्त से उस पल्य के ऐसे भी आकाशप्रदेश होते हैं जो उन बालाग्रखण्डों से अस्पृष्ट रह जाते हैं ।

[२९६] इन पल्यों को दस कोटाकोटि से गुणा करने पर एक सूक्ष्म क्षेत्रसागरोपम का परिमाण होता है ।

[२९७] इन सूक्ष्म क्षेत्रपल्योपम और सागरोपम का क्या प्रयोजन है ? इनसे दृष्टिवाद में वर्णित द्रव्यों का मान किया जाता है ।

[२९८] द्रव्य कितने प्रकार के हैं ? दो प्रकार के, जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य । अजीवद्रव्य दो प्रकार के हैं—अरूपी अजीवद्रव्य और रूपी अजीवद्रव्य । अरूपी अजीवद्रव्य दस प्रकार के हैं—धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकाय के देश, धर्मास्तिकाय के प्रदेश, अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकायदेश, अधर्मास्तिकायप्रदेश, आकाशास्तिकाय, आकाशास्तिकायदेश, आकाशास्तिकायप्रदेश और अद्वासमय ।

भगवन् ! रूपी अजीवद्रव्य कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! चार प्रकार के, स्कन्ध, स्कन्धदेश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु । भगवन् ! ये स्कन्ध आदि संख्यात हैं, असंख्यात हैं अथवा अनन्त हैं ? गौतम ! ये स्कन्ध आदि अनन्त ही हैं । क्योंकि गौतम ! परमाणु पुद्गल अनन्त हैं, द्विप्रदेशिकस्कन्ध अनन्त हैं यावत् अनन्तप्रदेशिकस्कन्ध अनन्त हैं ।

भगवन् ! क्या जीवद्रव्य संख्यात हैं, असंख्यात हैं अथवा अनन्त हैं ? गौतम ! जीवद्रव्य अनन्त ही हैं ।—क्योंकि—असंख्यात नारक हैं, असंख्यात असुरकुमार यावत् असंख्यात स्तनितकुमार देव हैं, असंख्यात पृथ्वीकायिक यावत् असंख्यात वायुकायिक जीव हैं, अनन्त वनस्पतिकायिक जीव हैं, असंख्यात द्वीन्द्रिय यावत् असंख्यात चतुरिन्द्रिय, असंख्यात पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव हैं, असंख्यात मनुष्य हैं, असंख्यात वाणव्यंतर देव हैं, असंख्यात ज्योतिष्क देव हैं, असंख्यात वैमानिक देव हैं और अनन्त सिद्ध जीव हैं ।



[२९९] भगवन् ! शरीर कितने प्रकार के हैं ? गौतम ! पांच प्रकार के, औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण । नैरयिकों के तीन शरीर हैं । —वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर । असुरकुमारों के तीन शरीर हैं । वैक्रिय, तैजस और कार्मण । इसी प्रकार स्तनितकुमार पर्यन्त जानना ।

पृथ्वीकायिक जीवों के कितने शरीर हैं ? गौतम ! तीन, —औदारिक, तैजस और कार्मण । इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों को भी जानना । वायुकायिक जीवों के चार शरीर हैं—औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर । पृथ्वीकायिक जीवों के समान द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के भी जानना ।

पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिज जीवों के कितने शरीर होते हैं ? गौतम ! वायुकायिक के समान जानना । गौतम ! मनुष्यों के पांच शरीर हैं । —औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर । वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के नारकों के समान वैक्रिय, तैजस और कार्मण ये तीन-तीन शरीर हैं ।

औदारिकशरीर कितने प्रकार के हैं ? दो प्रकार के, बद्ध औदारिकशरीर, मुक्त औदारिकशरीर । जो बद्ध औदारिकशरीर हैं वे असंख्यात हैं । वे कालतः असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं और क्षेत्रतः असंख्यात लोकप्रमाण हैं । जो मुक्त हैं, वे अनन्त हैं । कालतः वे अनन्त उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं और क्षेत्रतः अनन्त लोकप्रमाण हैं । द्रव्यतः वे मुक्त औदारिकशरीर अभवसिद्धिक जीवों से अनन्त गुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण हैं । वैक्रियशरीर दो प्रकार के हैं । —बद्ध और मुक्त । जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं और कालतः असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं । क्षेत्रतः वे असंख्यात श्रेणीप्रमाण हैं तथा वे श्रेणियां प्रतर के असंख्यातवें भाग हैं तथा मुक्त वैक्रियशरीर अनन्त हैं । कालतः वे अनन्त उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं । शेष कथन मुक्त औदारिकशरीरों के समान जानना ।

आहारकशरीर कितने हैं ? दो प्रकार के हैं । —बद्ध और मुक्त । बद्ध कदाचित् होते हैं कदाचित् नहीं होते । यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व होते हैं । मुक्त अनन्त हैं, जिनकी प्ररूपणा औदारिकशरीर के समान जानना । तैजसशरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । उनमें से बद्ध अनन्त हैं, जो कालतः अनन्त उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं । क्षेत्रतः वे अनन्त लोकप्रमाण हैं । द्रव्यतः सिद्धों से अनन्तगुणे और सर्व जीवों से अनन्तभाग न्यून हैं । मुक्त तैजसशरीर अनन्त हैं, जो कालतः अनन्त उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों में अपहृत होते हैं । क्षेत्रतः अनन्त लोकप्रमाण हैं, द्रव्यतः समस्त जीवों से अनन्तगुणे तथा जीववर्ग क अनन्तवें भाग हैं । कार्मणशरीर दो प्रकार के हैं, —बद्ध और मुक्त । तैजसशरीर के समान कार्मणशरीर में भी कहना ।

नैरयिक जीवों के कितने औदारिकशरीर हैं ? गौतम ! दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । बद्ध औदारिकशरीर उनके नहीं होते हैं और मुक्त औदारिकशरीर पूर्वोक्त सामान्य मुक्त औदारिकशरीर के बराबर जानना । नारक जीवों के वैक्रियशरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । बद्ध वैक्रियशरीर असंख्यात हैं जो कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों के समयप्रमाण हैं । क्षेत्रतः वे असंख्यात श्रेणीप्रमाण हैं । वे श्रेणियां प्रतर का असंख्यात भाग हैं । उन

श्रेणियों की विष्कम्भ, सूची अंगुल के प्रथम वर्गमूल को दूसरे वर्गमूल से गुणित करने पर निष्पन्न राशि जितनी होती है । अथवा अंगुल के द्वितीय वर्गमूल के घनप्रमाण श्रेणियों जितनी है । मुक्त वैक्रियशरीर सामान्य से मुक्त औदारिकशरीरों के बराबर जानना । नारक जीवों के आहारकशरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । बद्ध आहारकशरीर तो उनके नहीं होते हैं तथा मुक्त जितने सामान्य औदारिकशरीर समान जानना । तैजस और कार्मण शरीरों के लिये वैक्रियशरीरों के समान समझना ।

असुरकुमारों के कितने औदारिकशरीर हैं ? गौतम ! नारकों औदारिकशरीरों के समान जानना । असुरकुमारों के वैक्रियशरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । बद्ध असंख्यात हैं । जो कालतः असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों में अपहृत होते हैं । क्षेत्र की अपेक्षा वे असंख्यात श्रेणियों जितने हैं और वे श्रेणियां प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । उन श्रेणियों की विष्कम्भसूची अंगुल के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है तथा मुक्त वैक्रियशरीरों के लिये सामान्य से मुक्त औदारिकशरीरों के समान कहना । असुरकुमारों के आहारकशरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । ये दोनों प्रकार के आहारकशरीर इन असुरकुमार देवों में औदारिकशरीर के जैसे जानना । तथा—तैजस और कार्मण शरीर जैसे इनके वैक्रियशरीर के समान जानना । असुरकुमारों में शरीरों के समान स्तनितकुमार पर्यन्त देवों में जानना ।

पृथ्वीकायिकों के कितने औदारिकशरीर हैं ? दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । इनके दोनों शरीरों की संख्या सामान्य बद्ध और मुक्त औदारिकशरीरों जितनी जानना । पृथ्वीकायिकों के वैक्रियशरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । इनमें से बद्ध तो इनके नहीं होते हैं और मुक्त के लिए औदारिकशरीरों के समान जानना । आहारकशरीरों को भी इसी प्रकार जानना । इनके तैजसकार्मण शरीरों की प्ररूपणा औदारिकशरीरों के समान समझना । पृथ्वीकायिकों के शरीरों के समान अप्कायिक और तेजस्कायिक जीवों के शरीरों को जानना ।

वायुकायिक जीवों के औदारिकशरीर कितने हैं ? गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों के समान जानना । वायुकायिक जीवों के वैक्रियशरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । उनमें से बद्ध असंख्यात हैं । यदि समय-समय में एक-एक शरीर का अपहरण किया जाये तो (क्षेत्र) पल्योपम के असंख्यातवें भाग में जितने प्रदेश हैं, उतने काल में पूर्णतः अपहृत हों । किन्तु उनका किसी ने कभी अपहरण किया नहीं है और मुक्त औधित औदारिक के बराबर हैं और आहारकशरीर पृथ्वीकायिकों के वैक्रियशरीर के समान कहना । तैजस, कार्मण, शरीरों की प्ररूपणा पृथ्वीकायिक जीवों के तैजस और कार्मण शरीरों जैसे समझना । वनस्पतिकायिक जीवों के औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरों को पृथ्वीकायिक जीवों के औदारिकादि शरीरों के समान समझना । वनस्पतिकायिक जीवों के तैजस-कार्मण शरीर औधिक तैजस-कार्मण शरीरों के बराबर जानना ।

द्वीन्द्रियों के औदारिकशरीर कितने ? गौतम ! वे दो प्रकार के हैं । बद्ध और मुक्त । बद्ध औदारिकशरीर असंख्यात हैं । कालतः असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं । अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों के समय जितने हैं । क्षेत्रतः प्रतर के असंख्यातवें भाग में वर्तमान असंख्यात श्रेणियों के प्रदेशों की राशिप्रमाण हैं । उन श्रेणियों की विष्कम्भसूची असंख्यात कोटाकोटि योजनप्रमाण है । इतने प्रमाणवाली विष्कम्भसूची

असंख्यात श्रेणियों के वर्गमूल रूप है । द्वीन्द्रियों के बद्धऔदारिकशरीरों द्वारा प्रतर अपहृत किया जाए तो काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों में अपहृत होता है तथा क्षेत्रतः अंगुल मात्र प्रतर और आवलिका के असंख्यातवें भाग-प्रतिभाग (प्रमाणांश) से अपहृत होता है । औधिक मुक्तऔदारिकशरीरों के समान मुक्तऔदारिकशरीरों भी जानना । द्वीन्द्रियों के बद्धवैक्रिय-आहारकशरीर नहीं होते हैं और मुक्त के विषय में औधिक के समान जानना । द्वीन्द्रियों के शरीरों के समान त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में भी कहना । पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों के भी औदारिकशरीर इसी प्रकार जानना ।

पंचेन्द्रियतिर्यचयोनिक जीवों के वैक्रियशरीर कितने हैं ? गौतम ! वे दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । बद्धवैक्रियशरीर असंख्यात हैं' जिनका कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों से अपहरण होता है और क्षेत्रतः यावत् विष्कम्भसूची अंगुल के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग में वर्तमान श्रेणियों जितनी है । मुक्तवैक्रियशरीरों का प्रमाण सामान्य औदारिकशरीरों के प्रमाण तता इनके आहारकशरीरों का प्रमाण द्वीन्द्रियों के आहारकशरीरों के बराबर है । तैजस-कार्मण शरीरों का परिमाण औदारिकशरीरों के प्रमाणवत् है ।

भदन्त ! मनुष्यों के औदारिकशरीर कितने हैं ? गौतम ! वे दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । बद्ध तो स्यात् संख्यात और स्यात् असंख्यात होते हैं । जघन्य पद में संख्यात कोटाकोटि होत हैं अर्थात् उनतीस अंकप्रमाण होते हैं । ये उनतीस अंक तीन यमल पद के ऊपर तथा चार यमल पद से नीचे हैं, अथवा पंचमवर्ग से गुणित छठे वर्गप्रमाण होते हैं, अथवा छियानवै छेदनकदायी राशि जितनी संख्या प्रमाण हैं । उत्कृष्ट पद में वे शरीर असंख्यात हैं । जो कालतः असंख्यात उत्सर्पिणियों-अवसर्पिणियों द्वारा अपहृत होते हैं और क्षेत्र की अपेक्षा एक रूप प्रक्षिप्त किये जाने पर मनुष्यों से श्रेणी अपहृत होती है । कालतः असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों से अपहार होता है और श्रेत्रतः तीसरे मूलवर्ग से गुणित अंगुल के प्रथम वर्गमूल प्रमाण होते हैं । उनके मुक्तऔदारिकशरीर औधिक मुक्तऔदारिकशरीरों के समान जानना । मनुष्यों के वैक्रियशरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । बद्ध संख्यात हैं जो समय-समय में अपहृत किये जाने पर संख्यात काल में अपहृत होते हैं किन्तु अपहृत नहीं किये गये हैं । मुक्तवैक्रियशरीर मुक्त औधिक औदारिकशरीरों के बराबर जानना । मनुष्यों के आहारकशरीर दो प्रकार के हैं, यथा—बद्ध और मुक्त । बद्ध तो कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं भी होते हैं । जब होते हैं तब जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट सहस्रपृथक्त्व होते हैं । मुक्तआहारकशरीर औधिक मुक्तऔदारिकशरीरों के बराबर जानना । मनुष्यों के तैजस-कार्मण शरीर का प्रमाण इन्हीं के औदारिक शरीरों के समान जानना ।

वाणव्यंतर देवों के औदारिकशरीरों का प्रमाण नारकों के औदारिकशरीरों जैसा जानना । वाणव्यंतर देवों के वैक्रियशरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । से बद्धवैक्रिय शरीर सामान्य रूप से असंख्यात हैं जो काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों में अपहृत होते हैं । क्षेत्रतः प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों जितने हैं । उन श्रेणियों की विष्कम्भसूची प्रतर के संख्येययोजनशतवर्ग प्रतिभाग रूप हैं । मुक्तवैक्रियशरीरों का प्रमाण औधिक औदारिकशरीरों की तरह जानना । आहारकशरीरों का परिमाण असुरकुमारों के आहारकशरीरों के प्रमाण जितना जानना । वाणव्यंतरों के तैजस-कार्मण शरीर इनके वैक्रियशरीर



समान जानना ।

ज्योतिष्क देवों के कितने औदारिकशरीर हैं ? नारकों के औदारिकशरीरों के समान जानना । ज्योतिष्क देवों के वैक्रियशरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । जो बद्ध हैं यावत् उनकी श्रेणी की विष्कंभसूची दो सौ छप्पन प्रतरांगुल के वर्गमूल रूप अंश प्रमाण समझना चाहिये । मुक्तवैक्रियशरीरों का प्रमाण सामान्य मुक्तऔदारिकशरीरों जितना जानना । ज्योतिष्कदेवों के आहारकशरीरों का प्रमाण नारकों के आहारकशरीरों के बराबर है । ज्योतिष्कदेवों के तैजस और कार्मण शरीरों का प्रमाण इनके वैक्रियशरीरों के बराबर है ।

भगवन् ! वैमानिक देवों के कितने औदारिकशरीर हैं ? नैरयिकों के औदारिकशरीरों के समान जानना । वैमानिक देवों के वैक्रिय शरीर दो प्रकार के हैं—बद्ध और मुक्त । बद्धवैक्रियशरीर असंख्यात हैं । उनका काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों में अपहरण होता है और क्षेत्रतः प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों जितने हैं । उन श्रेणियों की विष्कंभसूची अंगुल के तृतीय वर्गमूल से गुणित द्वितीय वर्गमूल प्रमाण है अथवा अंगुल के तृतीय वर्गमूल के घनप्रमाण श्रेणियां हैं । मुक्तवैक्रियशरीर औधिक औदारिकशरीर के तुल्य जानना । वैमानिक देवों के आहारकशरीरों का प्रमाण नारकों के आहारकशरीरों के बराबर जानना । इनके तैजस-कार्मण शरीरों का प्रमाण इन्हीं के वैक्रियशरीरों जितना जानना ।

[३००] भावप्रमाण क्या है ? तीन प्रकार का है । गुणप्रमाण, नयप्रमाण और संख्या-प्रमाण ।

[३०१] गुणप्रमाण क्या है ? दो प्रकार का है—जीवगुणप्रमाण और अजीवगुणप्रमाण । अजीवगुणप्रमाण पांच प्रकार का है—वर्णगुणप्रमाण, गंधगुणप्रमाण, रसगुणप्रमाण, स्पर्शगुणप्रमाण और संस्थानगुणप्रमाण ।

भगवन् ! वर्णगुणप्रमाण क्या है ? पांच प्रकार का है । कृष्णवर्णगुणप्रमाण यावत् शुक्लवर्णगुणप्रमाण । गंधगुणप्रमाण दो प्रकार का है । सुरभिगंधगुणप्रमाण, दुरिभगंधगुणप्रमाण । रसगुणप्रमाण पांच प्रकार का है । यथा—तिक्तरसगुणप्रमाण यावत् मधुररसगुणप्रमाण । स्पर्शगुणप्रमाण आठ प्रकार का है । कर्कशस्पर्शगुणप्रमाण यावत् रूक्षस्पर्शगुणप्रमाण । संस्थानगुणप्रमाण पांच प्रकार का है । परिमंडलसंस्थानगुणप्रमाण यावत् आयतसंस्थानगुणप्रमाण ।

जीवगुणप्रमाण क्या है ? तीन प्रकार का है । ज्ञानगुणप्रमाण, दर्शनगुणप्रमाण और चारित्रगुणप्रमाण । ज्ञानगुणप्रमाण चार प्रकार का है—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम । प्रत्यक्ष के दो भेद हैं । इन्द्रियप्रत्यक्ष और नोइन्द्रियप्रत्यक्ष । इन्द्रियप्रत्यक्ष पांच प्रकार का है । श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्ष, चक्षुरिन्द्रियप्रत्यक्ष, घ्राणेन्द्रियप्रत्यक्ष, जिह्वेन्द्रियप्रत्यक्ष, स्पर्शनेन्द्रियप्रत्यक्ष । नोइन्द्रियप्रत्यक्ष तीन प्रकार का है—अवधिज्ञानप्रत्यक्ष, मनःपर्यवज्ञानप्रत्यक्ष, केवलज्ञानप्रत्यक्ष ।

अनुमान क्या है ? तीन प्रकार का है—पूर्ववत्, शेषवत् और दृष्टसाधर्म्यवत् । पूर्ववत्-अनुमान किसे कहते हैं ? पूर्व में देखे गये लक्षण से जो निश्चय किया जाये उसे पूर्ववत् कहते हैं । यथा—

[३०२-३०५] माता बाल्यकाल से गुम हुए और युवा होकर वापस आये हुए पुत्र को किसी पूर्वनिश्चित चिह्न से पहचानती है कि यह मेरा ही पुत्र है । जैसे—देह में हुए क्षत, व्रण, लांछन, डाम आदि से बने चिह्नविशेष, मष, तिल आदि से जो अनुमान किया जाता है, वह

पूर्ववत्-अनुमान है ।

शेषवत्-अनुमान किसे कहते हैं ? पांच प्रकार का है । कार्येण, कारणेन, गुणेण, अवयवेन और आश्रयेण । कार्य से उत्पन्न होने वाले शेषवत्-अनुमान क्या है ? शंख के शब्द को सुनकर शंख का अनुमान करना, भेरी के शब्द से भेरी का, बैल के रंभाने से बैल का, केकारव सुनकर मोर का, हिनहिनाना सुनकर घोड़े का, गुलगुलाहट सुनकर हाथी का और घनघनाहट सुनकर रथ का अनुमान करना । यह कार्यलिंग से उत्पन्न शेषवत्-अनुमान है । कारणरूप लिंग से उत्पन्न शेषवत्-अनुमान इस प्रकार है—तंतु पट के कारण हैं, किन्तु पट तंतु का कारण नहीं है, वीरणा-तृण कट के कारण हैं, लेकिन कट वीरणा का कारण नहीं है, मिट्टी का पिंड घड़े का कारण है किन्तु घड़ा मिट्टी का कारण नहीं है । निकष—कसौटी से स्वर्ण का, गंध से पुष्प का, रस से नमक का, आस्वाद से मदिरा का, स्पर्श से वस्त्र का अनुमान करना गुणनिष्पन्न शेषवत्-अनुमान है । सींग से महिष का, शिखा से कुक्कुट का, दांत से हाथी का, दाढ़ से वराह का, पिच्छ से मयूर का, खुर से घोड़े का, नखों से व्याघ्र का, बालों के गुच्छे से चमरी गाय का, द्विपद से मनुष्य का, चतुष्पद से गाय आदि का, बहु पदों से गोमिका आदि का, केसरसटा से सिंह का, ककुद से वृषभ का, चूड़ी सहित बाहु से महिला का अनुमान करना । बद्धपरिकरता से योद्धा का, वेष से महिला का, एक दाने के पकने से द्रोण-पाक का और एक गाथा से कवि का ज्ञान होना । यह अवयवलिंगजन्य शेषवत्-अनुमान है । धूम से अग्नि का, बकपंक्ति से पानी का, अभ्रविकार से वृष्टि का और शील सदाचार से कुलपुत्र का तथा—शरीर की चेष्टाओं से, भाषण करने से और नेत्र तथा मुख के विकार से अन्तर्गत मन का ज्ञान होना । यह आश्रयजन्य शेषवत्-अनुमान है ।

दृष्टसाधर्म्यवत्-अनुमान क्या है ? दो प्रकार का है । सामान्यदृष्ट, विशेषदृष्ट । सामान्यदृष्ट अनुमान का स्वरूप इस प्रकार जानना—जैसा एक पुरुष होता है, वैसे ही अनेक पुरुष होते हैं । जैसे अनेक पुरुष होते हैं, वैसे ही एक पुरुष होता है । जैसा एक कार्षापण होता है वैसे ही अनेक कार्षापण होते हैं, जैसे अनेक कार्षापण होते हैं, वैसे ही एक कार्षापण होता है । विशेषदृष्ट अनुमान का स्वरूप यह है—जैसे कोई एक पुरुष अनेक पुरुषों के बीच में किसी पूर्वदृष्ट पुरुष को पहचान लेता है कि यह वह पुरुष है । इसी प्रकार अनेक कार्षापणों के बीच में से पूर्व में देखे हुए कार्षापण को पहिचान लेता है कि यह वही कार्षापण है । उसका विषय संक्षेप से तीन प्रकार का है । अतीत, प्रत्युत्पन्न और अनागत कालग्रहण ।

अतीतकालग्रहण अनुमान क्या है ? वनों में ऊगी हुई घास, धान्यों से परिपूर्ण पृथ्वी, कुंड, सरोवर, नदी और बड़े-बड़े तालाबों को जल से संपूरित देखकर यह अनुमान करना कि यहाँ अच्छी वृष्टि हुई है । यह अतीतकालग्रहणसाधर्म्यवत्-अनुमान है । गोचरी गये हुए साधु को गृहस्थों से विशेष प्रचुर आहार-पानी प्राप्त करते हुए देखकर अनुमान किया जाता है कि यहाँ सुभिक्ष है । यह प्रत्युत्पन्नकालग्रहण अनुमान है । अनागतकालग्रहण का क्या स्वरूप है ?

[३०६] आकाश की निर्मलता, पर्वतों का काला दिखाई देना, बिजली सहित मेघों की गर्जना, अनुकूल पवन और संध्या की गाढ़ लालिमा । तथा—

[३०७] वारुण, माहेन्द्र, अथवा किसी अन्य प्रशस्त उत्पात को देखकर अनुमान करना कि अच्छी वृष्टि होगी । इसे अनागतकालग्रहणविशेषदृष्टसाधर्म्यवत्-अनुमान कहते हैं ।

इनकी विपरीतता में भी तीन प्रकार से ग्रहण होता है—अतीत, प्रत्युत्पन्न और अनागतकालग्रहण । तृणरहित वन, अनिष्पन्न धान्ययुक्त भूमि और सूखे कुंड, सरोवर, नदी, द्रह और तालाबों को देखकर अनुमान किया जाता है कि यहाँ कुवृष्टि हुई है—यह अतीतकालग्रहण है । गोचरी गये हुए साधु को भिक्षा नहीं मिलते देखकर अनुमान किया जाना कि यहाँ दुर्भिक्ष है । यह प्रत्युत्पन्नकालग्रहण-अनुमान है । अनागतकालग्रहण का क्या स्वरूप है ?

[३०८] सभी दिशाओं में धुंआ हो रहा है, आकाश में भी अशुभ उत्पात हो रहे हैं, इत्यादि से यह अनुमान कर लिया जाता है कि यहाँ कुवृष्टि होगी, क्योंकि वृष्टि के अभाव के सूचक चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं ।

[३०९] आग्नेय मंडल के नक्षत्र, वायव्य मंडल के नक्षत्र या अन्य कोई उत्पात देखकर अनुमान किया जाना कि कुवृष्टि होगी, ठीक वर्षा नहीं होगी । यह अनागतकालग्रहण-अनुमान है ।

उपमान प्रमाण क्या है ? दो प्रकार का है, जैसे—साधर्म्योपनीत और वैधर्म्योपनीत । जिन पदार्थों की सदृशत उपमा द्वारा सिद्ध की जाये उसे साधर्म्योपनीत कहते हैं । उसके तीन प्रकार हैं—किंचित्साधर्म्योपनीत, प्रायःसाधर्म्योपनीत और सर्वसाधर्म्योपनीत । जैसा मंदर पर्वत है वैसा ही सर्षप है और जैसा सर्षप है वैसा ही मन्दर है । जैसा समुद्र है, उसी प्रकार गोष्पद— है और जैसा गोष्पद है, वैसा ही समुद्र है तथा जैसा आदित्य है, वैसा खद्योत है । जैसा खद्योत है, वैसा आदित्य है । जैसा चन्द्रमा है, वैसा कुंद पुष्प है, और जैसा कुंद है, वैसा चन्द्रमा है । यह किंचित्साधर्म्योपनीत है । जैसी गाय है वैसा गवय होता है और जैसा गवय है, वैसी गाय है । यह प्रायःसाधर्म्योपनीत है । सर्वसाधर्म्य में उपमा नहीं होती, तथापि उसी से उसको उपमित किया जाता है । वह इस प्रकार—अरिहंत ने अरिहंत के सदृश, चक्रवर्ती ने चक्रवर्ती के जैसा, बलदेव ने बलदेव के सदृश, वासुदेव ने वासुदेव के समान, साधु ने साधु सदृश किया । यही सर्वसाधर्म्योपनीत है ।

वैधर्म्योपनीत का तात्पर्य क्या है ? वैधर्म्योपनीत के तीन प्रकार हैं, यथा—किंचित्वैधर्म्योपनीत, प्रायःवैधर्म्योपनीत और सर्ववैधर्म्योपनीत । किसी धर्मविशेष की विलक्षणता प्रकट करने को किंचित्वैधर्म्योपनीत कहते हैं । जैसा शबला गाय का बछड़ा होता है वैसा बहुला गाय का बछड़ा नहीं और जैसा बहुला गाय का बछड़ा वैसा शबला गाय का नहीं होता है । यह किंचित्वैधर्म्योपनीत का स्वरूप जानना । अधिकांश रूप में अनेक अवयवगत विसदृशता प्रकट करना । प्रायःवैधर्म्योपनीत हैं । यथा—जैसा वायस है वैसा पायस नहीं होता और जैसा पायस होता है वैसा वायस नहीं । यही प्रायःवैधर्म्योपनीत है । जिसमें किसी भी प्रकार की सजातीयता न हो उसे सर्ववैधर्म्योपनीत कहते हैं । यद्यपि सर्ववैधर्म्य में उपमा नहीं होती है, तथापि उसी की उपमा उसी को दी जाती है, जैसे—नीच ने नीच के समान, दास ने दास के सदृश, कौए ने कौए जैसा, श्वान ने श्वान जैसा और चांडाल ने चांडाल के सदृश किया । यही सर्ववैधर्म्योपनीत है ।

आगमप्रमाण क्या है ? दो प्रकार का है । यथा—लौकिक, लोकोत्तर । जिसे अज्ञानी मिथ्यादृष्टिजनों ने अपनी स्वच्छन्द बुद्धि और मति से रचा हो, उसे लौकिक आगम कहते हैं । यथा—महाभारत, रामायण यावत् सांगोपांग चार वेद । उत्पन्नज्ञान-दर्शन के धारक, अतीत,



प्रत्युत्पन्न और अनागत के ज्ञाता त्रिलोकवर्ती जीवों द्वारा सहर्ष वंदित, पूजित सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अरिहंत भगवन्तों द्वारा प्रणीत आचारांग यावत् दृष्टिवाद पर्यन्त द्वादशांग रूप गणिपिटक लोकोत्तरिक आगम हैं ।

अथवा तीन प्रकार का है । जैसे—सूत्रागम, अर्थागम और तदुभयागम । अथवा (लोकोत्तरिक) आगम तीन प्रकार का है । आत्मागम, अनन्तरागम और परम्परागम । अर्थागम तीर्थकरों के लिये आत्मागम है । सूत्र का ज्ञान गणधरों के लिये आत्मागम और अर्थ का ज्ञान अनन्तरागम रूप है । गणधरों के शिष्यों के लिये सूत्रज्ञान अनन्तरागम और अर्थ का ज्ञान परम्परागम है । तत्पश्चात् सूत्र और अर्थ रूप आगम आत्मागम भी नहीं है, अनन्तरागम भी नहीं है, किन्तु परम्परागम है । इस प्रकार से लोकोत्तर आगम का स्वरूप जानना ।

दर्शनगुणप्रमाण क्या है ? चार प्रकार का है । चक्षुदर्शनगुणप्रमाण, अचक्षुदर्शनगुणप्रमाण, अवधिदर्शनगुणप्रमाण और केवलदर्शनगुणप्रमाण । चक्षुदर्शनी का चक्षुदर्शन घट, पट, कट, रथ आदि द्रव्यों में होता है । अचक्षुदर्शनी का अचक्षुदर्शन आत्मभाव में होता है । अवधिदर्शनी का अवधिदर्शन सभी रूपी द्रव्यों में होता है, किन्तु सभी पर्यायों में नहीं होता है । केवलदर्शनी का केवलदर्शन सर्व द्रव्यों और सर्व पर्यायों में होता है ।

भगवन् ! चारित्रगुणप्रमाण किसे कहते हैं ? पांच भेद हैं । सामायिकचारित्रगुणप्रमाण, छेदोपस्थापनीयचारित्रगुणप्रमाण, परिहारविशुद्धिचारित्रगुणप्रमाण, सूक्ष्मसंपरायचारित्रगुणप्रमाण, यथाख्यातचारित्रगुणप्रमाण । इनमें से—सामायिकचारित्रगुणप्रमाण दो प्रकार का कहा गया है—इत्वरिक और यावत्कथिक । छेदोपस्थापनीयचारित्रगुणप्रमाण के दो भेद हैं, सातिचार और निरतिचार । परिहारविशुद्धिकचारित्रगुणप्रमाण दो प्रकार का है—निर्विशयमानक, निर्विष्टकायिक । सूक्ष्मसंपरायचारित्रगुणप्रमाण दो प्रकार का है—संक्लिश्यमानक और विशुद्धयमानक । यथाख्यातचारित्रगुणप्रमाण के दो भेद हैं । प्रतिपाती और अप्रतिपाती । अथवा छाद्यस्थिक और कैवलिक ।

[३१०] नयप्रमाण क्या है ? वह तीन दृष्टान्तों द्वारा स्पष्ट किया गया है । जैसे कि—प्रस्थक के, वसति के और प्रदेश के दृष्टान्त द्वारा ।

भगवन् ! प्रस्थक का दृष्टान्त क्या है ? जैसे कोई पुरुष परशु लेकर वन की ओर जाता है । उसे देखकर किसी ने पूछा—आप कहाँ जा रहे हैं ? तब अविशुद्ध नैगमनय के मतानुसार उसने कहा—प्रस्थक लेने के लिये जा रहा हूँ । फिर उसे वृक्ष को छेदन करते देखकर कोई कहे—आप क्या काट रहे हैं ? तब उसने विशुद्धतर नैगमनय के मतानुसार उत्तर दिया—मैं प्रस्थक काट रहा हूँ । कोई उस लकड़ी को छीलते देखकर पूछे—आप यह क्या छील रहे हैं ? तब विशुद्धतर नैगमनय की अपेक्षा उसने कहा—प्रस्थक छील रहा हूँ । कोई काष्ठ के मध्यभाग को उत्कीर्ण करते देखकर पूछे—आप यह क्या उत्कीर्ण कर रहे हैं ? तब विशुद्धतर नैगमनय के अनुसार उसने उत्तर दिया—मैं प्रस्थक उत्कीर्ण कर रहा हूँ । उस उत्कीर्ण काष्ठ पर प्रस्थक का आकार लेखन करते देखकर कहे—आप यह क्या लेखन कर रहे हैं ? तो विशुद्धतर नैगमनयानुसार उसने उत्तर दिया—प्रस्थक अंकित कर रहा हूँ । इसी प्रकार से जब तक संपूर्ण प्रस्थक निष्पन्न न हो जाये, तब तक प्रस्थक संबंधी प्रश्नोत्तर करना चाहिये । इसी प्रकार व्यवहारनय से भी जानना । संग्रहनय के मत से धान्यपरिपूरित प्रस्थक को ही प्रस्थक कहते हैं । ऋजुसूत्रनय

के मत से प्रस्थक भी प्रस्थक है और मेय वस्तु भी प्रस्थक है । तीनों शब्द नयों के मतानुसार प्रस्थक के अर्थाधिकार का ज्ञाता अथवा प्रस्थककर्ता का वह उपयोग जिससे प्रस्थक, निष्पन्न होता है उसमें वर्तमान कर्ता प्रस्थक है ।

वह वसति-दृष्टान्त क्या है ? वसति के दृष्टान्त द्वारा नयों का स्वरूप इस प्रकार जानना—जैसे किसी पुरुष ने किसी अन्य पुरुष से पूछा—आप कहाँ रहते हैं ? तब उसने अविशुद्ध नैगमनय के मतानुसार उत्तर दिया—मैं लोक में रहता हूँ । प्रश्नकर्ता ने पुनः पूछा—लोक के तो तीन भेद हैं । तो क्या आप इन सब में रहते हैं ? तब—विशुद्ध नैगमनय के अभिप्रायानुसार उसने कहा—मैं तिर्यग्लोक में रहता हूँ । इस पर पुनः प्रश्न तिर्यग्लोक में जम्बूद्वीप आदि स्वयंभूरमणसमुद्र पर्यन्त असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं, तो क्या आप उन सभी में रहते हैं ? प्रत्युत्तर में विशुद्धतर नैगमनय के अभिप्रायानुसार उसने कहा—मैं जम्बूद्वीप में रहता हूँ । तब प्रश्नकर्ता ने प्रश्न किया—जम्बूद्वीप में दस क्षेत्र हैं । तो क्या आप इन दसों क्षेत्रों में रहते हैं ? उत्तर में विशुद्धतर नैगमनय के अभिप्रायानुसार उसने कहा—भरतक्षेत्र में रहता हूँ । प्रश्नकर्ता ने पुनः पूछा—भरतक्षेत्र के दो विभाग हैं तो क्या आप उन दोनों विभागों में रहते हैं ? विशुद्धतर नैगमनय की दृष्टि से उसने उत्तर दिया—दक्षिणार्धभरत में रहता हूँ । दक्षिणार्धभरत में तो अनेक ग्राम, नगर, खेड, कर्वट, मडंब, द्रोणमुख, पट्टन, आकर, संवाह, सन्निवेश हैं, तो क्या आप उन सबमें रहते हैं ? इसका विशुद्धतर नैगमनयानुसार उसने उत्तर दिया—मैं पाटलिपुत्र में रहता हूँ । पाटलिपुत्र में अनेक घर हैं, तो आप उन सभी में निवास करते हैं ? तब विशुद्धतर नैगमनय की दृष्टि से उसने उत्तर दिया—देवदत्त के घर में बसता हूँ । देवदत्त के घर में अनेक प्रकोष्ठ हैं, तो क्या आप उन सबमें रहते हैं ? उत्तर में उसने विशुद्धतर नैगमनय के अनुसार कहा—गर्भगृह में रहता हूँ । इस प्रकार विशुद्ध नैगमनय के मत से वसते हुए को वसता हुआ माना जाता है । व्यवहारनय का मंतव्य भी इसी प्रकार का है । संग्रहनय के मतानुसार शैया पर आरूढ़ हो तभी वह वसता हुआ कहा जा सकता है । ऋजुसूत्रनय के मत से जिन आकाशप्रदेशों में अवगाढ़-अवगाहनयुक्त-विद्यमान है, उनमें ही बसता हुआ माना जाता है । तीनों शब्दनयों के अभिप्राय से आत्मभाव में ही निवास होता है ।

प्रदेशदृष्टान्त द्वारा नयों के स्वरूप का प्रतिपादन किस प्रकार है ? नैगमनय के मत से—छह द्रव्यों के प्रदेश होते हैं । धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश, स्कन्ध का प्रदेश और देश का प्रदेश । ऐसा कथन करने वाले नैगमनय से संग्रहनय ने कहा—जो तुम कहते हो कि छहों के प्रदेश हैं, वह उचित नहीं है । क्योंकि जो देश का प्रदेश है, वह उसी द्रव्य का है । इसके लिये कोई दृष्टान्त है ? हाँ दृष्टान्त है । जैसे मेरे दास ने गधा खरीदा और दास मेरा है तो गधा भी मेरा है । इसलिये ऐसा मत कहो कि छहों के प्रदेश हैं, यह कहो कि पांच के प्रदेश हैं । यथा—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश और स्कन्ध का प्रदेश । इस प्रकार कहने वाले संग्रहनय से व्यवहारनय ने कहा—तुम कहते हो कि पांचों के प्रदेश हैं, वह सिद्ध नहीं होता है । क्यों ? प्रत्युत्तर में व्यवहारनयवादी ने कहा—जैसे पांच गोष्ठिक पुरुषों का कोई द्रव्य सामान्य होता है । यथा—हिरण्य, स्वर्ण आदि तो तुम्हारा कहना युक्त था कि पांचों के प्रदेश हैं । इसलिये ऐसा मत कहो कि पांचों के प्रदेश

हैं, किन्तु कहो—प्रदेश पांच प्रकार का है, जैसे—धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश और स्कन्ध का प्रदेश । व्यवहारनय के ऐसा कहने पर ऋजुसूत्रनय ने कहा—तुम भी जो कहते हो कि पांच प्रकार के प्रदेश हैं, वह नहीं बनता है । क्योंकि यदि पांच प्रकार के प्रदेश हैं यह कहो तो एक-एक प्रदेश पांच-पांच प्रकार का हो जाने से तुम्हारे मत से पच्चीस प्रकार का प्रदेश होगा । यह कहो कि प्रदेश भजनीय है—स्यात् धर्मास्तिकाय का प्रदेश, स्यात् अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, स्यात् आकाशास्तिकाय का प्रदेश, स्यात् जीव का प्रदेश, स्यात् स्कन्ध का प्रदेश है ।

इस प्रकार कहने वाले ऋजुसूत्रनय से संप्रति शब्दनय ने कहा—तुम कहते हो कि प्रदेश भजनीय है, यह कहना योग्य नहीं है । क्योंकि प्रदेश भजनीय है, ऐसा मानने से तो धर्मास्तिकाय का प्रदेश अधर्मास्तिकाय का भी, आकाशास्तिकाय का भी, जीवास्तिकाय का भी और स्कन्ध का भी प्रदेश हो सकता है । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का प्रदेश धर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीवास्तिकाय का प्रदेश एवं स्कन्ध का प्रदेश हो सकता है । यावत् स्कन्ध का प्रदेश भी धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, आकाशास्तिकाय का प्रदेश अथवा जीवास्तिकाय का प्रदेश हो सकता है । इस प्रकार तुम्हारे मत से अनवस्था हो जायेगी । ऐसा कहो—धर्मरूप जो प्रदेश है, वही प्रदेश धर्म है—है, जो अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है, वही प्रदेश अधर्मास्तिकायात्मक है, जो आकाशास्तिकाय का प्रदेश है, वही प्रदेश आकाशात्मक है, एक जीवास्तिकाय का जो प्रदेश है, वही प्रदेश नोजीव है, इसी प्रकार जो स्कन्ध का प्रदेश है, वही प्रदेश नोस्कन्धात्मक है । इस प्रकार कहते हुए शब्दनय से समभिरूढनय ने कहा—तुम कहते हो कि धर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है, वही प्रदेश धर्मास्तिकाय रूप है, यावत् स्कन्ध का जो प्रदेश, वही प्रदेश नोस्कन्धात्मक है, किन्तु तुम्हारा यह कथन युक्तिसंगत नहीं है । क्योंकि यहाँ तत्पुरुष और कर्मधारय यह दो समास होते हैं । इसलिए संदेह होता है कि उक्त दोनों समासों में से तुम किस समास की दृष्टि से 'धर्मप्रदेश' आदि कह रहे हो ? यदि तत्पुरुषसमासदृष्टि से कहते हो तो ऐसा मत कहो और यदि कर्मधारय समास की अपेक्षा कहते हो तब विशेषतया कहना चाहिये—धर्म और उसका जो प्रदेश वही प्रदेश धर्मास्तिकाय है । इसी प्रकार अधर्म और उसका जो प्रदेश वही प्रदेश अधर्मास्तिकाय रूप है, यावत् स्कन्ध और उसका जो प्रदेश है, वही प्रदेश नोस्कन्धात्मक है । ऐसा कथन करने पर समभिरूढनय से एवंभूतनय ने कहा—जो कुछ भी तुम कहते हो वह समीचीन नहीं, मेरे मत से वे सब कृत्स्न हैं, प्रतिपूर्ण और निस्वशेष हैं, एक ग्रहणगृहीत हैं—अतः देश भी अवस्तु रूप है एवं प्रदेश भी अवस्तु रूप हैं ।

[३११] संख्याप्रमाण क्या है ? आठ प्रकार का है । यथा—नामसंख्या, स्थापनासंख्या, द्रव्यसंख्या, औपम्यसंख्या, परिमाणसंख्या, ज्ञानसंख्या, गणनासंख्या, भावसंख्या । नामसंख्या क्या है ? जिस जीव का अथवा अजीव का अथवा जीवों का अथवा अजीवों का अथवा तदुभव का अथवा तदुभयों का संख्या ऐसा नामकरण कर लिया जाता है, उसे नामसंख्या कहते हैं । जिस काष्ठकर्म में, पुस्तकर्म में या चित्रकर्म में या लेप्यकर्म में अथवा ग्रन्थिकर्म में अथवा वेदित में अथवा पूरित में अथवा संघातिम में अथवा अक्ष में अथवा वराटक में अथवा एक या अनेक में सद्भूतस्थापना या असद्भूतस्थापना द्वारा 'संख्या' इस प्रकार का



स्थापन कर लिया जाता है, वह स्थापनासंख्या है । नाम और स्थापना में क्या अन्तर है ? नाम यावत्कथिक होता है लेकिन स्थापना इत्वरिक भी होती है और यावत्कथिक भी होती है ।

द्रव्यशंख का क्या तात्पर्य है ? दो प्रकार का — आगमद्रव्यशंख, नोआगमद्रव्यशंख । आगमद्रव्यशंख (संख्या) का स्वरूप इस प्रकार है—जिसने शंख (संख्या) यह पद सीखा लिया, हृदय में स्थिर किया, जित किया मित किया, अधिकृत कर लिया यावत् निर्दोष स्पष्ट स्वर से शुद्ध उच्चारण किया तथा गुरु से वाचना ली, जिससे वाचना, पृच्छना, परावर्तना एवं धर्मकथा से युक्त भी हो गया परन्तु जो अर्थ का अनुचिन्तन करने रूप अनुप्रेक्षा से रहित हो, उपयोग न होने से वह आगम से द्रव्यशंख (संख्या) कहलाता है । क्योंकि सिद्धान्त में 'अनुपयोगो द्रव्यम्'—उपयोग से शून्य को द्रव्य कहा है ।

(नैगमनय की अपेक्षा) एक अनुपयुक्त आत्मा एक आगमद्रव्यशंख, दो अनुपयुक्त आत्मा दो आगमद्रव्यशंख, तीन अनुपयुक्त आत्मा तीन आगमद्रव्यशंख हैं । इस प्रकार जितनी अनुपयुक्त आत्मायें हैं उतने ही द्रव्यशंख हैं । व्यवहारनय नैगमनय के समान ही मानता है । संग्रहनय एक अनुपयुक्त आत्मा एक द्रव्यशंख और अनेक अनुपयुक्त आत्मायें अनेक आगमद्रव्यशंख, ऐसा स्वीकार नहीं करता किन्तु सभी को एक ही आगमद्रव्यशंख मानता है । ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा एक आगमद्रव्यशंख है । तीनों शब्द नय अनुपयुक्त ज्ञायक को अवस्तु मानते हैं । क्योंकि यदि ज्ञायक है तो अनुपयुक्त नहीं होता है और यदि अनुपयुक्त हो तो वह ज्ञायक नहीं होता है । इसलिये आगमद्रव्यशंख संभव नहीं है ।

नोआगमद्रव्यसंख्या क्या है ? तीन भेद हैं—ज्ञायकशरीरद्रव्यसंख्या, भव्यशरीरद्रव्यसंख्या, ज्ञायकशरीर-भव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्यसंख्या । संख्या इस पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का वह शरीर, जो व्यपगत हो गया हो, त्यक्त देह यावत् जीवरहित शरीर को देखकर कहना—अहो ! इस शरीर रूप पुद्गलसंघात ने संख्या पद को ग्रहण किया था, पढ़ा था यावत् उपदर्शित किया था—समझाया था, (उसका वह शरीर ज्ञायकशरीर द्रव्यसंख्या है ।) इसका कोई दृष्टान्त है ? हां, है यह घी का घड़ा है । यह ज्ञायकशरीरद्रव्यसंख्या का स्वरूप है । जन्म समय प्राप्त होने पर जो जीव योनि से बाहर निकला और भविष्य में उसी शरीरपिंड द्वारा जिनोपदिष्ट भावानुसार संख्या पद को सीखेगा ऐसे उस जीव का वह शरीर भव्यशरीरद्रव्यसंख्या है । इसका कोई दृष्टान्त है ? यह घृतकुंभ होगा । यह भव्यशरीरद्रव्यसंख्या का स्वरूप है । ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यशंख के तीन प्रकार हैं—एकभविक, बद्धायुष्क और अभिमुखनामगोत्र ।

एकभविक जीव 'एकभविक' ऐसा नाम वाला कितने समय तक रहता है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट एक पूर्व कोटि पर्यन्त रहता है । बद्धायुष्क जीव बद्धायुष्क रूप में जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट एक पूर्वकोटि वर्ष के तीसरे भाग तक रहता है । अभिमुखनामगोत्र (शंख) का अभिमुखनामगोत्र नाम कितने काल तक रहता है ? जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल रहता है । नैगमनय, संग्रहनय और व्यवहारनय एकभविक, बद्धायुष्क और अभिमुखनामगोत्र तीनों प्रकार के शंखों को शंख मानते हैं । ऋजुसूत्रनय १. बद्धायुष्क और २. अभिमुखनामगोत्र, ये दो प्रकार के शंख स्वीकार करता है । तीनों शब्दनय मात्र अभिमुखनामगोत्र शंख को ही शंख मानते हैं ।

औपम्यसंख्या क्या है ? उपमा देकर किसी वस्तु के निर्णय करने को औपम्यसंख्या

कहते हैं । उसके चार प्रकार हैं । सद् वस्तु को सद् वस्तु की उपमा देना । सद् वस्तु को असद् वस्तु से उपमित करना । असद् वस्तु को सद् वस्तु की उपमा देना । असद् वस्तु को असद् वस्तु की उपमा देना । इनमें से जो सद् वस्तु को सद् वस्तु से उपमित किया जाता है, वह इस प्रकार है—सद् रूप अरिहंत भगवन्तों के प्रशस्त वक्षस्थल को सद् रूप श्रेष्ठ नगरों के सत् कपाटों की उपमा देना, जैसे—

[३१२] सभी चौबीस जिन-तीर्थकर प्रधान-उत्तम नगर के कपाटों के समान वक्षस्थल, अर्गला के समान भुजाओं, देवदुन्दुभि या स्तनित के समान स्वर और श्रीवत्स से अंकित वक्षस्थल वाले होते हैं ।

[३१३] विद्यमान पदार्थ को अविद्यमान पदार्थ से उपमित करना । जैसे नारक, तिर्यच, मनुष्य और देवों की विद्यमान आयु के प्रमाण को अविद्यमान पत्योपम और सागरोपम द्वारा बतलाना ।

[३१४-३१६] अविद्यमान को विद्यमान सद् वस्तु से उपमित करने को असत्-सत् औपम्यसंख्या कहते हैं । सर्व प्रकार से जीर्ण, डंठल से टूटे, वृक्ष से नीचे गिरे हुए, निस्सार और दुःखित ऐसे पत्ते ने वसंत समय प्राप्त नवीन पत्ते से कहा—जीर्ण पीले पत्ते ने नवोद्गत किसलयों कहा—इस समय जैसे तुम हो, हम भी पहले वैसे ही थे तथा इस समय जैसे हम हो रहे हैं, वैसे ही आगे चलकर तुम भी हो जाओगे । यहाँ जो जीर्ण पत्तों और किसलयों के वार्तालाप का उल्लेख किया गया है, वह न तो कभी हुआ है, न होता है और न होगा, किन्तु भव्य जनों के प्रतिबोध के लिये उपमा दी गई है ।

[३१७] अविद्यमान पदार्थ को अविद्यमान पदार्थ से उपमित करना असद्-असद् रूप औपम्यसंख्या है । जैसा—खर विषाण है वैसे ही शश विषाण है और जैसा शशविषाण है वैसे ही खरविषाण है ।

परिमाणसंख्या क्या है ? दो प्रकार की है । जैसे—कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या और दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या । कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या अनेक प्रकार की है । पर्यव (पर्याय) संख्या, अक्षरसंख्या, संघातसंख्या, पदसंख्या, पादसंख्या, गाथासंख्या, श्लोकसंख्या, वेढ (वेष्टक) संख्या, निर्युक्तिसंख्या, अनुयोगद्वारसंख्या, उद्देशसंख्या, अध्ययनसंख्या, श्रुतस्कन्धसंख्या, अंगसंख्या आदि कालिकश्रुतपरिमाणसंख्या है । दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या के अनेक प्रकार हैं । यथा—पर्यवसंख्या यावत् अनुयोगद्वारसंख्या, प्राभृतसंख्या, प्राभृतिकासंख्या, प्राभृतप्राभृतिकासंख्या, वस्तुसंख्या और पूर्वसंख्या । इस प्रकार से दृष्टिवादश्रुतपरिमाणसंख्या का स्वरूप जानना ।

ज्ञानसंख्या क्या है ? जो जिसको जानता है उसे ज्ञानसंख्या कहते हैं । जैसे कि—शब्द को जानने वाला शाब्दिक, गणित को जानने वाला गणितज्ञ, निमित्त को जाननेवाला नैमित्तिक, काल को जानने वाला कालज्ञ और वैद्यक को जानने वाला वैद्य । ये इतने हैं, इस रूप में गिनती करने को गणनासंख्या कहते हैं । 'एक', गणना नहीं कहलाता है इसलिये दो से गणना प्रारंभ होती है । वह गणनासंख्या संख्या, असंख्यात और अनन्त, तीन प्रकार की जानना ।

संख्यात क्या है ? तीन प्रकार का है । जघन्य संख्यात, उत्कृष्ट संख्यात और अजघन्य-अनुत्कृष्ट संख्यात । असंख्यात के तीन प्रकार हैं । जैसे—परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात

और असंख्यातासंख्यात । परीतासंख्यात तीन प्रकार का है—जघन्य परीतासंख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात और अजघन्य-अनुत्कृष्ट परीतासंख्यात । युक्तासंख्यात तीन प्रकार का है । जघन्य युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात और अजघन्यानुत्कृष्ट युक्तासंख्यात । असंख्यातसंख्यात तीन प्रकार का है । जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्यानुत्कृष्ट असंख्यातासंख्याता ।

भगवन् ! अनन्त क्या है ? अनन्त के तीन प्रकार हैं । परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त । परीतानन्त तीन प्रकार का है । जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्य-अनुत्कृष्ट परीतानन्त । आयुष्मन् ! युक्तानन्त के तीन प्रकार हैं । जघन्य, उत्कृष्ट और अजघन्य-अनुत्कृष्ट युक्तानन्त । अनन्तानन्त के दो प्रकार कहे हैं । यथा—जघन्य अनन्तानन्त और अजघन्य-अनुत्कृष्ट अनन्तानन्त ।

भगवन् ! जघन्य संख्यात कितने प्रमाण में होता है ? दो रूप प्रमाण जघन्य संख्यात है, उसके पश्चात् यावत् उत्कृष्ट संख्यात का स्थान प्राप्त न होने तक मध्यम संख्यात जानना । उत्कृष्ट संख्यात की प्ररूपणा इस प्रकार करूंगा—एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा और ३१६२२७ योजन, तीन कोश, १२८ धनुष एवं १३॥ अंगुल से कुछ अधिक परिधि वाला कोई एक पल्य हो । पल्य को सर्षपों के दानों से भर दिया जाये । उन सर्षपों से द्वीप और समुद्रों का उद्धार-प्रमाण निकाला जाता है । अनुक्रम से एक द्वीप में और एक समुद्र में इस तरह प्रक्षेप करते-करते जितने द्वीप-समुद्र उन सरसों के दानों से भर जाएँ, उनके समाप्त होने पर एक दाना शलाकापल्य में डाल दिया जाए । इस प्रकार के शलाका रूप पल्य में भरे सरसों के दानों से अकथनीय लोक भरे हुए हों तब भी उत्कृष्ट संख्या का स्थान प्राप्त नहीं होता है । इसके लिये कोई दृष्टान्त जैसे कोई एक मंच हो और वह आंवलियों से पूरित हो, तदनन्तर एक आंवला डाला तो वह भी समा गया, दूसरा डाला तो वह भी समा गया, तीसरा डाला तो वह भी समा गया, इस प्रकार प्रक्षेप करते-करते अंत में एक आंवला ऐसा होगा कि जिसके प्रक्षेप से मंच परिपूर्ण भर जाता है । उसके बाद आंवला डाला जाये तो वह नहीं समाता है । इसी प्रकार बारंबार डाले गये सर्षपो से जब असंलप्य—बहुत से पल्य अंत में आमूलशिख पूरित हो जायें, उनमें एक सर्षप जितना भी स्थान न रहे तब उत्कृष्ट संख्या का स्थान प्राप्त होता है ।

इसी प्रकार उत्कृष्ट संख्यात संख्या में रूप (एक) का प्रक्षेप करने से जघन्य परीतासंख्यात होता है । तदनन्तर (परीतासंख्यात के) अजघन्य-अनुत्कृष्ट स्थान हैं, जहाँ तक उत्कृष्ट परीतासंख्यात स्थान प्राप्त नहीं होता है । जघन्य परीतासंख्यात राशि को जघन्य परीतासंख्यात राशि से परस्पर अभ्यास गुणित करके रूप (एक) न्यून करने पर उत्कृष्ट परीतासंख्यात का प्रमाण होता है । अथवा एक न्यून जघन्य युक्तासंख्यात उत्कृष्ट परीतासंख्यात का प्रमाण है ।

जघन्य युक्तासंख्यात का कितना प्रमाण है ? जघन्य परीतासंख्यात राशि का जघन्य परीतासंख्यात राशि से अन्योन्य अभ्यास करने पर प्राप्त परिपूर्ण संख्या जघन्य युक्तासंख्यात का प्रमाण होता है । अथवा उत्कृष्ट परीतासंख्यात के प्रमाण में एक का प्रक्षेप करने से जघन्य युक्तासंख्यात होता है । आवलिका भी जघन्य युक्तासंख्यात तुल्य समय-प्रमाण वाली जानना । जघन्य युक्तासंख्यात से आगे जहाँ तक उत्कृष्ट युक्तासंख्यात प्राप्त न हो, तत्प्रमाण मध्यम युक्तासंख्यात है । जघन्य युक्तासंख्यात राशि को आवलिका से परस्पर अभ्यास रूप गुणा करने से प्राप्त प्रमाण में से एक न्यून उत्कृष्ट युक्तासंख्यात है । अथवा जघन्य असंख्यातसंख्यात



राशि प्रमाण में से एक कम करने से उत्कृष्ट युक्तासंख्यात होता है ।

जघन्य असंख्यातासंख्यात का क्या प्रमाण है ? जघन्य युक्तासंख्यात के साथ आवलिका की राशि का परस्पर अभ्यास करने से प्राप्त परिपूर्ण संख्या जघन्य असंख्यातासंख्यात है । अथवा उत्कृष्ट युक्तसंख्यात में एक का प्रक्षेप करने से जघन्य असंख्यातासंख्यात होता है । तत्पश्चात् मध्यम स्थान होते हैं और वे स्थान उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात प्राप्त होने से पूर्व तक जानना । जघन्य असंख्यातासंख्यात मात्र राशि का उसी जघन्य असंख्यातासंख्यात राशि से अन्योन्य अभ्यास-गुणा करने से प्राप्त संख्या में से एक न्यून करने पर प्राप्त संख्या उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात है । अथवा एक न्यून जघन्य परीतानन्त उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का प्रमाण है ।

जघन्य परीतानन्त का कितना प्रमाण है ? जघन्य असंख्यातासंख्यात राशि को उसी जघन्य असंख्यातासंख्यात राशि से परस्पर अभ्यास रूप में गुणित करने से प्राप्त परिपूर्ण संख्या जघन्य परीतानन्त का प्रमाण है । अथवा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात में एक रूप का प्रक्षेप करने से भी जघन्य परीतानन्त का प्रमाण होता है । तत्पश्चात् अजघन्य-अनुत्कृष्ट परीतानन्त के स्थान होते हैं और वे भी उत्कृष्ट परीतानन्त का स्थान प्राप्त न होने के पूर्व तक होते हैं । जघन्य परीतानन्त की राशि को उसी जघन्य परीतानन्त राशि से परस्पर अभ्यास रूप गुणित करके उसमें से एक रूप (अंक) न्यून करने से उत्कृष्ट परीतानन्त का प्रमाण होता है । अथवा जघन्य युक्तानन्त की संख्या में से एक न्यून करने से भी उत्कृष्ट परीतानन्त की संख्या बनती है ।

जघन्य युक्तानन्त कितने प्रमाण में होता है ? जघन्य परीतानन्त मात्र राशि का उसी राशि से अभ्यास करने से प्रतिपूर्ण संख्या जघन्य युक्तानन्त है । अर्थात् जघन्य परीतानन्त जितनी सर्षप संख्या का परस्पर अभ्यास रूप गुणा करने से प्राप्त परिपूर्ण संख्या जघन्य युक्तानन्त है । अथवा उत्कृष्ट परतानन्त में एक रूप (अंक) प्रक्षिप्त करने से जघन्य युक्तानन्त होता है । अभवसिद्धिक (अभव्य) जीव भी इतने ही (जघन्य युक्तानन्त जितने) होते हैं । उसके पश्चात् अजघन्योत्कृष्ट (मध्यम) युक्तानन्त के स्थान हैं और वे उत्कृष्ट युक्तानन्त के स्थान के पूर्व तक हैं । जघन्य युक्तानन्त राशि के साथ अभवसिद्धिक राशि का परस्पर अभ्यास रूप गुणाकार करके प्राप्त संख्या में से एक रूप को न्यून करने पर प्राप्त राशि उत्कृष्ट युक्तानन्त की संख्या है । अथवा एक रूप न्यून जघन्य अनन्तानन्त उत्कृष्ट युक्तानन्त है । जघन्य युक्तानन्त के साथ अभवसिद्धिक जीवों को परस्पर अभ्यास रूप से गुणित करने पर प्राप्त पूर्ण संख्या जघन्य अनन्तानन्त का प्रमाण है । अथवा उत्कृष्ट युक्तानन्त में एक रूप का प्रक्षेप करने से जघन्य अनन्तानन्त होता है । तत्पश्चात् सभी स्थान अजघन्योत्कृष्ट अनन्तानन्त के होते हैं ।

भावसंख्या क्या है ? इस लोक में जो जीव शंखगतिनाम-गोत्र कर्मादिकों का वेदन कर रहे हैं वे भावशंख है । यही भाव संख्या है, यही भावप्रमाण का वर्ण है ।

[३१८] वक्तव्यता क्या है ? तीन प्रकार की है, यथा-स्वसमयवक्तव्यता, परमसमय-वक्तव्यता और स्वसमय-परमसमयवक्तव्यता । अविरोधी रूप से स्वसिद्धान्त के कथन, प्रज्ञापन,

प्ररूपण, दर्शन, निदर्शन और उपदर्शन करने को स्वसमयवक्तव्यता कहते हैं । जिस वक्तव्यता में परसमय—का कथन यावत् उपदर्शन किया जाता है, उसे परसमयवक्तव्यता कहते हैं । — जिस वक्तव्यता में स्वसिद्धान्त और परसिद्धान्त दोनों का कथन यावत् उपदर्शन किया जाता है, उसे स्वसमय-परसमय-वक्तव्यता कहते हैं ।

(इन तीनों वक्तव्यताओं में से) कौन नय किस वक्तव्यता को स्वीकार करता है ? नैगम, संग्रह और व्यवहार नय तीनों प्रकार की वक्तव्यता को स्वीकार करते हैं । ऋजुसूत्रनय स्वसमय और परसमय को ही मान्य करता है । क्योंकि स्वसमयवक्तव्यता प्रथम भेद स्वसमयवक्तव्यता में और परसमय की वक्तव्यता द्वितीय भेद परसमयवक्तव्यता में अन्तर्भूत हो जाती है । इसलिए वक्तव्यता के दो ही प्रकार हैं । तीनों शब्दनय एक स्वसमयवक्तव्यता को ही मान्य करते हैं । उनके मतानुसार परसमयवक्तव्यता नहीं है । क्योंकि परसमय अनर्थ, अहेतु, असद्भाव, अक्रिय, उन्मार्ग, अनुपदेश और मिथ्यादर्शन रूप है । इसलिए स्वसमय की वक्तव्यता ही है ।

[३१९-३२१] भगवन् ! अर्थाधिकार क्या है ? (आवश्यकसूत्र के) जिस अध्ययन का जो अर्थ-वर्ण्य विषय है उसका कथन अर्थाधिकार कहलाता है । यथा—सावद्ययोगविरति, उत्कीर्तन—स्तुति करना है । तृतीय अध्ययन का अर्थ गुणवान् पुरुषों को वन्दना, नमस्कार करना है । चौथे में आचार में हुईं स्वलनाओं की निन्दा करने का अर्थाधिकार है । कायोत्सर्ग अध्ययन में व्रणचिकित्सा करने रूप अर्थाधिकार है । प्रत्याख्यान अध्ययन का) गुण धारण करने रूप अर्थाधिकार है ।

[३२२] समवतार क्या है ? समवतार के छह प्रकार हैं, जैसे—नामसमवतार, स्थापना-समवतार, द्रव्यसमवतार, क्षेत्रसमवतार, कालसमवतार और भावसमवतार । नाम और स्थापना (समवतार) का वर्णन पूर्ववत् जानना । द्रव्यसमवतार दो प्रकार का कहा है—आगमद्रव्यसमवतार, नोआगमद्रव्यसमवतार । यावत् आगमद्रव्यसमवतार का तथा नोआगमद्रव्यसमवतार के भेद ज्ञायकशरीर और भव्यशरीर नोआगमद्रव्यसमवतार का स्वरूप पूर्ववत् जानना ।

ज्ञायकशरीर-भव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यसमवतार कितने प्रकार का है ? तीन प्रकार का है—आत्मसमवतार, परसमवतार, तदुभयसमवतार । आत्मसमवतार की अपेक्षा सभी द्रव्य आत्मभाव—में ही रहते हैं, परसमवतारापेक्षया कुंड में बेर की तरह परभाव में रहते हैं तथा तदुभयसमवतार से (सभी द्रव्य) घर में स्तम्भ अथवा घट में ग्रीवा की तरह परभाव तथा आत्मभाव-दोनों में रहते हैं । अथवा ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार दो प्रकार का है—आत्मसमवतार और तदुभयसमवतार । जैसे आत्मसमवतार से चतुष्पष्टिका आत्मभाव में रहती है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा द्वात्रिंशिका में भी और अपने निजरूप में भी रहती है । द्वात्रिंशिका आत्मसमवतार की अपेक्षा आत्मभाव में और उभयसमवतार की अपेक्षा षोडशिका कमें भी रहती है और आत्मभाव में भी रहती है । षोडशिका आत्मसमवतार से आत्मभाव में समवतीर्ण होती है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा अष्टभागिका में भी तथा अपने निजरूप में भी रहती है । अष्टभागिका आत्मसमवतार की अपेक्षा आत्मभाव में तथा तदुभयसमवतार की अपेक्षा चतुर्भागिका में भी समवतरित होती है और अपने निज स्वरूप में भी समवतरित होती है ।

आत्मसमवतार की अपेक्षा चतुर्भागिका आत्मभाव में और तदुभयसमवतार से अर्धमानिका में समवतीर्ण होती है एवं आत्मभाव में भी । आत्मसमवतार से अर्धमानिका आत्मभाव में एवं तदुभयसमवतार की अपेक्षा मानिका में तथा आत्मभाव में भी समवतीर्ण होती है । यह ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त द्रव्यसमवतार का वर्णन है । इस तरह नोआगमद्रव्यसमवतार और द्रव्यसमवतार की प्ररूपणा पूर्ण हुई ।

क्षेत्रसमवतार क्या है ? दो प्रकार से है । आत्मसमवतार, तदुभयसमवतार । आत्मसमवतार की अपेक्षा भरतक्षेत्र आत्मभाव में रहता है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा जम्बूद्वीप में भी रहता है और आत्मभाव में भी रहता है । आत्मसमवतार की अपेक्षा जम्बूद्वीप आत्मभाव में रहता है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा तिर्यक्लोक में भी समवतरित होता है और आत्मभाव में भी । आत्मसमवतार से तिर्यक्लोक आत्मभाव में समवतीर्ण होता है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा लोक में समवतरित होता है और आत्मभाव-निजरूप में भी । कालसमवतार दो प्रकार का है यथा—आत्मसमवतार, तदुभयसमवतार । जैसे—आत्मसमवतार की अपेक्षा समय आत्मभाव में रहता है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा आवलिका में भी और आत्मभाव में भी रहता है । इसी प्रकार आनप्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, यावत् पल्योपम, सागरोपम ये सभी आत्मसमवतार में आत्मभाव में और तदुभयसमवतार से अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी में भी और आत्मभाव में भी रहते हैं ।

अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल आत्मसमवतार की अपेक्षा आत्मभाव में रहता है और तदुभयसमवतार की अपेक्षा पुद्गलपरावर्तन में भी और आत्मभाव में भी रहता है । पुद्गलपरावर्तनकाल आत्मसमवतार की अपेक्षा निजरूप में रहता है और तदुभयसमवतार से अतीत और अनागत काल में भी एवं आत्मभाव में भी रहता है । अतीत-अनागत काल आत्मसमवतार की अपेक्षा आत्मभाव में रहता है, तदुभयसमवतार की अपेक्षा सर्वाद्धाकाल में भी रहता है और आत्मभाव में भी रहता है ।

भावसमवतार क्या है ? दो प्रकार का है । आत्मसमवतार और तदुभयसमवतार । आत्मसमवतार की अपेक्षा क्रोध निजस्वरूप में रहता है और तदुभयसमवतार से मान में और निजस्वरूप में भी समवतीर्ण होता है । इसी प्रकार मान, माया, लोभ, राग, मोहनीय और अष्टकर्म प्रकृतियाँ आत्मसमवतार से आत्मभाव में तथा तदुभयसमवतार से छह प्रकार के भावों में और आत्मभाव में भी रहती हैं । इसी प्रकार छह भाव जीव, जीवास्तिकाय, आत्मसमवतार की अपेक्षा निजस्वरूप में रहते हैं और तदुभयसमवतार की अपेक्षा द्रव्यों में और आत्मभाव में भी रहते हैं । इनकी संग्रहणी गाथा इस प्रकार है—

[३२३] क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, मोहनीयकर्म, (कर्म) प्रकृति, भाव, जीव, जीवास्तिकाय और सर्वद्रव्य (आत्मसमवतार से अपने-अपने स्वरूप में और तदुभयसमवतार से पररूप और स्व-स्वरूप में भी रहते हैं)

[३२४] यही भावसमवतार है ।

[३२५] निक्षेप किसे कहते हैं ? निक्षेप के तीन प्रकार हैं । यथा—ओघनिष्पन्न, नामनिष्पन्न, सूत्रालापकनिष्पन्न । ओघनिष्पन्ननिक्षेप के चार भेद हैं । उनके नाम हैं—अध्ययन,



अक्षीण, आय, क्षपणा । अध्ययन के चार प्रकार हैं, यथा—नाम-अध्ययन, स्थापना-अध्ययन, द्रव्य-अध्ययन, भाव-अध्ययन । नाम और स्थापना अध्ययन का स्वरूप पूर्ववत् जानना ।

द्रव्य-अध्ययन का क्या स्वरूप है ? द्रव्य-अध्ययन के दो प्रकार हैं, आगम से और नोआगम जिसने 'अध्ययन' इस पद को सीख लिया है, स्थिर कर लिया है, जित, मित और परिजित कर लिया है यावत् जितने भी उपयोग से शून्य हैं, वे आगम से द्रव्य-अध्ययन हैं। नैगमनय जैसा ही व्यवहारनय का मत है, संग्रहनय के मत से एक या अनेक आत्माएँ एक आगमद्रव्य-अध्ययन हैं, इत्यादि समग्र वर्णन आगमद्रव्य-आवश्यक जैसा ही जानना । नोआगमद्रव्य-अध्ययन तीन प्रकार का है । ज्ञायकशरीरद्रव्य-अध्ययन, भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन, ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-अध्ययन । अध्ययन पद के अर्थाधिकार के ज्ञायक—के व्यपगतचैतन्य, च्युत, च्यावित त्यक्तदेह यावत् अहो इस शरीर रूप पुद्गलसंघात ने 'अध्ययन' इस पद का व्याख्यान किया था, यावत् उपदर्शित किया था, (वैसा यह शरीर ज्ञायकशरीरद्रव्य-अध्ययन है ।) एतद्विषयक कोई दृष्टान्त है ? जैसे घड़े में से घी या मधु के निकाल लिये जाने के बाद भी कहा जाता है—यह घी का घड़ा था, यह मधुकुंभ था । जन्मकाल प्राप्त होने पर जो जीव योनिस्थान से बाहर निकला और इसी प्राप्त शरीरसमुदाय के द्वारा जिनोपदिष्ट भावानुसार 'अध्ययन' इस पद को सीखेगा, लेकिन अभी-वर्तमान में नहीं सीख रहा है ऐसा उस जीव का शरीर भव्यशरीरद्रव्याध्ययन कहा जाता है । इसका कोई दृष्टान्त है ? जैसे किसी घड़े में अभी मधु या घी नहीं भरा गया है, तो भी उसको यह घृतकुंभ होगा, मधुकुंभ होगा कहना । पत्र या पुस्तक में लिखे हुए अध्ययन को ज्ञायकशरीरभव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्याध्ययन कहते हैं ।

भाव-अध्ययन क्या है ? दो प्रकार हैं—आगमभाव-अध्ययन, नोआगमभाव-अध्ययन । जो अध्ययन के अर्थ का ज्ञायक होने के साथ उसमें उपयोगयुक्त भी हो, उसे आगमभाव-अध्ययन कहते हैं । आयुष्मन् ! नोआगमभाव-अध्ययन का स्वरूप इस प्रकार है—

[३२६] अध्यात्म में आने, उपार्जित कर्मों का क्षय करने और नवीन कर्मों का बंध नहीं होने देने का कारण होने से (मुमुक्षु अध्ययन की अभिलाषा करते हैं ।

[३२७] यह नोआगमभाव-अध्ययन का स्वरूप है ।

अक्षीण का क्या स्वरूप है ? अक्षीण के चार प्रकार हैं । यथा—नाम-अक्षीण, स्थापना-अक्षीण, द्रव्य-अक्षीण और भाव-अक्षीण । नाम और स्थापना अक्षीण का स्वरूप पूर्ववत् जानना ।

द्रव्य-अक्षीण क्या है ? दो प्रकार हैं । यथा—आगम से, नोआगम से । जिसने अक्षीण इस पद को सीख लिया है, स्थिर, जित, मित, परिजित किया है इत्यादि जैसा द्रव्य-अध्ययन में कहा वैसा ही यहाँ समझना । नोआगमद्रव्य-अक्षीण के तीन प्रकार हैं । यथा—ज्ञायकशरीरद्रव्य-अक्षीण, भव्यशरीरद्रव्य-अक्षीण, ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-अक्षीण । अक्षीण पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का व्यपगत च्युत, च्यवित, त्यक्तदेह आदि जैसा द्रव्य-अध्ययन के संदर्भ में वर्णन है, वैसे यहाँ भी करना । समय पूर्ण होने पर जो जीव योनि से निकलकर उत्पन्न हुआ आदि पूर्वोक्त भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन के जैसा इस भव्यशरीरद्रव्य-अक्षीण का

वर्णन जानना । सर्वाकाश-श्रेणि ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-अक्षीण रूप है ।

भाव-अक्षीण क्या है ? दो प्रकार का है, यथा—आगम से, नोआगम से । ज्ञायक जो उपयोग से युक्त हो—वह आगम की अपेक्षा भाव-अक्षीण है । नोआगमभाव-अक्षीण का क्या स्वरूप है ?

[३२८] जैसे दीपक दूसरे सैकड़ों दीपकों को प्रज्वलित करके भी प्रदीप्त रहता है, उसी प्रकार आचार्य स्वयं दीपक के समान देदीप्यमान हैं और दूसरों को देदीप्यमान करते हैं ।

[३२९] इस प्रकार से नोआगमभाव-अक्षीण का स्वरूप जानना चाहिये ।

आय क्या है ? आय के चार प्रकार हैं । यथा—नाम-आय, स्थापना-आय, द्रव्य-आय, भाव-आय । नाम-आय और स्थापना-आय का वर्णन पूर्ववत् जानना । द्रव्य-आय के दो भेद हैं—आगम से, नोआगम से । जिसने आय यह पद सीख लिया है, स्थिर कर लिया है किन्तु उपयोग रहित होने से द्रव्य है यावत् जितने उपयोग रहित हैं, उतने ही आगम से द्रव्य-आय हैं । यह आगम से द्रव्य-आय का स्वरूप जानना । नोआगमद्रव्य-आय के तीन प्रकार हैं । यथा—ज्ञायकशरीरद्रव्य-आय, भव्यशरीरद्रव्य-आय, ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-आय ।

ज्ञायकशरीरद्रव्य-आय किसे कहते हैं ? आय पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का व्यपगत, च्युत, च्यवित त्यक्त आदि शरीर द्रव्याध्ययन की वक्तव्यता जैसा ही ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्य-आय का स्वरूप जानना । समय पूर्ण होने पर योनि से निकलकर जो जन्म को प्राप्त हुआ आदि भव्यशरीरद्रव्य-अध्ययन के वर्णन के समान भव्यशरीरद्रव्य-आय का स्वरूप जानना । ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्त-द्रव्य-आय के तीन प्रकार हैं । यथा—लौकिक, कुप्रवाचनिक, लोकोत्तर । लौकिकद्रव्य-आय के तीन प्रकार हैं । यथा—सचित्त, अचित्त और मिश्र ।

सचित्त लौकिक-आय क्या है ? तीन प्रकार हैं । यथा—द्विपद-आय, चतुष्पद-आय, अपद-आय । इनमें से दास-दासियों की आय द्विपद-आय रूप है । अश्वों हाथियों की प्राप्ति चतुष्पद-आय रूप और आम, आमला के वृक्षों आदि की प्राप्ति अपद-आय रूप है । सोना-चांदी, मणि-मोती, शंख, शिला, प्रवाल, स्तरत्न आदि की प्राप्ति अचित्त-आय है । अलंकारादि से तथा वाद्यों से विभूषित दास-दासियों, घोड़ों, हाथियों आदि की प्राप्ति को मिश्र आय कहते हैं । कुप्रवाचनिक आय तीन प्रकार की है । यथा—सचित्त, अचित्त, मिश्र । इन तीनों का वर्णन लौकिक-आय के अनुरूप जानना ।

लोकोत्तरिक-आय क्या है ? तीन प्रकार हैं । सचित्त, अचित्त और मिश्र । शिष्य-शिष्याओं की प्राप्ति सचित्त-लोकोत्तरिक-आय है । अचित्त पात्र, वस्त्र, पादप्रोच्छन्न, आदि की प्राप्ति अचित्त लोकोत्तरिक-आय हैं । भांडोपकरणादि सहित शिष्य-शिष्याओं की प्राप्ति-लाभ को मिश्र आय कहते हैं ।

भाव-आय का क्या स्वरूप है ? दो प्रकार हैं । आगम से, नोआगम से । आयपद के ज्ञाता और साथ ही उसके उपयोग से युक्त जीव आगमभाव-आय हैं । नोआगमभाव-आय के दो प्रकार हैं, यथा—प्रशस्त और अप्रशस्त । प्रशस्त नोआगमभाव-आय के तीन प्रकार हैं । यथा—ज्ञान-आय, दर्शन-आय, चारित्र-आय । अप्रशस्तनोआगमभाव-आय के चार प्रकार हैं ।

यथा—क्रोध-आय, मान-आय, माया-आय और लोभ-आय । यही अप्रशस्तभाव-आय है ।

क्षपणा क्या है ? चार प्रकार जानना । नामक्षपणा, स्थापनाक्षपणा, द्रव्यक्षपणा, भावक्षपणा । नाम और स्थापनाक्षपणा का वर्णन पूर्ववत् । द्रव्यक्षपणा दो प्रकार की है । आगम से और नोआगम से । जिसने 'क्षपणा' यह पद सीख लिया है, स्थिर, जित, मित और परिजित कर लिया है, इत्यादि वर्णन द्रव्याध्ययन के समान है । नोआगमद्रव्यक्षपणा के तीन भेद हैं । यथा—ज्ञायकशरीरद्रव्यक्षपणा, भव्यशरीरद्रव्यक्षपणा, ज्ञायकशरीरभव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्यक्षपणा ।

ज्ञायकशरीरद्रव्यक्षपणा क्या है ? क्षपणा पद के अर्थाधिकार के ज्ञाता का व्यपगत, च्युत, च्यावित, त्यक्त शरीर इत्यादि सर्व वर्णन द्रव्याध्ययन के समान जानना । समय पूर्ण होने पर जो जीव उत्पन्न हुआ और प्राप्त शरीर से जिनोपदिष्ट भाव के अनुसार भविष्य में क्षपणा पद को सीखेगा, किन्तु अभी नहीं सीख रहा है, ऐसा वह शरीर भव्यशरीरद्रव्यक्षपणा है । इसके लिये दृष्टान्त क्या है ? यह घी का घड़ा होगा, यह मधुकलश होगा, ऐसा कहना । ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्यक्षपणा का स्वरूप ज्ञायकशरीरभव्यशरीरव्यतिरिक्तद्रव्य-आय के समान जानना ।

भावक्षपणा क्या है ? दो प्रकार की है । यथा—आगम से, नोआगम से । क्षपणा इस पद के अर्थाधिकार का उपयोगयुक्त ज्ञाता आगम से भावक्षपणा रूप है । नोआगमभावक्षपणा दो प्रकार की है । यथा—प्रशस्तभावक्षपणा, अप्रशस्तभावक्षपणा । नोआगमप्रशस्तभावक्षपणा चार प्रकार की है । यथा—क्रोधक्षपणा, मानक्षपणा, मायाक्षपणा और लोभक्षपणा । अप्रशस्तभावक्षपणा तीन प्रकार की कही गई है । यथा—ज्ञानक्षपणा, दर्शनक्षपणा, चारित्रक्षपणा ।

नामनिष्पन्न निक्षेप क्या है ? नामनिष्पन्न सामायिक है । वह चार प्रकार का है । यथा—नामसामायिक, स्थापनासामायिक, द्रव्यसामायिक, भावसामायिक । नामसामायिक और स्थापनासामायिक का स्वरूप पूर्ववत् । भव्यशरीरद्रव्यसामायिक तक द्रव्यसामायिक का वर्णन भी तथैव जानना । पत्र में अथवा पुस्तक में लिखित 'सामायिक' पद ज्ञायकशरीरभव्यशरीर-व्यतिरिक्तद्रव्य सामायिक है ।

भावसामायिक क्या है ? दो प्रकार हैं । यथा—आगमभावसामायिक, नोआगमभाव-सामायिक । सामायिक पद के अर्थाधिकार का उपयोगयुक्त ज्ञायक आगम से भावसामायिक है । भगवन् ! नोआगमभावसामायिक क्या है ?

[३३०-३३६] जिसकी आत्मा संयम, नियम और तप में संनिहित है, उसी को सामायिक होती है, जो सर्व भूतों, स्थावर आदि प्राणियों के प्रति समभाव धारण करता है, उसी को सामायिक होती है, ऐसा केवली भगवान् ने कहा है । जिस प्रकार मुझे दुःख प्रिय नहीं है, उसी प्रकार सभी जीवों को भी प्रिय नहीं है, ऐसा जानकर—अनुभव कर जो न स्वयं किसी प्राणी का हनन करता है, न दूसरों से करवाता है और न हनन की अनुमोदना करता है, किन्तु सभी जीवों को अपने समान मानता है, वही समण कहलाता है । जिसको किसी जीव के प्रति द्वेष नहीं है और न राग है, इस कारण वह सम मनवाला होता है । यह



प्रकारान्तर से समण का पर्यायवाची नाम है । जो सर्प, गिरि, अग्नि, सागर, आकाश-तल, वृक्षसमूह, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य और पवन के समान है, वही समण है । यह श्रमण तभी संभवित है जब वह सुमन हो और भाव से भी पापी मन वाला न हो । जो माता-पिता आदि स्वजनों में एवं परजनों में तथा मान-अपमान में समभाव का धारक हो ।

सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेप क्या है ? इस समय सूत्रालापकनिष्पन्ननिक्षेप की प्ररूपणा करने की इच्छा है और अवसर भी प्राप्त है । किन्तु आगे अनुगम नामक तीसरे अनुयोगद्वार में इसी का वर्णन किये जाने से लाघव की दृष्टि से अभी निक्षेप नहीं करते हैं ।

[३३७-३३९] भगवन् ! अनुगम का क्या है ? अनुगम के दो भेद हैं । सूत्रानुगम और निर्युक्त्यनुगम । निर्युक्त्यनुगम के तीन प्रकार हैं । यथा—निक्षेपनिर्युक्त्यनुगम, उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम और सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम । (नाम स्थापना आदि रूप) निक्षेप की निर्युक्ति का अनुगम पूर्ववत् जानना । आयुष्मन् ! उपोद्घातनिर्युक्ति अनुगम का स्वरूप गाथोक्तक्रम से इस प्रकार जानना—उद्देश, निर्देश, निर्गम, क्षेत्र, काल, पुरुष, कारण, प्रत्यय, लक्षण, नय, समवतार, अनुमत, किम-क्या, कितने प्रकार का, किसको, कहाँ पर, किसमें, किस प्रकार—कैसे, कितने काल तक, कितनी, अंतर, अविग्रह, भव, आकर्ष, स्पर्शना और निर्युक्ति । अर्थात् इन प्रश्नों का उत्तर उपोद्घातनिर्युक्त्यनुगम रूप है ।

[३४०-३४२] सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्त्यनुगम क्या है ? (जिस सूत्र की व्याख्या की जा रही है उस सूत्र को स्पर्श करने वाली निर्युक्ति के अनुगम को सूत्रस्पर्शिक-निर्युक्त्यनुगम कहते हैं ।) इस अनुगम में अस्खलित, अमिलित, अव्यत्याप्रेडित, प्रतिपूर्ण, प्रतिपूर्णघोष कंठोष्ठविप्रमुक्त तथा गुरुवाचनोपगत रूप से सूत्र का उच्चारण करना चाहिये । इस प्रकार से सूत्र का उच्चारण करने से ज्ञात होगा कि यह स्वसमयपद है, यह परसमयपद है, यह बंधपद है, यह मोक्षपद है, अथवा यह सामायिकपद है, यह नोसामायिकपद है । सूत्र का निर्दोष विधि से उच्चारण किये जाने पर कितने ही साधु भगवन्तों को कितनेक अर्थाधिकार अधिगत हो जाते हैं और किन्हीं-किन्हीं को कितनेक अर्थाधिकार अनधिगत रहते हैं । अत एव उन अनधिगत अर्थों का अधिगम कराने के लिये एक-एक पद की प्ररूपणा करूंगा । जिसकी विधि इस प्रकार है—संहिता, पदच्छेद, पदों का अर्थ, पदविग्रह, चालना और प्रसिद्धि । यह व्याख्या करने की विधि के छह प्रकार हैं ।

[३४३-३५०] नय क्या है ? मूल नय सात हैं । नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और एवंभूतनय । जो अनेक प्रकारों से वस्तु के स्वरूप को जानता है, अनेक भावों से वस्तु का निर्णय करता है (वह नैगमनय है) । शेष नयों के लक्षण कहूंगा—सुनो । सम्यक् प्रकार से गृहीत—यह संग्रहनय का वचन है । इस प्रकार से संक्षेप में कहा है । व्यवहारनय सर्व द्रव्यों के विषय में विनिश्चय करने के निमित्त प्रवृत्त होता है । ऋजुसूत्रनयविधि प्रत्युत्पन्नग्राही जानना । शब्दनय पदार्थ को विशेषतर मानता है । समभिरूढनय वस्तु का अन्यत्र संक्रमण अवस्तु मानता है । एवंभूतनय व्यंजन अर्थ एवं तदुभव को विशेष रूप से स्थापित करता है ।

—इन नयों द्वारा हेय और उपादेय अर्थ का ज्ञान प्राप्त करके तदनकूल प्रवृत्ति करनी

ही चाहिये । इस प्रकार का जो उपदेश है वही (ज्ञान) नय कहलाता है । इन सभी नयों की परस्पर विरुद्ध वक्तव्यता को सुनकर समस्त नयों से विशुद्ध सम्यक्त्व, चास्त्रि गुण में स्थित होने वाला साधु (मोक्षसाधक हो सकता) है । इस प्रकार नय-अधिकार की प्ररूपणा जानना ।

|    |   |
|----|---|
| ४५ | अनुयोग द्वार-चूलिकासूत्र-२-का<br>मुनिदीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण |
|----|---|

भाग-१२-का हिन्दी अनुवाद पूर्ण

— x — x —

आगमसूत्र-हिन्दी अनुवाद पूर्ण



# हमारे आगम संबंधि साहित्य

- १.४५ – आगम – मूल [अर्धमागधी]
- २.४५ – आगम – गुजराती अनुवाद
- ३.४५ – आगम – सटीकं
- ४.४५ – आगम – विषयानुक्रम
- ५.४५ – आगम – महापूजनविधी
- ६.४५ – आगम – शब्दकोश
- ७.४५ – आगमसूत्र - [हिन्दी अनुवाद]

12

श्री श्रुत प्रकाशन निधि